हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

सिक्किम विश्वविद्यालय

में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) उपाधि की आंशिक परिपूर्ति के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

टिंकू छेत्री

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

फरवरी – 2019

हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

अनुसंधित्सु

टिंकू छेत्री

पं. सं. 17/M.Phil/HND/02, दिनांक 14/05/2018

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

शोध- निर्देशक

डॉ. दिनेश साहू

अनुसंधित्सु

टिंकू छेत्री

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

हिंदी के ‘मैला आँचल’ और असमिया के ‘नोई बोई जाय’ आंचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन

अनुसंधित्सु

टिंकू छेत्री

पं. सं. 17/M.Phil/HND/02, दिनांक 14/05/2018

द्वारा

सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, के हिंदी विभाग में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

दिनांक : .....

घोषणा

मैं टिंकू छेत्री (पंजीकरण संख्या 17/M.Phil/HND/02, दिनांक 14/05/2018) एतद्द्वारा घोषित करती हूँ कि "हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन" लघु शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किये गये कार्यों का परिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान नहीं की गई है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है।

इसे सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक के सम्मुख हिंदी विषय में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

विभागाध्यक्ष (प्रभारी)	**शोध-निर्देशक**	**अनुसंधित्सु**
(डॉ. दिनेश साहू)	**(डॉ. दिनेश साहू)**	**(टिंकू छेत्री)**

दिनांक : .....

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि टिंकू छेत्री (पंजीकरण संख्या 17/M.Phil/HND/02, दिनांक 14/05/2018) द्वारा सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक में एम.फिल. (हिंदी) की उपाधि के लिए प्रस्तुत "हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन" विषयक लघु शोध-प्रबंध उनके शोधकार्य का परिणाम है। जहाँ तक मेरी जानकारी है इस विषय के अंतर्गत किसी भी विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी संस्था में किसी भी उपाधि हेतु अद्यावधि कोई शोध-प्रबंध प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं इस लघु शोध-प्रबंध को सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक में एम.फिल.(हिंदी) की उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति देता हूँ।

शोध- निर्देशक

(डॉ. दिनेश साहू)
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक - 737102

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन : i-viii

प्रथम अध्याय : शोध परिचय **1-8**

1.क. शोध का शीर्षक

1.ख. शोध का परिचय

1.ग. शोध समस्या

1.घ. शोध कार्य का उद्देश्य

1.ङ. संबंधित विषय में हुए शोध कार्यों का विवरण

1.च. शोध प्रविधि

1.छ. शोध कार्य का औचित्य

1.ज. शोध की सीमा

1.झ. शोध कार्य का प्रयोजन

1.ञ. शोध कार्य का ढाँचा

द्वितीय अध्याय : फणीश्वरनाथ रेणु और डॉ. लीला गोगोई : एक परिचय एवं आँचलिक उपन्यास का स्वरूप एवं विवेचन **9-54**

2.क. फणीश्वरनाथ का जीवन और रचना कर्म

2.ख. डॉ. लीला गोगोई का जीवन और रचना कर्म

2.ग. आँचलिक उपन्यास का स्वरूप एवं विवेचन

2.ग.i. आँचलिकता का अर्थ एवं परिभाषा

2.ग.ii. आँचलिक उपन्यास की परिभाषा

2.ग.iii. आँचलिक उपन्यास का उद्भव और विकास

2.ग.iv. आँचलिक उपन्यास के तत्व

2.ग.v. हिंदी और असमिया के आँचलिक उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

तृतीय अध्याय : 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यास में सामाजिक-आर्थिक जीवन 55-107

3.क. सामाजिक जीवन

3.क.i. ग्रामीण जीवन

3.क.ii. परिवार

3.क.iii. शिक्षा

3.क.iv. जातिगत स्वरूप

3.क.v. नारी-पुरुष संबंध

3.क.vi. नैतिक मूल्यों का बदलता स्वरूप

3.ख. आर्थिक जीवन

3.ख.i. व्यवसाय

3.ख.ii. जमींदार और सामान्य जनमानस

3.ख.iii. नगरोन्मुखता

चतुर्थ अध्याय : 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यास में सांस्कृतिक-धार्मिक जीवन 108-141

4.क. सांस्कृतिक जीवन

4.क.i. मेला-उत्सव

4.क.ii. लोकगीत एवं नृत्य

4.क.iii. लोक उपकरण और खान-पान

4.क.iv. रीति-रिवाज

4.ख. धार्मिक जीवन

उपसंहार 142-151

संदर्भ ग्रंथ सूची 152-155

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय

शोध परिचय

द्वितीय अध्याय

फणीश्वरनाथ रेणु और डॉ. लीला गोगोई : एक परिचय एवं आँचलिक उपन्यास का स्वरूप एवं विवेचन

तृतीय अध्याय

‘मैला आँचल’ और ‘नोई बोई जाय’ उपन्यास में सामाजिक-आर्थिक जीवन

चतुर्थ अध्याय

‘मैला आँचल’ और ‘नोई बोई जाय’ उपन्यास में सांस्कृतिक-धार्मिक जीवन

उपसंहार

संदर्भ ग्रंथ-सूची

एम.फिल. छेत्री 2019

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम : टिंकू छेत्री

शिक्षा : एम. ए. (हिंदी)

विभाग : हिंदी

लघु शोध-प्रबंध का शीर्षक : "हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन"

प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि : 21.06.2017

शोध प्रस्ताव की संस्तुति :

(i) पंजीयन संख्या : 17/M.Phil/HND/02

(ii) पंजीयन तिथि: 14.05.2018

अध्यक्ष
हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक

शोध-निर्देशक
हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक

प्रथम अध्याय
शोध परिचय

1.क. शोध का शीर्षक :

प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक "हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन" है।

1.ख. शोध का परिचय :

साहित्य और समाज का घनिष्ट संबंध है। मनुष्य साहित्य के माध्यम से अपने आस-पास के परिवेश, सामाजिक जीवन और संस्कृति को अभिव्यक्त करता है। इसी परिवेश, सामाजिक जीवन और संस्कृति को मिलाकर एक अंचल का निर्माण होता है। इस अंचल में मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करता है। साहित्यकार इस आंचलिक परिवेश से प्रभावित होता है और उसे अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है। साहित्य की सभी विधाओं में कथा साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। कथा-साहित्य में वर्णित अन्य विषयों की तरह आंचलिक कथाओं ने बहुत कम समय में आश्चर्यजनक प्रगति की है। आंचलिक कथा-साहित्य में जीवन को दर्शाने की क्षमता अधिक होती है। कथा-साहित्य के अंतर्गत उपन्यासों ने विभिन्न अंचलों में बिखरी हुई संस्कृति को सजाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। 'अंचल' शब्द का सीधा और स्पष्ट अर्थ है जनपद या प्रदेश विशेष। इस शब्द से एक वैशिष्ट्यपूर्ण भू-भाग का बोध होता है, जो अपनी कतिपय विशेषताएँ जैसे - भौगोलिक स्थिति, सांस्कृतिक स्थिति, सामाजिक एवं आर्थिक ढाचों आदि के कारण अन्य प्रदेशों से पृथक दिखाई पड़ते हैं। अतः जो कथा साहित्य किसी विशेष ग्राम, प्रांत या भूखंड से संबंधित होता है, उसे आंचलिक साहित्य कहा जाता है।

भारत जैसे देश को यदि विविध अंचलों का समूह कहा जाए तो यह असत्य नहीं होगा। भारत एक बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है। भाषिक दृष्टि से देखा जाए तो संविधान द्वारा 22 भाषाएँ आधिकारिक तौर पर मान्यता प्राप्त है। इन्हीं में से हिंदी और असमिया भारत की प्रमुख भाषाएँ हैं तथा दोनों का संबंध भारतीय आर्यभाषा परिवार से है। भौगोलिक दृष्टि से दूर-दूर के क्षेत्र होते हुए भी हिंदी और असमिया भाषी समाज में कई बिंदुओं पर समानता तथा विशेषताएँ हैं। किसी भी राष्ट्र के समाज को हम उसके साहित्य के माध्यम से समझ सकते हैं। भारतवर्ष के अंतर्गत सुदृढ़ संस्कृति सम्पन्न राज्य असम की राज्यभाषा असमिया

है। भाषा चाहे कितनी ही अलग क्यों न हो साहित्य से संबंधित चिंतन, विचार, अनुभव आदि में हमेशा समानता रहती है । हिंदी और असमिया भाषा भले ही अलग-अलग हो, परंतु दोनों भाषाओं के साहित्य का संबंध या विषय-वस्तु एक-दूसरे के साथ जुड़ा हुआ है ।

हिंदी और असमिया साहित्य में आंचलिक उपन्यास की एक विस्तृत परंपरा है । हिंदी में फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'मैला आँचल', राही मासूम राजा कृत 'आधा गाँव', रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारू', उदय शंकर भट्ट कृत 'सागर लहरें और मनुष्य' तथा असमिया में नवकांत बरुआ कृत 'कपिली परिया साधू', रजनीकांत बरदोलोई कृत 'मिरि जियरी', लीला गोगोई कृत 'नोई बोई जाय' तथा रंग बंग तेरांग कृत 'रंग मिलिर हाँही' आदि आंचलिक उपन्यास के विस्तृत परंपरा में आते हैं । हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यासों की श्रृंखला में फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा रचित 'मैला आँचल' और असमिया में डॉ. लीला गोगोई द्वारा रचित 'नोई बोई जाय' का नाम बड़े आदर से लिया जाता है । हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यासों का व्यवस्थित स्वरूप 'मैला आँचल' के प्रकाशन के पश्चात् स्पष्ट हुआ । यद्यपि हिंदी उपन्यास की परंपरा में आंचलिकता के तत्त्व बहुत पहले से ही मिल जाते हैं, परंतु यह उपन्यास एक नए रंग-रूप और परिवेश में उपस्थित हुआ है ।

रेणु का व्यक्तित्व बहुआयामी था । वे एक विचारक, समाज सुधारक और राजनैतिक सरोकार वाले साहित्यकार थे । उनका कथा-साहित्य का वर्ण विषय ग्रामीण जीवन ही है । उन्होंने अपने साहित्य में ठेठ ग्रामीण जीवन, ग्राम्य भाषा, वातावरण और लोकगीतों का समावेश किया है । इन आंचलिक तत्त्वों के सम्मिश्रण का भंडार रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' है । जो हिंदी का श्रेष्ठ और सशक्त आंचलिक उपन्यास है । रेणु के अनुसार- "इसमें फूल भी है, शूल भी; धूल भी है, गुलाब भी; कीचड़ भी है, चंदन भी; सुंदरता भी है, कुरूपता भी- मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया । कथा की सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ हूँ; पता नहीं अच्छा किया या बुरा । जो भी हो अपनी निष्ठा में कमी महसूस नहीं करता ।"[1] एक अंचल विशेष की सभी पहलुओं को ईमानदारी के साथ रेणु ने 'मैला आँचल' में प्रस्तुत किया है । प्रस्तुत उपन्यास का नायक मेरीगंज अंचल है । जो पूरे उत्तर भारत के अंचल परिवेश का प्रतिनिधित्व करता है । जिसमें मेरीगंज के राजनीतिक परिवेश, लोक संस्कृति, सामाजिक जीवन इत्यादि का चित्रण मिलता है । उपन्यास में डॉ. प्रशांत, बलदेव, कालीचरण, बावनदास, हरिगौर, तहसीलदार साहब, रमपियरिया, लछमी,

कमला, ममता आदि पात्रों ने ग्रामीण पृष्ठभूमि को ओर अधिक पुख्ता कर दिया। रेणु के 'मैला आँचल' में विभिन्न अवसरों में गाए जाने वाले लोक गीतों की भरमार है। लोकगीतों के माध्यम से मेरीगंज ग्राम की लोक-संस्कृति अभिव्यक्त होती है। जैसे होली के समय जोगीड़ा गीत बहुत प्रचलित है, पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार है-

"जोगीड़ा सर.....र र.....

जोगीड़ा सर.....र र.....

जोगी जी ताल न टूटे

तीन ताल पर ढोलक बाजे।"[2]

इसी प्रकार बलदेव, कालीचरण, बामनदास जैसे पात्रों के माध्यम से मेरीगंज के राजनैतिक परिवेश को दर्शाया गया है। डायन बता कर मौसी की हत्या जैसी घटनाएँ अंचल की सामाजिक अंधविश्वास को दर्शाता है। उपन्यास में गाँव में प्रचलित जातिवाद के वीभत्स चेहरे को विभिन्न टोली के माध्यम से दिखाया गया है।

ठीक इसी प्रकार डॉ. लीला गोगोई कृत 'नोई बोई जाय' उपन्यास में असमिया संस्कृति के विविध पहलुओं- सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन का विषद विवेचन विश्लेषण मिलता है। यह उपन्यास दिखोऊ नदी के किनारे अवस्थित सेंदुरीपाम गाँव को केंद्र में रखकर लिखा गया है। लेखक ने भगीरथ फुकन के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि समाज में न तो पहली जैसी आत्मीयता शेष है न ही मानवीयता। भगीरथ अपने बीते दिनों की तुलना, वर्तमान जीवन से करता है। उपन्यास में लेखक ने असमिया ग्रामीण समाज की सूक्ष्म से सूक्ष्म घटना का विस्तार से विश्लेषण किया है। जात-पात की कठोर व्यवस्था ने लोगों की धारणाओं को संकुचित बना दिया है। इसी छुआछूत और ऊँच-नीच की प्रबल भावना के कारण जब भगीरथ फुकन की मौसी को मुसलमान जाति के डॉक्टर से सुई लगवानी पड़ती है तो उन्हें लगता है कि जैसे उनका धर्म भ्रष्ट हो गया। अतः उन्होंने इसका प्रायश्चित किया। इसके अलावा लेखक ने असमिया समाज की सांस्कृतिक जीवन का बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है। असमिया समाज का जातीय उत्सव बिहू का सुंदर और सजीव वर्णन किया है। बिहू उत्सव के तीनों प्रकार- बहाग बिहू, माघ बिहू और काति बिहू का विस्तृत विवेचन

किया गया है। 'बहाग-बिहू' के समय मौसम को ध्यान में रखकर भी कई प्रकार के लोक गीत गाए जाते हैं जिन्हें 'बतरर' गीत' कहते हैं-

"आजि बिहू बिहू .....कालि बिहू बिहू

नाहर फूल फूलिबर बतर

नाहर फूलर गोंध पाई लाहरीर तत नाई

ऊजतित भांगि जँतर।"[3]

असमिया ग्रामीण समाज की रीति-नीति, अंधविश्वास, जादू-टोना आदि के वर्णन के साथ स्वतंत्रता आंदोलन की गूंज भी सुनाई देती है। भगीरथ फुकन का बेटा सोन महात्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित होकर कॉलेज छोड़कर समाज सेवा में लग जाता है।

कथानक का केंद्र भगीरथ फुकन के जीवन के विविध पहलुओं से संबंधित है, साथ ही लेखक बहुत सी उपकथाएँ बुनकर पूरे गाँव के आंचलिक वातावरण को चित्रित करता है, जिसकी टूटती-बनती संस्कृति है, अपने विश्वास और मान्यताएँ हैं, अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित इंसान है, अपने संघर्ष हैं, जिसकी अपनी भाषा अपनी परंपरा, रीति व्यवहार ढंग है। लोक साहित्य के विभिन्न उपादानों लोक-गीत, लोक-कथाएँ, लोक-कहावतें आदि का वर्णन उपन्यास में हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास असमिया समाज के यथार्थ परिवेश को अभिव्यक्त करने में सफल रहा है और आंचलिक तत्वों से पूर्ण है।

इसी प्रकार भले ही दोनों भाषाओं के उपन्यासकार अलग-अलग प्रांतों के हैं, परंतु दोनों की संवेदना एक ही है। प्रस्तावित शोध के द्वारा हिंदी और असमिया के दो आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन से दो भिन्न भाषी संस्कृतियों के आंचलिक पहलुओं को समझने एवं सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय एकता लाने में योगदान देगा। इस शोध-प्रबंध के द्वारा नवीन चिंतन के मार्ग एवं प्रगति के नए रास्ते खुलेंगे। साथ ही इस बात की भी पुष्टि होगी कि दो भिन्न भाषी संस्कृतियों में कहाँ अलगाव तथा जुड़ाव है। दोनों क्षेत्र के लोग एक-दूसरे की संस्कृति से लाभान्वित हो सकेंगे। यह शोध-कार्य हिंदी और असमिया भाषी लोगों की संस्कृति एवं जनजीवन के विविध पक्षों

तथा जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त करने में सहायक बनेगा। मेरा यह प्रयास उन लोगों के लिए ज्ञानवर्धन का स्रोत बनेगा जो हिंदी और असमिया संस्कृति की विशेषताओं एवं विविधताओं के बारे में जिज्ञासु है। अतः राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक एकीकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से मैंने प्रस्तुत विषय पर शोध करने का निर्णय लिया है।

1.ग. शोध की समस्या :

प्रस्तावित शोध कार्य में हिंदी और असमिया के उपन्यास 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' के माध्यम से दोनों अंचल विशेष की सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन और विश्लेषण किया जाएगा। इसके साथ अन्य समस्याओं को भी निम्न प्रकार से देखा जाएगा –

1. आंचलिकता का आधार क्या है ?
2. दो भिन्न क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक धार्मिक व सांस्कृतिक समानताएँ व असमानताएँ क्या क्या है ?
3. भिन्न भाषी क्षेत्र होते हुए भी दोनों का साहित्य किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है ?

शोध कार्य का विषय दो भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित होने के कारण नवीनता के साथ-साथ तमाम चुनौतियाँ एवं समस्याएँ आएगी।

1.घ. शोध कार्य का उद्देश्य :

"हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन" विषय में तुलनात्मक अध्ययन करने से अंचल विशेष में रहने वाले लोगों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में सहायता मिलेगी। इससे पाठक वर्ग दो भिन्न भाषी साहित्य के अंचल विशेष परिवेश को समझ सकेंगे, साथ ही राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक एकीकरण को बढ़ावा देना भी प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य है।

1.ङ. संबंधित विषय में हुए शोध कार्यों का विवरण :

मेरी जानकारी के अनुसार हिंदी और असमिया कथा साहित्य में अलग-अलग विधाओं पर अनेक शोध कार्य हुए हैं, जिनमें उल्लेखनीय हैं –

1. प्रेमचंद और डॉ. बिरिंचि कुमार बरुवा के उपन्यास : एक तुलनात्मक अध्ययन, शोधार्थी – जितेन्द्र नाथ, शोध निर्देशक – डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, वर्ष- 2011, असम विश्वविद्यालय (असम)

2. मैत्रेयी पुष्पा और रीता चौधुरी के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी संवेदना एक तुलनात्मक अध्ययन, शोधार्थी – नंदिता दत्त, शोध निर्देशक- अंतत कुमार नाथ, वर्ष- 2016, तेजपुर विश्वविद्यालय (असम)

3. Women consciousness in the novels of Usha Priyamvada & Anuradha Sarma Pujari, Researcher – Monalisha Chakraborty, Guide – T.K Jha, Year – 2016, Guwahati University (Assam)

4. शीलभद्र और नागार्जुन के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. मंजुमनि सैकिया, वर्ष – 2010, राजीव गांधी विश्वविद्यालय (अरुणाचल प्रदेश)

5. हिंदी एवं असमिया के प्रतिनिधि उपन्यासों का प्रवृत्तिपरक अध्ययन, शोधार्थी- ज्योतिष पायेंङ, शोध निर्देशक- डॉ. रामानुज अस्थाना, वर्ष- 2014, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

उपरोक्त शोधकार्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि "हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन" विषय को लेकर अब तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। इस दृष्टि से मेरा यह अध्ययन प्रारंभिक प्रयास है।

1.च. शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध विषय "हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन" है जिसमें तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया जाएगा। आवश्यकतानुसार शोध कार्य में अन्य शोध-प्रविधियों का प्रयोग किया जाएगा।

1.छ. शोध कार्य का औचित्य :

"हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन" विषय पर शोध करने से भिन्न भाषा-भाषी साहित्य की संवेदना की जानकारी प्राप्त होगी साथ ही दो भिन्न भाषी अंचल विशेष की समस्याओं को समझने में सहायता मिलेगी।

1.ज. शोध की सीमा :

प्रस्तुत शोध कार्य का प्रमुख आधार फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' और डॉ. लीला गोगोई का 'नोई बोई जाय' उपन्यास है। प्रस्तुत शोध कार्य का तुलनात्मक अध्ययन सामाजिक-सांस्कृतिक पहलु को केंद्र में रखकर किया जाएगा।

1.झ. शोध कार्य का प्रयोजन :

सिक्किम विश्वविद्यालय के भाषा और साहित्य संकाय के अंतगर्त हिंदी विषय में एम.फिल की शैक्षिक उपाधि प्राप्त करना ही शोध कार्य का मुख्य प्रयोजन है।

1.ञ. शोध कार्य का ढाँचा :

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध निम्नलिखित अध्याय में विभाजन/बाँट गया है-

1. प्रथम अध्याय : शोध परिचय
2. द्वितीय अध्याय : फणीश्वरनाथ 'रेणु' और डॉ. लीला गोगोई का परिचय एवं आँचलिक उपन्यास का स्वरूप
3. तृतीय अध्याय : 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यासों में सामाजिक-आर्थिक जीवन
4. चतुर्थ अध्याय : 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यासों में सांस्कृतिक-धार्मिक जीवन
5. पाँचवा अध्याय : उपसंहार

आधार ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ :

1. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, भूमिका
2. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं. -92
3. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं. -73

द्वितीय अध्याय

फणीश्वरनाथ रेणु और डॉ. लीला गोगोई : एक परिचय एवं आँचलिक उपन्यास का स्वरूप

2.क. फणीश्वरनाथ रेणु का जीवन और रचना कर्म :

साहित्यकार जिस पारिवारिक वातावरण में रहता है, जिस सामाजिक परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करता है, जिन आर्थिक समस्याओं का सामना करता है वही साहित्य का आधार बनता है। इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि रचनाकार के रचनात्मक प्रक्रिया को जानने से पहले उनकी जीवन कथा को जाने बिना उनके मनोजगत, परिवेश व साहित्य के घनिष्ठ संबंध को सही ढंग से नहीं जाने पायेंगे।

पाठक वर्ग साहित्यकार के जीवन से अभिज्ञ हो जाए तो उनकी साहित्यक कृतियों को सुंदर रूप से जान सकते हैं। परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही सही रूप से कृतियों का मूल्यांकन संभव है। रचनाकार अपनी योग्यता से समाज, परिवेश की अनुभूतियों को कागज में उतारता है। अतएव किसी भी साहित्यकार के साहित्य-अध्ययन के लिए पृष्ठभूमि ज्ञान की आवश्यकता होती है। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। साहित्य और परिवेश का गहरा संबंध है। अतः रेणु के साहित्य की विशेषताओं को जानने से पूर्व उनके जीवन को समझना आवश्यक हो जाता है।

जन्म-बचपन :

हिंदी साहित्य के अग्रनी साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च सन् 1921 को पूर्णिया जिले के फारबिसगंज के अंतर्गत औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उनका पूरा नाम फणीश्वरनाथ शिलानाथ मंडल है। माता का नाम पानादेवी और पिता शिलानाथ मंडल थे । उनके पिता धानुक जाति के किसान थे। बिहार प्रांत में धानुक जाति को पिछड़ी जातियों में परिगणित किया जाता है।

उन दिनों रेणु अपने माता-पिता के साथ विराट नगर (नेपाल) में रहते थे। उनके बचपन के दो-ढाई साल विराट नगर के कोइराला निवास में बीती थी। कोइराला परिवार एक आदर्श परिवार था।

शिक्षा :

रेणु का प्रारंभिक शिक्षा श्री कुसुमलाल मंडल के मार्ग दर्शन से घर में ही हुआ। आनुष्ठानिक शिक्षा का आरंभ अररिया विद्यालय से हुई। अररिया में कुछ समय तक पढ़ने के पश्चात् रेणु की शिक्षा सिमरबनी और फोरविसगर्ज में संपन्न हुई। इसके पश्चात् विराटनगर में स्थापित आदर्श विद्यालय में पढ़ने चले गए। सन् 1939 में वाराणसी में मैट्रिक परीक्षा पास की। आई.ए के लिए बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में नामांकन करवाया। सन् 1941 में आई.ए परीक्षा पास करने के बाद बी.ए में दाखिल हुए। पढ़ाई के साथ-साथ राजनीति के प्रति भी बचपन से आकर्षण बढ़ रहा था, परिणाम स्वरूप उसी वर्ष वे आगे की पढ़ाई छोड़कर घर चले आए और गाँव में किसानों का सम्मेलन करवाया। सन् 1942 में गठित 'आज़ाद दस्ता' में शामिल होकर रेणु राजनीति में सक्रीय हो गए।

परिवार एवं विवाह :

रेणु गाँव में रहनेवाले सहज-सरल परिवार से थे। घास-फूस से बना हुआ ग्रामीण घर, लिपी-पुती दीवारों पर बनाये गये रंग-बिरंगे चित्र का आगोश ही उनका निवास स्थान था। फणीश्वरनाथ रेणु ने तीन विवाह किया था। सन् 1939-40 के मध्य सुलेखा देवी के साथ प्रथम विवाह हुआ। सुलेखा जी के बिमारी के चलते उनको घरवाले दूसरी शादी का दबाव देने लगे। रेणु ने दूसरी जीवन साथी खोजने की अनुमति दे दी। इस शर्त के साथ कि वे विधवा से शादी करेंगे। रेणु के पिता आर्यसमाज से प्रभावित थे और स्वयं वे समाज सुधार के भावना से ओतःप्रोत थे। सन् 1949 में विधवा पद्मा जी के साथ दूसरा विवाह संपन्न हुआ। तीसरा विवाह लतिका जी से हुआ था। जब जबलपुर जेल से एक कैदी के रूप में अपने सहयोगियों के साथ पटना हॉस्पिटल भेजे गये थे वही लतिका से उनका मिलना हुआ था। रेणु लतिका पर आसक्त थे। अंत में सन् 1952 में बिना दहेज लिए उनके साथ विवाह किया। लतिका के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए रेणु कहते हैं – "1952-53 में बीमारी से मेरी ऐसी हालत हो गयी थी कि घरवालों और मित्रों ने मुझे अस्पताल में फिकवा दिया था, यही सोचकर कि मैं वहीं मरुँ.....शरीर टूट गया था... मेरे चारों तरफ धप्प अँधेरा था। मैं एकदम अकेला था और यह जान रहा था कि मैं मर रहा हूँ, तभी मुझे लतिका मिली थी। उस अस्पताल में नर्स थी। लतिका ने मुझे जिलाया....अपना सबकुछ भुलाकर मुझे जीवनदान दिया। यह जिंदगी लतिका की ही दी हुई थी, जिसके बल पर में लेखक बना।"[1]

लतिका रेणु के जीवन साथी के साथ ही एक अच्छी मित्र भी थी। जिस समय रेणु को सबसे अधिक साहस और प्रेरणा चाहिए था वह लतिका ने दिया।

राजनीति और आंदोलन :

फणीश्वरनाथ रेणु सृजनात्मक के स्वामी होने के साथ-साथ एक सजग नागरिक और देशभक्त थे। समाज में चल रहे स्थिति का आभास उन्हें बाल्यकाल से ही था। वे कई संगठन ब्रह्म समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी और राधाकृष्ण मिशन के साथ जुड़े थे जो आगे चलकर प्रेरणा के स्त्रोत बने। रेणु के सक्रिय राजनीति जीवन का प्रारंभ लगभग सन् 1930 में बनारस में हुआ। राजनीति जीवन का प्रभाव उनके साहित्य में दिखाई देता है। "राजनीति पार्टी का सदस्य न होकर भी आदमी राजनीति कर सकता है, यह बात लोगों के दिमाग में अटेगी भी नहीं। मेरी रचनाएँ खासकर 'मैला आँचल', 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चैराहे', सभी राजनीतिक समस्याओं और विचारों के ही प्रतिफल हैं।"[2]

सन् 1942 के आंदोलन में रेणु बड़े सक्रिय रहे थे। एक स्वाधीनता सेनानी के रूप में अपनी पहचान बनाई। इस पहचान को जीवनभर पालन करते रहे और सदैव इनका जिक्र अपनी रचनाओं में किया। आंदोलन में सक्रिय रहने के कारण उन्हें गिरफ्तार किया गया। उन्होंने बड़े साहस के साथ कैदी जीवन को स्वीकार किया। सन् 1943 में रेणु को भागलपुर सेंट्रल जेल में लाया गया। यही पर श्री वी.पी सिन्हा के संपर्क में आकर समाजवादी विचारधाराओं से ओत-प्रोत हुए थे। सन् 1947 में देश आज़ाद हुआ। परंतु रेणु का मोहभंग हुआ, आजादी झूठी लगी। 'नई दिशा' में उन्होंने लिखा "सुराज हुआ है जरुर, लेकिन वह हमारे लिए नहीं हुआ है। वह सुराज हुआ है बिड़लाओं के लिए, टाटाओं के लिए। यह जनता का सुराज नहीं। महाभारत छिड़ा हुआ है। दरिद्रता, भूख और रोगों से मरने वाले एक-एक प्राणी को आज हम शहीद कहते हैं। क्योंकि दुश्मनों के इस शस्त्रों से जूझनेवाले, मरनेवाले वीरों को हम वर्ग-संघर्ष में लड़ने वाला सिपाही समझते हैं, इस भष्टाचार के आलम में घुल-घुलकर मरने से अच्छा है, एक ही बार कुछ करना या करते करते मर जाना।"[3] 'नई दिशा' (पूर्णिया से प्रकाशित) का यह संपादकीय रेणु की साहित्यिक विचारधारा एवं उनके मानवीय सरोकार को स्पष्ट करते हैं।

सन् 1950 में नेपाली क्रांतिकारी के रूप में नेपाल की एकतंत्रीय राजाशाही से मुक्त कराने के लिए आंदोलन में शामिल हुए। नेपाली क्रांति में उनका योगदान स्मरणीय रहा है। विद्रोही सेना के साथ आंदोलन को आगे बढ़ाया और विद्रोही द्वारा परिचालित नेपाल रेडियो के प्रथम डायरेक्टर जनरल बने। नेपाल के साथ उनकी निकटता का ही परिणाम है कि रेणु के उपन्यासों और कहानियों में यत्र-तत्र नेपाल के आस-पास के क्षेत्रों का जिक्र मिलता है।

सन् 1974 को जयप्रकाश के नेतृत्व में बिहार आंदोलन ने पूरे क्षेत्र में विस्फोट का काम कर रहा था। 28 मार्च पूरे पटना में कर्फ्यू लग गया था। उस समय एक हजार लोगों ने एक साथ मुँह पर केसरिया पट्टी बांधकर मौन जुलुस निकाला जिसका नारा था 'हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा। इस ऐतिहासिक जुलुस में रेणु आगे की पंक्ति में चल रहे थे। रेणु लिखते हैं- "इस बार जनक्रांति हुई तब मेरी आत्मा पुकार उठी। सिर्फ कलम से नहीं, अपनी काया से भी कुछ लिखना जरुरी है। अपने ही कलेजे के रक्त में अपनी उंगली डुबाकर दीवार पर 'क्रांति अमर हो' लिख पाऊं यही नहीं हुआ, बल्कि आंदोलन मेरे अंदर समा गया।"[4] सन् 1974 को जयप्रकाश के नेतृत्व में जुलूस निकाला गया। जुलूस के साथ अपने प्रखंड में धरना देते समय रेणु को गिरफ्तार किया गया। अस्वस्थता के कारण उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया। सन् 1974 के 4 नवंबर को जय प्रकाश को लाठी प्रहार में बचाते समय स्वयं घायल हो गए थे। इसके बाद उन्होंने राष्ट्रपति को पत्र लिखकर पद्मश्री लौटा दी।

साहित्यिक कृतित्व :

व्यक्ति का पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। "रेणु का जीवन और साहित्य समाज के लिए समर्पित था। उन्होंने अपने रचनाओं के माध्यम से दमन व शोषण का पर्दाफाश करके मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया। 'एक रचनाकार के नाते रेणु जो कुछ छोड़कर गए हैं वह अन्याय के विरुद्ध लड़ने की, संघर्षों से जूझते जाने की अदम्य जिजीविषा की अनवरत यात्रा है।"[5]

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने लेखन की शुरुआत कविता से की थी। रेणु के कथालेखन की शुरुआत सन् 1936 के आसपास हुआ। परंतु अपने वयस्क लेखन की शुरुआत 'बटबाबा' नामक कहानी से मानते हैं। हिंदी

साहित्य में प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन को बड़ी निकटता से देखा, पहचाना और अपने रचनाओं में स्थान दिया। समय के साथ ही साहित्यकारों ने मानवतावादी और राष्ट्रीय भावभूमि को त्यागकर व्यक्तिवादी और सैद्धांतिक पक्ष को लेकर लेखन आरंभ किया। इसके पश्चात् रेणु का आगमन हुआ। "रेणु ने बहुत निकट से मनुष्य की पीड़ा, मज़बूरी और ग़रीबी को देखे थे इसलिए वे उसके साथ कोई सैद्धांतिक खिलवाड़ नहीं कर पाते थे। साहित्य में वह ऐसे उम्र में आए थे, जब अनेक लेखक बहुत सी किताबें लिख चुके थे।"[6] उन्होंने सदैव सूक्ष्म संवेदना और गहरे लगाव को महत्त्व दिया। पुस्तककार के रूप में उनकी प्रकाशित सर्वप्रथम रचना सन् 1954 में आया, जिसके प्रकाशन के पश्चात् हिंदी साहित्य जगत में विरल घटना साबित हुई। यह कृति थी 'मैला आँचल'। इस उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात् रेणु उपन्यासकार के रूप में ही प्रतिष्ठत नहीं हुए अपितु हिंदी में 'आंचलिक उपन्यासों की एक नई परम्परा का आरंभ किया। कुछ आलोचकों ने इसे 'गोदान' के बाद हिंदी का दूसरा सर्वश्रेष्ठ उपन्यास घोषित किया। फणीश्वरनाथ रेणु बहुआयामी प्रतिभा संपन्न रचानाकार है। उनकी प्रतिभा रचनाओं के माध्यम से दिखायी पड़ती थी। सृजनात्मक मेधा एवं ज्ञान का परिचय प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, यंग्यकार, निबंधकार, रिपोतार्ज, संस्मरण, स्केच पत्र, डायरी, अनुवाद, पटकथा, साक्षात्कार, टिप्पणी, गद्य गीति आदि विधाओं की रचनाओं से मिलता है। उनके कालजीय कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित प्रस्तुत है।

उपन्यास

i. मैला आँचल :

'मैला आँचल' उपन्यास का प्रथम प्रकाशन पटना के समता प्रकाशन से हुआ। इसके पश्चात् सन् 1954 में राजकुमार प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। 'रेणु' ने अपने जिले पूर्णिया के अंतर्गत गाँव मेरीगंज को कथाभूमि का आधार बनाया। हिंदी साहित्य में आँचलिक उपन्यास की शुरुआत 'मैला आँचल' से ही मानी गई है। इसमें नायक पूरा मेरीगंज है। देश आज़ाद होने और उसके तुरंत बाद के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य का ग्रामीण संस्करण है। वे इस उपन्यास के माध्यम से जाति समाज और वर्ग चेतना के बीच विरोधाभास की कथा कहते हैं। इसके साथ ही वहाँ की जीवन पद्धति, रीति-रिवाज, लोक-संस्कृति, लोकभाषा

के माध्यम से समस्त सुरुपताओं और कुरूपताओं का उद्घाटन किया है। उपन्यास की शैली सहज है। इतने दशक बाद भी आज उपन्यास में प्रभाव बना हुआ है और आज भी उपन्यास की ताजगी ज्यों की त्यों बनी हुई है।

ii. परती परिकथा :

'मैला आँचल' के पश्चात् रेणु की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति है 'परती परिकथा'। रेणु ने हिंदी औपन्यासिक जगत् में जिस आँचलिक परंपरा का सूत्रपात किया, उसी का विकास 1957 में प्रकाशित 'परती परिकथा' में मिलता है। 'परती परिकथा' उपन्यास के माध्यम से रेणु ने स्वधीन भारत की आकांक्षाओं, कल्पनाओं और परिवर्तित स्थितियों के जिंदा दस्तावेज का चित्रण किया है। स्वतंत्रता के बाद परानपुर गाँव को केंद्र में रखकर जमींदारी उन्मूलन और भूमि के पुनर्विभाजन की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया है। भले ही सीमित क्षेत्र को लेकर उपन्यास लिखा गया परंतु उपन्यास में चित्रित घटना, भाषा, राष्ट्रीय जीवन को व्यंजित करता हैं। बहुत से आलोचक यह मानते हैं कि 'परती परिकथा' का विषय वस्तु 'मैला आँचल' से मिलता जुलता है। वहीं डॉ. मृत्युंजय ने स्पष्ट कहा है कि "इसकी कथा का मूल सूत्र भी लगभग 'मैला आँचल' जैसा है, पात्रों के नाम एवं कर्मों में परिवर्तन भर है, वरना मूल पृष्ठभूमि वही है।"[7]

परती परिकथा' का संबंध किसी व्यक्ति या परिवार से नहीं है, यह संपूर्ण ग्राम्य जीवन का महागाथा है। परानपूर गाँव में रहनेवाले हर जाति एवं वर्ग की समस्या को उपन्यास में दिखाने का प्रयास किया है। इसमें रेणु ने गाँव के पिछड़ेपन, सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ स्थानीय वातावरण, जीवन की घटनाओं, प्रकृति सौंदर्य, लोकगीत, आँचलिक भाषा, पर्व, उत्साह आदि का चित्रण किया है। 'परती परिकाथा' के माध्यम से भारत के ग्रामों की अतीत, वर्तमान और भविष्य का प्रतिबिंब प्रस्तुत किया गया है।

iii. दीर्घतपा :

यह फणीश्वरनाथ रेणु का तीसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। रेणु ने इस छोटे उपन्यास में नारी जीवन के समग्र संदर्भ को दिखाने का प्रयास किया है। यह उपन्यास सन् 1963 में 'दीर्घतपा' नाम से बिहार ग्रंथ कुटीर, पटना द्वारा प्रकाशित किया गया था। "इस उपन्यास की कथाभूमि बांकीपुर मुहल्ले की एक संस्था वर्किंग विमेंस हॉस्टल है। समकालीन भारतीय समाज में शासक वर्ग के घिनौने चरित्र और लोकतंत्र की विडम्बनाओं को

उजागर करता है। 'दीर्घतपा' बेलागुप्त का इस भ्रष्ट व्यवस्था के साथ संघर्ष में आत्मबलिदान हमारी मुल्याचेतना, हमारे मानवीय विवेक को झकझोर कर रख देता है। समाज सेवी संस्था वर्किंग विमेंस हॉस्टल के वेश्यागृह में परिवर्तन होते जाने की यह वेदना मानवीय अस्तित्व की मुक्ति की संभावनाओं के लिए जनमानस को उद्वेलित कर जाती है।"[8]

iv. जुलूस :

रेणु का चौथा उपन्यास 'जुलूस' सन् 1956 में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से प्रकाशित हुआ था। 'जुलूस' उपन्यास में सन् 1947 में देश विभाजन के परिणामस्वरूप विस्थापित हुए ऐसे लोगों की कथा है, जिन्हें विघटनकारी तत्वों, सांप्रदायिक दरिंदों तथा प्राकृतिक आपदाओं ने अपनी जमीन से उखाड़कर एक प्रश्नवाचक स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही बेबस लोगों का चरित्र 'जुलूस' के माध्यम से दर्शाया गया है। इसमें राजनीतिक तथा सांप्रदायिक शक्ति के साथ वैयक्तिक स्वार्थ, कामोत्तेजना और बर्बरता की भी अह्म भूमिका रही है। "गोड़ियर गाँव की सीमा में बसाई गई यह बस्ती गाँव की मूल आजादी से पृथक ही बनी रहती है। इसमें व्यक्ति का अपनी संकुचित क्षेत्रीय भावनाओं के प्रति अतरिक्त मोह, शरणार्थियों की वेदना, व्यक्ति द्वारा अपनी संस्कृति को दूसरों से ऊँचा मानने की वृत्ति, स्थानीय तथा आंगतुक बाहरी प्रजा की मानसिकता को चित्रण के साथ-साथ नायिका पवित्रा के माध्यम से भावनात्मक समान्य का आदर्श स्थापित करने का प्रयास घोतित होता है।"[9]

v. कितने चौराहें :

रेणु द्वारा रचित 'कितने चौराहे' सन् 1966 में अनुपम प्रकाशन पटना से प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास के माध्यम से रेणु ने भारतीय स्वतंत्रता संग्रामकालीन मानसिकता का चित्रण किया है। इस उपन्यास में सहज मानवीय सहानुभूति, गुण, रूप, वृत्ति एवं साहचर्यजन्य का सुंदर ढंग से प्रस्तुत हुआ है। इसके अधिकांश घटनाएँ अररिया कोर्ट पूर्णिया में घटित होता है। गाँव से अररिया कोर्ट कस्बे में शिक्षा लेने के लक्ष्य से आया 'मुनी मनमोहन' तथा स्कूल के अन्य छात्रों द्वारा भारत छोड़ों आंदोलन कैसे सफल बनाया गया और इनके बलिदान तथा त्याग के कारण ही हम आज़ाद हैं, इसका चित्रण बड़े ही तन्मयता से किया गया है।

vi. पल्टू बाबू रोड :

रेणु के मृत्यु के पश्चात् सन् 1979 में अनुपम प्रकाशन द्वारा 'पल्टू बाबू रोड' उपन्यास प्रकाशित किया गया था। इसकी कथावस्तु पूर्णिया के छोटे कस्बे 'बैरागाछी' के राय परिवार के निवास स्थल 'फुलबाग' से जुड़ी हुई है। इसमें श्रेष्ठ मानवीय भावनाओं और आदर्शों के अमूल्यन का चित्रण किया गया है । "इस उपन्यास के अधिकतम पात्र काम-पीड़ा से ग्रस्त है। कुंतल सहाय परिजनों से बदला लेने के लिए वृद्ध बाबू से शादी करती है। हमेशा नई लड़की की तलाश में रहने वाले पल्टू बाबू सुहागरात के समय ही नवविवाहिता का सुंदर मुखड़ा देखकर ही अपने ह्रदय को संभाल नहीं पाते और ह्रदयगति रूक जाने से उनकी मृत्यु हो जाती है।"[10]

कहानी :

फणीश्वरनाथ रेणु ने हिंदी कहानी साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। फणीश्वरनाथ रेणु ने कहानियों में आँचलिकता का प्रयोग किया है। कहानियों के माध्यम से मानवीय संवेदना का उद्घाटना करना ही उनका प्रमुख उद्देश्य रहा। उनकी कहानियों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित हैं-

कहानी संग्रह	प्रकाशन वर्ष
1. ठुमरी	1959
2. आदिम रात्रि की महक	1967
3. अग्निखोर	1973
4. एक श्रावणी दोपहरी	1984
5. मेरी प्रिय कहानियाँ	1993

i. ठुमरी :

फणीश्वरनाथ रेणु का यह पहला कहानी संग्रह है। इसमें नौ काहनियाँ है- रसप्रिया, पंचलाइट, ठेस, तीर्थादर्शक, नित्यलीला, सिरपंचमी का सगुन, तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम, लाल पान की बेगम, तथा

बंदियों। डॉ. नामवर सिंह ने इनकी कहानियों को नए रोमांटिक उत्थान के अंग के रूप में देखा है। "मानवीय संवेदनशीलता मानवीयता संबंधों का उद्घाटन और नए मूल्यों का अन्वेषण ही उनकी कहानियों की विशेषता है।"[11]

ii. आदिम रात्रि की महक :

यह रेणु का दूसरा कहानी संग्रह है जिसमें कुल चौदह कहानियाँ संगृहित है। इस संग्रह में ज्यादातर कहानियाँ समाज में फैल हुए भ्रष्ट एवं कुप्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है। इसके अंतर्गत 'विघटन के क्षण', 'तबे एकला चलो रे', 'एक आदिम रात्रि की महक', 'जलाव', 'पुरानी कहानी नयापाठ', 'अतिथि सत्कार', 'उच्चटन', 'काकचरित', 'आज़ाद परिंदे', 'जड़ाउ मुखड़ा', 'ना जाने केहि वेश में', प्रजासत्ता', 'आत्मसाक्षी', और 'नैना जोगिन' आदि शीर्षक से कहानियाँ हैं।

iii. अग्निखोर :

यह रेणु का तीसरा कहानी संग्रह है। इसमें ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं- "अग्निखोर, 'रेखाएँ', 'वृतचक्र', 'भित चित्र की मयुरी', 'लफड़ा', शीर्षकहीन', 'एक अकहानी का सुपात्र', 'जैव', 'मन का रंग', 'दसगज्जा', के इस पार और उस पार', 'अकल और भैंस' और 'अग्निसंचारक'। रेणु के इस कहानी संग्रह की प्रत्येक कहानी में एक ऐसा व्यंग्य छिपा है, जो आज के सत्य को उजागर करता है। मर्यादा के प्रति विरोध और व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश को इस संग्रह के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

iv. एक श्रावणी दोपहरी की धूप :

इस कहानी संग्रह में चौदाह कहानियाँ संकलित हैं- 'न मिटनेवाली भूख', 'वंडरफूल', 'स्टूडियो', 'अपनी कथा', 'कस्बे की लड़की', 'हाथ का जस और बाँक का सत्', 'पुरानी याद', 'एक लोकगीत के विद्यापति', 'एक श्रावणी दोपहरी धूप', 'संकट', 'अभिनय', 'तव शुभ नामे', 'विकट संकट', 'एक रंगबाज गाँव की भूमिका', और संवदिया। सामाजिक परिवर्तन के आलेखन की दृष्टि से यह 'रेणु' का महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह है।

v. अच्छे आदमी :

इस कहानी संग्रह में रेणु द्वारा रचित 14 कहानियाँ संकलित है- 'टाँटी नैन का खेल', 'कपड़ाघर', 'टेबुल', 'अच्छे आदमी', 'पार्टी का भूत', 'धर्म क्षेत्र-कुरुक्षेत्र', 'प्रतिनिधि चिट्ठियाँ', 'बीमारों की दुनिया में', 'एक रात', 'सृललाइफ', 'रसूलमिसतिरी 'दिल बहादुर राय' और 'एक रोमांस शुन्य प्रेम की भूमिका'। इस संग्रह के माध्यम से समाज से जुड़े घटनाओं दर्शाने का प्रयास किया है।

vi. प्राणों में धुले हुए रंग :

रेणु के इस कहानी संग्रह में आठ कहानियाँ संकलित हैं, जिसमें 'बटबाबा', 'पहलवान की ढोलक', 'कलाकार', 'रखवाला', प्राणों में धुले हुए रंग', 'इतिहास महत्त्व और आदमी' तथा 'रेखाएँ वृत्तचक्र' (अग्निखोर) से संकलित तथा 'अच्छे आदमी' की इसी शीर्षक की कहानियाँ है, रेणु की रचनाओं में विकासक्रम को समझने के लिए इस संग्रह की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण है।

अपनी बुनावट, संरचना, स्वभाव या प्रकृति शिल्प और स्वाद में रेणु ने हिंदी कहानी को एक नयी परम्परा और पहचान लेकर उपस्थित हुए हैं। राजेंद्र यादव ने रेणु की कहानियों के बारे में जो कहा है वह अत्यंत सत्य प्रतीत होता है – "कभी लगता है रेणु मूलतः करुण का कथाकार है और अभी लगता है वह कठोर वास्तविकता का निष्करुण तटस्थ चितेरा है। बहरहाल यह सच है कि अन्य ग्रामीण अंचल पर लिखने वालों की तरह न तो उसका जीवन शून्य स्मृतियों का लेखा है और न शैली का दयनीय उलझाव अंचल की हर सिकुड़न और जटिलता को उसने बड़ी सुलझी निगाहों और महीन कलम से आँका है- लोकगीत की मधुर लयात्मकता उसकी हर रेखा से बोलती है।"[12]

रेणु के कथेत्तर साहित्य :

फणीश्वरनाथ रेणु ने उपन्यास और कहानी के साथ ही निबंध, रेखाचित्र, रिपोतार्ज, काव्य यंग्य, संस्मरण, स्केच पत्र, डायरी, अनुवाद तथा साक्षत्कार के क्षेत्र में अपना जादू बिखेरा है।

संस्मरण और रेखाचित्र :

अपने साहित्य के माध्यम से रेणु मनुष्य के असली स्वरूप, रंग-रूप को ढूंढने का प्रयास किया है। "'रेणु के मस्तिष्क में उन नामों की अमिट छाप थी जिनमें इंसानियत मौजूद थी। रेणु ने अपने जीवन की कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं को भी संस्मरणात्मक रूप में लिखा। उनके आत्म-संस्मरण कथारस से भरपूर है।"[13]

'श्रुत अश्रुत पूर्व' (1980) फणीश्वरनाथ रेणु के वैयक्तिक निबंधों, संस्मरणों तथा रिपोर्ताजों का पहला संकलन है। इसमें रेणु ने अपने विचारों को दो निबंध-राष्ट्रनिर्माण में लेखक का योगदान और जन जागरण में साहित्यकार की भूमिका के माध्यम से व्यक्त किया है। यह ऐसा संकलन है जिसमें रेणु ने अपनी स्मृतियों, पीड़ा, संवेदना, निराशा के साथ संघर्ष, आशा, उमंग को चित्रित किया है।

'वन तुलसी की गंध'(1984) भारत यायावर द्वारा संकलित तथा संपादित फणीश्वरनाथ रेणु का दूसरा संस्मरण एवं रेखचित्र की लिखे स्कैचों का संकलन है। इस पुस्तक में हिंदी साहित्य के वरिष्ठ रचनाकार जैसे अज्ञेय, यशपाल, जैनेन्द्र, उग्र, अश्क आदि के संस्मरणात्मक रेखाचित्र है। साथ ही दूसरे खंड में नेपाली के बाल-कृष्ण 'सम', उर्दू के सुहैल अजीमाबादी तथा बंगाल के रवीन्द्रनाथ, सतीनाथ भादुड़ी तथा हंग्री जनरेशन के रचनाकारों के स्केच प्रस्तुत किये हैं।

रिपोतार्ज :

बहुत कम साहित्याकर के साहित्य में ऐसा गुण होता है जो अपने यथार्थवादी स्वरूप एवं समाज के अनेक स्तरों की वास्तविक रूप से चित्रित करने में सक्षम होते हैं, उन्हीं साहित्यकारों में रेणु का नाम महत्त्वपूर्ण है। रेणु ने अपने साहित्य में यथार्थवादी पक्ष और रचनात्मक पक्ष दोनों को महत्त्व दिया है। उन्होंने रिपोतार्ज में कथाकार के रिपोर्ट स्वरुप को उजागर किया।

रेणु का पहला रिपोतार्ज सन् 1945 में साप्ताहिक 'विश्वमित्र' में प्रकाशित किया गया था। जिसका नाम है 'विदापत नाच' इसके अलावा 'डायन कोसी', 'जै गंगा', 'हड्डियों का पुल', 'पुरानी कहानी', 'नया पाठ', 'एकटू आस्ते-आस्ते' आदि बहुचर्चित रिपोतार्ज है। मजदूर आंदोलन को बढ़ावा देने में रेणु का बहुचर्चित रिपोतार्ज 'घोड़े की टाप पर लोहे की रामधेनु' और 'डी. एस पी की बड़ी-बड़ी मूँछे' 'अह्म भूमिका रही है' 'विराटनगर की

खुनी दस्तत' भी उनका उल्लेखनीय रिपोतार्ज है। 'हिल रहा हिमालय' नेपालीक्रांति कथा पर आधारित रेणु का लंबा रिपोतार्ज है, जो 'जनता' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। 'एकांकी के दृश्य' (1986) और 'समय की शिला पर' (1999) रिपोतार्ज भारत यायावर द्वारा संकलित है। 'ऋणजल-धनजल' (1977) का यह रिपोतार्ज मानवीय जीवन की दो भंयकर त्रासदियों बाढ़ 1975 तथा सूखा सन् 1966 नामक दो भागों में विभक्त है। "भूमिका दर्शन की भूमिका 1 से 6 शीर्षक के अंतर्गत इस अकाल बेला में लोगों की त्रासदी सरकारी रिलीफ की वास्तविक स्थिति, मानवीय विवशता और यातना का सूक्ष्म आलेखन है, अकाल पीड़ितों की सहायता में नक्षत्र मालाकार की भूमिका का पुनर्मूल्यांकन भी।"[14]

कवि के रूप में रेणु :

रेणु ने मात्र एक काव्य संकलन की ही रचना की है। उनके काव्य में किसान-मजदूर, पीड़ित मनःस्थिति, गाँव का चित्रण मिलता है। उनकी प्रमुख कविताओं में – 'अग्रदूत', 'नदी मातृक देश के जलजीव सपूत', 'खून की कसम', 'होली', 'रामनामी चादर', 'आग खा के राजमहल' आदि प्रमुख है।

प्रेमचंद के पश्चात् भारतीय ग्रामीण जीवन के यथार्थ को अपनी कथा का मूल विषय बनाने वाले हिंदी साहित्यकारों में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गाँव की समकालीन जीवन पर लिखा गया रेणु का 'मैला आँचल' पहला उपन्यास है जिसमें परिवर्तित ग्राम्य जीवन, ग्रामीण परिवेश और ग्राम्य मानसिकता का व्यापकता से चित्रण है। फणीश्वरनाथ रेणु ने एक अच्छे शिल्पी की तरह अपनी रचनाओं का ताना-बाना अपनी विशिष्ट शैली में किया। रेणु एक विचारक, समाज सुधारक और राजनैतिक सरोकार वाले साहित्यकार है। अगर देखा जाए तो रेणु का जीवन और साहित्य विविधता से भरा हुआ है। अपने जीवन में भोगा और देखा हुआ यथार्थ को ही साहित्य में व्यक्त किया है। रेणु की प्रतिभा तथा चिंतन उनके साहित्य में दिखाई देती है। साहित्य के प्रायः सभी विधाओं में अपनी कलम चलाने में सक्षम हुए हैं। ऐसे बहुत कम साहित्यकार होते हैं जो साहित्य के सभी विधाओं में अपनी पकड़ रख पाते हैं। उन्हीं में रेणु भी शामिल है। श्रृंगार के माधुर्य के साथ पात्र के दया और करुणा को वास्तव/ यथार्थ रूप में उकेरना उनकी शैली की विशेषता है।

2.ख. डॉ. लीला गोगोई का जीवन और रचना कर्म :

जन्म :

असम के प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. लीला गोगोई बाहगड़िया बुड़ागोहाई के वंशज थे। उनका जन्म 25 नवंबर सन् 1930 के में असम के सराकापार के अंर्तगत हातीमूरीया गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम धनीराम गोगोई और माता का नाम सरूमाला गोगोई था। उनके पिता एक साधारण किसान थे और माता गाँव में रहने वाली सहज-सरल स्त्री थी। लीला गोगोई के दादा इतिहास में रुचि रखने वाले व्यक्ति थे तथा उनके पास इतिहास से संबंधित तथ्य और पुस्तकें संरक्षित थी। दादा के मृत्यु के पश्चात् इतिहास के तथ्य और पुस्तकें लीला गोगोई के पिता को उत्तराधिकारी के रुप में मिली।

गाँव के साधारण परिवेश में ही उनका बचपन बिता। अन्य बच्चों की तरह ही गाँव में खेलना, मछली पकड़ना, नदी में गोते लगाना, पेड़ पर चढ़ना, धूल में लड़ाई करना, खेतों में जाना गोगोई का रोज का काम था परंतु वे बचपन से ही गंभीर प्रकृति के थे। बचपन से ही दादा के पास जो इतिहास के पुस्तक थे उसे ध्यान से देखा करते थे और उसे जानने की प्रबल इच्छा रखते थे। इसी प्रबल इच्छा के कारण ही वे भविष्य में एक प्रतिभा संपन्न व्यक्ति के रूप में प्रतिबिंबित हुए। ग्रामीण जीवन का सरल रूप हमेशा से ही गोगोई का आकर्षन का केंद्र रहा। गाँव में प्रचलित अंधविश्वास कु-संस्कार के साथ गोगोई का परिचय धीरे-धीरे होने लगा था। साथ ही शिवसागर के आहोम राज्यत्व काल के समय जो शिलालेख, चित्रकला थी उनके प्रति रुचि बढ़ने लगी। वे उन सब के प्रति प्रबल जिज्ञासू होने लगे। इस संदर्भ में नगेन सईकीया का मंतव्य इस प्रकार है- 'यह क्रांति चिह्न केवल अतीत जीवन के साक्षी नहीं होंगे, गोगोई के लिए यह सब देश के लिए काम करने का प्रेरणा का प्रतीक था।

बचपन से ही किताबों के साथ उनका संग बहुत गहरा बना। आस-पास जो भी किताब मिलता उसे पढ़ लेते थे। बचपन की यही नींव आगे चलकर बहुत सहायक सिद्ध हुई। अन्य बच्चों की तरह वे ज्यादा समय बेकार में नष्ट नहीं करते थे। प्रायः अपने आस-पास में अनुष्ठित सभा समिति तथा पुस्तकालय जाया करते थे।

शिक्षा :

लीला गोगोई का प्रारंभिक शिक्षा का आरंभ घर में ही हुआ। उनके पहले गुरु पिता थे। मौखिक रूप से शिक्षा आरंभ करने के पश्चात् धीरे-धीरे पिता ने उन्हें अक्षरों के साथ परिचय कराया। गोगोई का आनुष्ठानिक शिक्षा का आरंभ सेरेकापार 32 न. प्राथामिक विद्यालय से हुआ। प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् गोगोई ने शिवसागर में सरकारी स्कूल में आगे की पढ़ाई की। दसवीं परीक्षा में वे प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए। आगे की पढ़ाई उन्होंने शिवसागर सरकारी हाईस्कूल में किया। बारहवीं में वे प्रथम अंक से उत्तीर्ण हुए और शिवसागर कॉलेज में दाखिला लिया। परंतु आर्थिक समस्या के कारण अपनी शिक्षा सामप्त किए बिना नौकरी करने लगे। शिक्षा के प्रति अपार श्रद्धा और लगाव के कारण प्राइवेट से बी.ए. और एम.ए किया। सन् 1982 में डिब्रूगड़ विश्वविद्यालय से महेंद्र बरा के निर्देशन में असमिया बूरंजी (इतिहास) साहित्य का समालोचनात्मक अध्ययन विषय पर पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। शिक्षा के प्रति गंभीर आस्था के कारण ही उन्हें यह मुकाम हासिल हुआ। इतना ही नहीं वे संस्कृत के ज्ञाता भी थे। गोगोई मानते थे कि संस्कृत भाषा के ज्ञान के बिना आसमिया भाषा नहीं जान सकते।

जीवन कर्म :

लीला गोगोई का जीवन कर्म का आरंभ सन् 1951 में शिवसागर टाउन हाई स्कूल में सहायक शिक्षक के पद से हुआ। सन् 1960 में उसी स्कूल के प्रधान शिक्षक के पद पर नियुक्त हुए। सन् 1954-55 तक वे इतिहास और पुरातत्व विभाग में गवेषक के रूप में काम किए। इस समय तक वे समाचार पत्र में कई इतिहास से संबंधित प्रंबध लिख चुके थे। सन् 1956 में गुवाहटी विश्वविद्यालय में विरिंचि कुमार बरुवा के अधीन 'लोक अध्ययन और जनजातीय संस्कृति' (Folklore studies and tribal culture) विषय में गवेषक के रूप में नियुक्ति हुई। सन् 1963 में गोगोई को गुवाहाटी अनाताँर विभाग में प्रवक्ता के रूप में कार्यभार मिला परंतु एक वर्ष के भीतर गड़गाँव महाविद्यालय में असमिया विभाग के प्रवक्ता के रूप में योगदान दिया। उसके पश्चात् सन् 1968 में डिब्रूगड़ विश्वविद्यालय में असमिया विभाग में प्रवक्ता के रूप में नियुक्ति मिली और सन् 1973 तक कार्यभार संभालते रहे। सन् 1973 से 1983 तक डिब्रूगड़ विश्वविद्यालय में 'पाठय पुस्तक प्रस्तुत समिति' में सचिव के पद पर अधिष्ठ रहे।

सामाजिक जीवन :

लीला गोगोई के जीवन में अनुष्ठान प्रतिष्ठान का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे कई सभा-समिति के साथ जुड़े हुए थे। 'असम साहित्य सभा' के साथ उनका संपर्क था। सन् 1976 से 1980 तक साहित्य-सभा के प्रधान संपादक 1980-1981 तक उपसभापति, 1983 में बंगाईगाँव अधिवेशन में बूरंजी(इतिहास) शाखा के सभापति और अंत में सन् 1994 में अनुष्ठित 'असम साहित्य सभा' के सभापति पद पर अधिष्ठ हुए।

सन् 1973 में असम प्रकाशन परिषद के सदस्य और पाठ्यपुस्तक प्रणय तथा प्रकाश निगम के संचालक बने। सन् 1973 से 1990 तक गोगोई 'सर्वभारतीय परिभाषा प्रणयन समिति' और सर्वभारतीय पाठ्यपुस्तक प्रणयन कार्यवाही समिति' के सदस्य के रूप में रहे। इतना ही नहीं असम के कई समाचार पत्र के साथ वे जुड़े थे। तथा उसमें प्रायः उनका लेख छपता था।

पारिवारिक जीवन :

कर्म जीवन और सामाजिक जीवन की तरह ही पारिवारिक जीवन में भी गोगोई अति कर्त्तव्यपरायण थे। सन् 1965 में चंद्रप्रभा बुड़ागोहाँई के साथ विवाह हुआ। दोनों ने मिलकर अति सुंदर रूप से अपने दाम्पत्य जीवन की गाड़ी को आगे बढ़ाया। व्यस्तता से भरा जीवन होते हुए भी गोगोई अपने परिवार के लिए समय निकाल लेते थे। उनका पारिवारिक जीवन अत्यंत सुंदर और मधुरमय था। उनके दो पुत्री थी जूरि गोगोई और लनिर गोगोई। उनकी पत्नी चंद्रप्रभा ने सदा गोगोई के जीवन में परछाई की तरह साथ दिया। लीला गोगोई का व्यक्तित्व अत्यंत सुदृढ़ था। ज्यादा सुख हो या दुःख वे कभी विचलित नहीं होते थे। पत्नी चंद्रप्रभा का कहना है– "शादी के बाद देखा कि वे छोटे बड़े सभी के साथ घुल-मिल जाते हैं। सुख में भी उतावले नहीं होते, दुःख में भी हतास नहीं होते थे।"[15]

साहित्य साधना :

साहित्य साधना गोगोई के जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। सन् 1954 से साहित्य जगत में उनका आगमन हुआ। इतिहास, लोकसाहित्य, प्रबंध के अतरिक्त भी उपन्यास, गीत तथा गीति-कविता, हास्य-व्यंग्य, बाल साहित्य पर अपना जादू बिखेरा था। इसके उपरांत बहुत ग्रंथों का संकलन और संपादन भी किया। गोगोई द्वारा

किया गया अनुवाद भी साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान रहा । असमिया साहित्य के विकास में गोगोई ने अतुलनीय योगदान दिया।

गोगोई ने कविता के माध्यम से साहित्य जगत में अपना कदम रखा था । आगे चलकर वे गद्य रचनाकार बने। इतना ही नहीं गीतों के प्रति अपार श्रद्धा और रुचि रखने के कारण एक गीतिकार के रूप में भी उन्हें जाना जाता है। उनके द्वारा रचित साहित्य में असमिया समाज के लोक साहित्य, सांस्कृति, धर्म, परंपरा और जातीय प्रेम का सुगंध, मिलता है। उनके व्यक्तित्व का एक आकर्षणीय पहलू यह था कि अपने देश तथा उसमें व्याप्त संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम। इसी व्यक्तित्व का आभास उनके साहित्य में मिलता है। साहित्यकार का परिवेश तथा उनका आचार उनके साहित्य के माध्यम से व्यक्त होना स्वभाविक है और इसी का प्रभाव गोगोई के साहित्य में मिलता है।

साहित्यिक कृतित्व :

असमिया साहित्य को संपन्न बनाने में गोगोई का योगदान सदा स्मरणीय रहेगा। इसी योगदान के कारण उन्हें अपने जीवन काल में अनेक सम्मान तथा पुरस्कार मिले। सन् 1963 में केंद्र सरकार द्वारा अनुष्ठित बाल-साहित्य प्रतियोगिता में 'रंगमनर कथा' नामक पुस्तक के लिए 500 रुपये का पुरस्कार मिला था। सन् 1965 में यूनेस्को द्वारा अनुष्ठित नवसाक्षात में रचित पुस्तक 'सीमांतर माटि और मानूह' के लिए 1100 रुपये का पुरस्कार मिला। सन् 1983 में 'असमर संस्कृति' नामक ग्रंथ के लिए 'सतीनाय ब्रम्य चौधरी' सम्मान प्राप्त हुआ।

साहित्य कर्म का परिचय :

उत्तर स्वाधीनता काल के साहित्यकारों में डॉ. लीला गोगोई अन्यतम् थे। वे एक इतिहास ज्ञाता, समाज सुधारक, संस्कृति प्रेमी, बुद्धिजीवी, संगीतकार, अनुवादक, संपादक, उपन्यासकार, बाल साहित्यकार, व्यंग्यकार तथा निपुण गद्य लेखक थे। वे व्यस्तता से भरे जीवन में समय निकालकर साहित्य के प्रति अपना योगदान देते रहते थे।

उपन्यास :

उपन्यास के क्षेत्र में लीला गोगोई का कार्य सबसे अधिक रहा। उन्होंने चार उपन्यास लिखे। सबसे पहला उपन्यास 'सागर मूकूता' सन् 1955 में प्रकाशित हुआ। जिसमें लेखक ने नायक द्वारा जीवन के दस वर्ष के संग्राम के माध्यम से कर्म संस्कृति के विषय में युवा पीढ़ी को शिक्षा देने का प्रयास किया है। मनुष्य के जीवन में समस्याओं का अंत नहीं होता। अगर व्यक्ति के अंदर अच्छे संस्कार, कर्तव्य के प्रति सचेत, जानने की प्रबल इच्छा, आत्मविश्वास हो तो प्रत्येक समस्या का डटकर सामना हो सकता है। आत्मनिर्भर बनने के लिए सबसे पहले अपने-आप पर विश्वास होना चाहिए। इन्हीं विषयों को लेकर लेखक ने 'सागर मूकूता' उपन्यास का ताना-बाना बूना है।

दूसरा उपन्यास 'डकाईत कून' सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास के माध्यम से सुविधावादी वर्ग का उल्लेख किया गया है, जिसका विरोध असमिया समाज के युवा दल करते हैं। इसका चित्रण उपन्यासकार ने अत्यंत मनोरंजक ढंग से किया है। उपन्यास की भाषा अत्यंत सहज-सरल है, ताकि साधारण जनता को समझने में कठिनाई ना हो। इस उपन्यास में समाज में सुविधावादी लोगों के बढ़ते शोषण को दिखाया गया है जिसका पर्दाफाश करने की चेष्ठा युवा दल करते हैं।

गोगोई का तीसरा उपन्यास सन् 1963 में प्रकाशित हुआ जिसका नाम है 'नीला खामर सिठि'। यह उपन्यास असमिया समाज में खूब लोकप्रिय हुआ। यह एक पत्रात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। इसकी भाषा अत्यंत मनोग्राही तथा रोचक है। पाठक वर्ग को बाँधे रखने में यह उपन्यास सक्षम है।

इनका चौथा उपन्यास 'नोई बोई जाय' सन् 1983 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के माध्यम से असमिया समाज और संस्कृति को दिखाने का प्रयास लेखक ने किया है। इस उपन्यास में असमिया सामाजिक जीवन के रीति-रिवाज, बोल-चाल, मेला-उत्सव, परम्परा-अंधविश्वास आदि को उजागर किया गया है।

गीत और गीति कविता :

लीला गोगोई ने गीत और गीति कविता की रचना की। पहला गीत का पुस्तक सन् 1964 में 'गीतिमालंख' प्रकाशित हुआ। जिसमें 46 गीतों का भंडार है। दूसरा गीत पुस्तक 'सुनाली' सन् 1978 में प्रकाशित हुआ।

इसमें 50 गीत सनिविष्ट है। तीसरा सन् 1979 में 'जुनाकर गीत' नाम से प्रकाशित हुआ। जिसमें कुल 44 गीत हैं।

हास्य व्यंग्य :

गोगोई ने असमिया जनमानस में हास्य व्यंग्य के रचयिता के रूप में एक पृथक स्थान बनाने में सफल हुए हैं। ऐसी रचना के माध्यम से उनका व्यक्तिवादी चिंतन, समालोचक दृष्टिकोण, सामाजिक चेतना का परिचय मिलता है। प्रथम हास्य व्यंग्य रचना 'कपलिंग सिगा बेल' सन् 1956-57 में 'असम वाणी' से प्रकाशित हुआ। जिसका ग्रंथ रूप सन् 1959 में आया। उन्होंने 20वीं शताब्दी में सिमलुगुड़ि और मरानहाट के बीच चल रहे ट्रेन को कपलिंग सिगा बेल कहकर, ट्रेन से संबंधित हजारों समस्या को व्यंग्य आकार में प्रस्तुत किया।

लीला गोगोई द्वारा रचित हास्य व्यंग्य ग्रंथों में सन् 1976 में प्रकाशित 'बियेरिंग सिठि' अन्यतम् है। इसमें व्यंग्य के साथ-साथ हास्य रस भरपूर मात्रा में है जो पाठक वर्ग के मन को आनंद प्रदान करता है। 'बृकोदर बरुवार बिया' दो खण्डों में है। जिसका प्रकाशन सन् 1977 में हुआ था। ग्रंथ के मूल नायक बृकोदर बरुवा के विवाह को केंद्र में रखकर ग्रंथ की रचना की गयी है। बृकोदर के विवाह जीवन से संबंधित अनेक घटनाओं हास्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया है।

'विशेष कि लिखिम आरू मूकलि सिठि' ग्रंथ का प्रकाशन सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ के माध्यम से दुर्नीति, राजनैतिक नेता तथा पुलिस प्रशासन के असली चेहरे को दिखाने का प्रयास किया गया है। साथ ही असमिया भाषा, संस्कृति के प्रति उदासीन मनोभाव के बढ़ते रूप को भी दिखाया गया है।

'घेरघेरी वास' लीला गोगोई का एक लघु रचना संकलन है। इस रचना के माध्यम से सरकारी बस सेवा के दूर-व्यवस्था को दिखाया गया है। सरकारी बस के अभिज्ञता को मनोग्राही रूप में प्रस्तुत किया गया है।'हाँहि और बाँही' ग्रंथ सन् 1985 में प्रकाशित हुआ। लोक जीवन में प्रयोग किये जाने वाले अनेक खंडवाक्य और शब्दों का प्रयोग इस ग्रंथ में मिलता है। इन सभी ग्रंथों को एक साथ जोड़कर सन् 1994 में 'खंफूरा' नाम से डिब्रूगड़ से बनलता प्रकाशन ने प्रकाशित किया।

बाल साहित्य :

असमिया बाल साहित्य के विकास में गोगोई का योगदान महत्त्वपूर्ण है। उनके द्वारा रचित बाल साहित्य निम्नलिखित है-

"खंराखियालर बिया' सन् 1954 में प्रकाशित हुआ। 17 बाल कविता से भरपूर यह पुस्तक बच्चों के लिए उपयोगी है। 'खूनतरा' 10 बाल कहानियों का संकलित पुस्तक है। जिसका प्रकाशन सन् 1954 में हुआ। बच्चों के प्रवृत्ति से संबंधित विषयों को लेखर कहानी लिखी गई है। भाषा अत्यंत सहज है। 'पुनाकनर खपून' सन् 1955 में प्रकाशित हुआ था। यह लंबा गल्पकार पुस्तक है। यह नौतिक शिक्षा पर आधारित पुस्तक है। माता-पिता की सेवा, समय का काम समय पर करना, दोस्तों के साथ मिलजूल कर रहना, अपने देश के प्रति प्रेम, शिक्षकों का सम्मान आदि अनेक विषयों को लेकर कथा को आगे बढ़ाया गया है। 'अनूपम कुँवरर खाधू' पुस्तक में लम्बी कथा का वर्णन है। सन् 1959 में इस पुस्तक को असम सरकार के अंतर्गत शिक्षा विभाग ने प्रकाशित किया था। बच्चों के रुचि को ध्यान में रखकर इस पुस्तक की रचना की गई है। सहज-सरल भाषा के माध्यम से लेखक ने लोकजीवन को उजागर किया है ताकि बच्चे लोक जीवन के विभिन्न दिशाओं से परिचित हो। 'लरा लासित बरफूकन' पुस्तक बच्चें और किशोर दोनों के लिए उपयोगी है। सन् 1962 में यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी। पुस्तक के माध्यम से लासित का देशप्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठा, साहस तथा आत्म-बलिदान की गाथा प्रस्तुत किया गया है।

'जयमती आरू मूलागाभरु' पुस्तक में असमिया इतिहास के सुनहरे अक्षरों में अपना नाम लिखने वाली दो वीरंगनाओं का वर्णन है। इसका प्रकाशन सन् 1963 में हुआ। दोनों साहसी महिलाओं का देशप्रेम और पतिप्रेम को दिखाया गया है। 'रंगमनर कथा' सन् 1963 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक ने अत्यंत सहज रूप से बच्चों का मन आकर्षित किया। यह पुस्तक जानवरों को केंद्र में लेकर लिखा गया है। सन् 1973 में 'भारत कथा' नामक पुस्तक 'असम माध्यमिक शिक्षा परिषद' के आदेश अनुसार पाँचवें कक्षा के विद्यार्थियों के लिए प्रकाशित किया गया। पुस्तक में 15 विभिन्न विषयों से संबंधित लेख हैं जिसके द्वारा छात्र को ज्ञान देने की चेष्टा की गई है।

गवेषणामूलक(शोधपरक) साहित्य :

लीला गोगोई ने अपने जीवन का मूल्यवान समय इतिहास और लोक-संस्कृति के गवेषणा (शोध) में दिया है। उनके गवेषणामूलक ग्रंथों को दो भागों में बाँटा गया है-

इतिहास से संबंधित गवेषणामूलक(शोधपरक) साहित्य :

लीला गोगोई द्वारा रचित जितने भी इतिहास से संबंधित ग्रंथ है उन सबकों गवेषणामूलक ग्रंथ नहीं कहा जा सकता । उनके द्वारा रचित 'The Buranjis Historical Literature of Assam' और 'बुरंजी साहित्य' गवेषणामूलक ग्रंथ है। असमिया साहित्य के इतिहास के विषय में 'The Buranjis Historical Literature of Assam' में विस्तृत वर्णन किया है। महेंद्र वर्मा के तत्त्वावधान में सन् 1986 में यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। इतिहास और इसके प्रकार, अतीत कालीन इतिहास साहित्य, प्राप्त अप्रकाशित इतिहासमूलक तथ्य, इतिहास विभाजन, इतिहास से संबंधित मूल्यांकन, इतिहास के माध्यम से समकालीन साहित्य का स्वरुप, इतिहास के लेखन सामग्री, आहोम द्वारा इतिहास लेखन का पद्धति आदि को इस ग्रंथ में प्रमुखता से उजागर किया गया है।

लीला गोगोई द्वारा रचित दूसरा गवेषणामूलक ग्रंथ है 'बुरंजी साहित्य' जिसका प्रकाशन सन् 1988 में प्रकाशित हुआ था। इतिहास से संबंधित अनेक तथ्य इस ग्रंथ में मिलता है। इस ग्रंथ के माध्यम से इतिहास के साथ असमिया साहित्य के इतिहास को भी दर्शाया गया है।

संस्कृति से संबंधित गवेषणामूलक(शोधपरक) ग्रंथ :

लीला गोगोई ने कई संस्कृति से संबंधित गवेषणामूलक ग्रंथ की रचना की है। जिसमें 'ओहम जाति आरू असमिया' संस्कृति, टाई संस्कृतिर रुपरेखा और 'असमर संस्कृति' आदि प्रमुख है। इन ग्रंथों में लीला गोगोई का गहरा चिंतनशक्ति और सूक्ष्म विचार-विश्लेषण का परिचय मिलता है।

'अहोम जाति आरू असमिया संस्कृति' ग्रंथ सन् 1961 में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ में सदृढ़ अहोम राजत्वकाल के समय विभिन्न जनगोष्ठिओं के बीच संस्कृति के आदान-प्रदान किस प्रकार था तथा संबंधों का विवरण प्रस्तुत है। आहोम राजत्वकाल में संस्कृति का विकास किस प्रकार हुआ था इस विषय में भी ग्रंथ के विभिन्न भागों में लिखा गया है। 'टाई संस्कृतिर रूपरेखा' लीला गोगोई द्वारा रचित बृहत ग्रंथ है। सन् 1978 में यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ में टाई संस्कृति के विभिन्न रूपों का प्रणालीबद्ध रूप से अध्ययन किया

गया है। इस ग्रंथ के संबंध में महेंद्र बरा ने कहा है- "यदि कोई उनके ज्ञान के सीमा को ना तोल कर गंभीरता को देखना/जानना चाहता है तो वह डॉ. गोगोई द्वारा रचित 'टाई संस्कृतिर रूपरेख' को पढ़कर ही उसका अनुमान लगा सकता है।"[16] 'असमर संस्कृति' गोगोई द्वारा रचित उत्कृष्ट सांस्कृतिक ग्रंथ है। सन् 1982 में इसका प्रकाशन हुआ था। असमिया भाषा में यह ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। असमिया संस्कृति के इतिहास से संबंधित सभी/ प्रायः सभी विषय को ग्रंथ में उजागर/ सनिविष्ट करने की चेष्ट की है।

संकलित और संपादित ग्रंथ :

डॉ. लीला गोगोई ने असमिया और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में पुस्तके संपादन किया है। 'आधुनिक असमिया साहित्यर परिचय' उनके द्वारा संकलित मूल्यवान पुस्तक है। 'सराईघाट जुद्धर कथा' लीला गोगोई द्वारा संपादित पुस्तक है। यह पुस्तक सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा चार पुराने पुस्तक अध्ययन, पुनरीक्षण करके पाठ समीक्षा के द्वारा संपादन करके निकाला। पुस्तकों के नाम हैं- 'कुमरहरण', 'कालिय दमन', 'सूरधरा और 'अस्वकर्ण वध'।

डॉ. लीला गोगोई ने अंग्रेजी में अत्यंत मूल्यवान पुस्तक का संकलन किया है 'The Tai-Khantes of North East' और The History of the System of Ahom Adiminestration'। प्रथम ग्रंथ में उत्तर पूर्वांचल के अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश में व्याप्त सांस्कृतिक स्वरुप तथा असम में खाम्ति जाति के लोगों का वर्णन है, जिसका प्रकाशन सन् 1971 में हुआ। दूसरा ग्रंथ में विभिन्न पंडितों द्वारा रचित आहोम राजत्वकाल के शासन प्राणली से संबंधित दस लेखों का उल्लेख है।

डॉ. लीला गोगोई का साहित्य का क्षेत्र अत्यंत विशाल है। साहित्य के विभिन्न क्षेत्र में अपना छाप छोड़नेवाले गोगोई असमिया जनमानस में सृजनात्मक लेखक के रुप में अपना एक अलग परिचय बनाने में सफल रहे हैं। उनके द्वारा रचित सृजनात्मक साहित्य ने सदा जनता के मन-मस्तिष्क को प्रभावित किया। जीवन के भिन्न-भिन्न पक्ष को मनोग्राही रूप में अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। गोगोई वे आधुनिक असमिया साहित्य के प्रायः सभी विधाओं में अपना जादू बिखेरा है और साथ ही उन्हें सफलता की प्राप्ति भी हुई। गवेषणामूलक ग्रंथ ने जिस प्रकार समाज के एक वर्ग को प्रभावित किया ठीक उसी प्रकार उपन्यास, गीत, हास्य-

व्यंग्य ने दूसरे वर्ग को प्रभावित किया। उनका जीवन एक प्रकार से समाज, देश एवं राष्ट्रीय साहित्य संस्कृति के प्रति समर्पित था। असमिया साहित्य के प्रतिष्ठा एवं विकसित करने वाले अग्रणी व्यक्तियों में उनका नाम आदर से लिया जाता है। सृजनशील रचना के माध्यम से लीला गोगोई का मन सूक्ष्म अनुभूति, सामाजिक चेतना, परिवर्तनशील मूल्यबोध के प्रति आस्था और अपनी भाषा-संस्कृति के प्रति लगाव की भावना आदि का प्रतिफलन मिलता है। विशेष रूप से असमिया भाषा-साहित्य का सौंदर्य एवं स्वरुप उनके साहित्य का केंद्र बिंदु था।

2.ग. आँचलिक उपन्यास का स्वरूप एवं विवेचन :

अंचल या 'आँचल' के लिए अंग्रेजी में 'रीजन' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है भूमि का एक टुकड़ा, कोई एक ऐसा निश्चित क्षेत्र जिसमें कुछ विशेष जीव, प्राकृतिक तत्व, जलवायु, वनस्पति आदि के कारण अन्य क्षेत्र से विशिष्ट होता है। एक अंचल को दूसरे से अलग करने में रहन-सहन, जीवन जीने का ढंग, समाज एवं सांस्कृतिक धार्मिक तत्व का बहुत बड़ा हाथ होता है। जब से किसी क्षेत्र या प्रांत विशेष को लेकर साहित्य रचना करने का प्रयास किया गया है, तब से आँचलिकता शब्द विशेष अर्थ में प्रयोग होने लगा है। इतना ही नहीं परिवर्तित समय में आँचलिकता एक विधा के रूप में पहचानी जाने लगी। सामान्य अर्थ की परिधि को लाँघ कर विशेष संदर्भ में प्रयोग होने लगा। आँचलिक साहित्य ऐसा साहित्य है जो किसी विशेष ग्राम प्रांत या भूखंड से संबंधित हो।

2.ग.i आँचलिकता का अर्थ एवं परिभाषा :

अंचल एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है। मनुष्य जिस प्रकार अपने व्यक्तित्व, प्रकृति, चिंतन गति विधि आदि निजी विशेषताओं के कारण अन्य से पृथक होता है, ठीक वैसे ही अंचल अपनी संपूर्ण विविधताओं एवं विशेषताओं के कारण अलग होता है, अंचल शब्द का सीधा अर्थ है जनपद या प्रदेश विशेष है। जो अपनी अलग विशेषताओं जैसे भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक तत्व, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति आदि के कारण अन्य क्षेत्र से पृथक दिखाई पड़ता है। समस्त भूमि का अंग होते हुए भी विशिष्ट भूखंड के कारण अलग होते है। "हिंदी साहित्य में गाँव, नगर, प्रांत या एक विशेष भूखंड के लिए प्रयोग में आनेवाला अंचल शब्द संस्कृत से लिया गया है। संस्कृत

का यह शब्द 'अंचल' पाणिनी के व्याकरण के अनुसार 'अच्च' धातु में 'अलच्' प्रत्यय लगा कर बना है। 'अच्च' धातु पाणिनीय धातु के प्रमुख दस गुणों से पहला 'भ्वादि' गुण के प्रयोग में आया है तथा उभय-पदी है। 'अलच्' प्रत्यय 'कृदंत' प्रत्यय के एक भाग 'उणादि' प्रत्यय में प्राप्य है।"[17] अंचल शब्द में तद्धित 'ठञ' प्रत्यय लगाकर आँचलिक विशेषण शब्द बनता है। यह 'ठञ' 'ठस्येक' पाणिनीय सूत्र द्वारा 'इक' में परिणत होता है और तब अंचल + इक आँचलिक होता है। इस सूत्र को प्रायः आलोचक मानते है।

अंचल शब्द 'आँचलिक' और आँचलिकता से संबद्ध रखता है, जिसके कारण इन शब्दों में अंचल के तत्व, लक्षण, विशेषता का समावेश रहता है। इसके संबंध में डॉ. शिव प्रसाद सिंह का कहना है-"क्षेत्र या अंचल उस भौगोलिक खंड को कहते हैं जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई को, जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ उत्सवादि, आदर्श और आस्थाएँ, मौलिक मान्यताएँ तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परस्पर समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हो कि उनके आधार पर यह क्षेत्र या अंचल विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्र से एकदम अलग प्रतीत हो। इस प्रकार के अंचल का क्षेत्र जीवन को अभिव्यक्त करने वाली रचना को हम आँचलिक कह सकते हैं।"[18]

अंचल शब्द अंग्रेजी के 'रीजन' शब्द का पर्याय है। इंग्लैंड में सर्वप्रथम 'थामस हार्डी' और आर्नल्ड बैनेट ने अपने उपन्यास क्रमश: 'वेसक्स' और 'स्टैफोर्ड' में अंचलों के जीवन को चित्रित किया। इन दोनों के क्षेत्र विशेष को लेकर लिखे गए उपन्यास से उस क्षेत्र का रहन-सहन, रीतिरिवाज, बोली, आचार-विचार, व्यक्ति के चरित्र आदि का सजीव चित्रण किया है। ऐसा नहीं कि अंग्रेजी साहित्य से प्रभाव से भारतीय उन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति आयी। यह भारतीय साहित्य की मौलिक प्रवृत्ति है क्योंकि आँचलिकता हमारी पहचान है।

आँचलिक शब्द 'अंचल' से बना है। बृहद प्रामाणिक हिंदी कोश के अनुसार "किसी अंचल की विशिष्ट या विशिष्टताओं का समाहार एवं क्षेत्रियता अंचल कहलाता है।"[19] आँचलिकता वह अंचल वह क्षेत्र है जो अपने कतिपय विशेषताओं और विविधताओं के कारण अन्य अंचल या क्षेत्र से अलग पहचान बनाते हैं।

डॉ. बसंत सुर्वे के अनुसार- "इसमें (आंचलिकता में) अंचल विशेष के जीवन में गहनता प्रवेश कर आंतरिक संवेदना, स्पंदन और यथार्थ को उद्घाटित किया जाता है। आंचलिकता के जरिये अंचल विशेष के सांस्कृतिक जीवन के सामायिक पहलू पर प्रकाश डाला जाता है।"[20]

यह तो तय है कि आँचलिकता का संबंध अंचल विशेष से है। आंचलिकता को निर्दिष्ट परिभाषा में बाँधने के लिए विद्वानों ने अनेक चेष्टा की है परंतु संभव न हो सका। ठीक उसी प्रकार 'आँचलिक उपन्यासों के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने विविध मत प्रदान किये हैं, जो निम्नलिखित हैं-

हिंदी साहित्य कोश में आँचलिक उपन्यासों का अर्थ है- "कुछ उपन्यासों में किसी प्रदेश विशेष का यथातथ्य और बिम्बात्मक चित्रण प्रधानता प्राप्त कर लेता है और उन्हें प्रादेशिक या आँचलिक कहा जाता है।"[21]

जैनेंद्र कुमार ने अपने शब्दों में आँचलिकता के बारे में कहा है – "आँचलिक प्रवृत्ति वह दृष्टि है जिसके केंद्र में अमूक पात्र स्वयं में इष्ट नहीं मानो अमूक समष्टि के जीवन की यथार्थता को उभार देने में ही इसकी चरितार्थता है।" डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने इन्हीं तथ्यों को स्वीकार करते हुए कहते हैं- "जैसा इस शब्द से स्पष्ट है, यह भाव-संज्ञा किसी क्षेत्र या अंचल से संबद्ध है। क्षेत्र या अंचल इस भौगोलिक खंड को कहते हैं जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई हो जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ, उत्सवादि आदर्श और आस्थाएँ मौलिक मान्यताएँ तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परम्परा समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतना भिन्न हो कि इनके आधार पर यह क्षेत्र या अंचल विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एक दम अलग प्रतीत हो। इस प्रकार के अंचल या क्षेत्र के जीवन को अभिव्यक्त करने वाली रचना को आँचलिक कह सकते हैं।"[22]

प. राजनाथ पाण्डेय के अनुसार – "प्रत्येक भूमिभाग की मिट्टी की ख़ास महक, उसमें पनपने वाली वनस्पतियों के पत्तें व फूलों में एक विशेष गंध तथा उसी के अनुरूप वहाँ के समस्त जीवों तथा मानवों में एक भिन्न मनःस्थिति, जो अन्य भू-भागों की इन विशेषताओं से भिन्न विशिष्टता रखती हो उसे आँचलिकता स्वीकार किया है। यह गंध वहाँ के निवासियों को भाषा आचार-विचार तथा मानसिकता में प्रतिबिंबित होती है।"[23]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि 'अंचल' शब्द से ही आँचलिकता बना है जो किसी अंचल या क्षेत्र में व्याप्त विविधता को प्रतिनिधित्व करता है। भारतवर्ष एक देश होते हुए भी यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र में रहनेवाले व्यक्ति, उनका रहन-सहन, वेश-भूषा, आस्था-परम्परा, धर्म, रीति रिवाज, वातावरण अलग रहता है। इसी क्षेत्र विशेष अलगाव को आंचलिकता के अंतर्गत आता है। जब इन्हीं तत्व के समिश्रण में कोई कृति उभरकर आता है तो उसे आँचलिक रचना कहा जाता है। राजेंद्र अवस्थी इस संदर्भ में कहते हैं- "जनपद या क्षेत्र के जन-जीवन का समग्र चित्रण वहाँ की भाषा, वेश-भूषा, धर्म जीवन, समाज, संस्कृति और आर्थिक तथा राजनैतिक जागरण के प्रश्न एक साथ उभरकर आये वह आँचलिक कृत्ति है।"[24]

2.ग.ii.आँचलिक उपन्यास की परिभाषा:

आँचलिक उपन्यास को निर्दिष्ट परिभाषा में बाँध पाना अत्यंत कठिन कार्य है। विभिन्न विद्वानों ने इसे अपने शब्दों में बाँधने का प्रयास किया है जो निम्नलिखत हैं- डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार- "आँचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। उसका संबंध जनपद से होता है ऐसा नहीं, वह जनपद की ही कथा है।"[25]

आचार्य नन्दुलारे बाजपेयी के शब्दों में – "आँचलिक उपन्यास हम उसे कहते हैं, जिसमें अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के जीवन का वैविध्यपूर्ण चित्र हो। आँचलिक उपन्यास की सबसे प्रमुख विशेषता अपरिचित और किसी हद तक आदिम जातियों के जीवन चित्रण में पाई जाती है।"[26] इस कथन में नन्दुलारे बाजपेयी ने दो शब्द अपरिचित और अज्ञात पर बल दिया है। उनका मानना है कि अज्ञात एवं अपरिचित जनजीवन के पहलुओं को उजागर करना आँचलिक रचना का प्रमुख उद्देश्य है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के कथानुसार- "आँचलिकता की प्रवृत्ति को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दुस्तान की एक सांस्कृतिक प्रवृत्ति मानते हैं, जिसके भीतर भारतीयता को अन्वेषित करने की सूक्ष्म अंतः धारणा काम कर रही थी।"[27] डॉ. सुषमा धवन लिखते है- "किसी अंचल विशेष की भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का अंकन करना आँचलिक उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य माना जाता है।"[28]

हिंदी के आलावा पाश्चात्य और असमिया के विद्वानों ने भी आँचलिक उपन्यास की परिभाषा के संबंध में अपने मत व्यक्त किए हैं, जो निम्नलिखित हैं-

पाश्चात्य :

वैन्टले के अनुसार " it (the regional novel) is a novel which concentrating on a particular part, a region, of a nation, depicts the life the life of that reason in such a way that the readene is conscious of the characteristics which are unique to that region and differentiate it form others in common mother land."(आँचलिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है, जो एक विशिष्ट राष्ट्र पर केंद्रित होता है और इस क्षेत्र के जीवन को इस प्रकार चित्रित करता है जिससे पाठक का ध्यान इस क्षेत्र की विशिष्टताओं की ओर खिंचता है और वह आसानी से उस क्षेत्र को अन्य स्थानों में अलग करके देख और समझ सकता है।)"[29]

अब्राहम के अनुसार- "आँचलिक उपन्यास किसी एक विशेष स्थान (Locality) की पृष्ठभूमि (setting) बोली और रीति रिवाज को केवल स्थानीय रंगत के रूप में नहीं, बल्कि महत्त्वपूर्ण अंतर्दशा के रूप में चित्रित करते हैं, जो पात्रों के स्वभाव, सोचने-विचारने के ढंग तथा भावनाओं एवं व्यवहार को प्रभावित करती हैं।"[30]

पाश्चात्य विद्वानों की तरह असमिया के कुछ विद्वानों ने आँचलिक उपन्यास के संबंध में अपने-अपने मत प्रस्तुत किये हैं जो निम्नलिखित है-

गोविंद प्रसाद के अनुसार- "एक अंचल को केंद्र बनाकर (पृष्ठभूमि एवं विषयवस्तु), जिन उपन्यासों की रचना की जाती है, उन्हें आँचलिक उपन्यास कहते हैं। आँचलिक उपन्यास में अंचल ही ऐसी भूमिका निभाती है, जिससे उस अंचल की रीति-नीति, विशेष, भाषा, लोकविश्वास, धार्मिक विश्वास आदि प्रतिप्रलित होते हैं।"[31]
डॉ. प्रदीप कुमार बरुआ के अनुसार – "आँचलिकता की पहली शर्त उसका भौगोलिक परिवेश है, भौगोलिक परिवेश ही किसी विशिष्ट अंचल में रहने वाले मनुष्यों की शारीरिक बनावट, खान-पान, पहनाव, सोच-विचार और भाषा-संस्कृति के निर्माण में सहायता करता है।"[32]

अतः आँचलिक उपन्यास में विशेष रूप से एक क्षेत्र, भूखंड या मंडल विशेष के सामान्य जन-जीवन का वैविध्यपूर्ण चित्रण होता है। आँचलिक उपन्यास में न केवल अंचल-विशेष का जीवन द्रष्टा है बल्कि इनका शिल्प विधान, भाषा-बोली भी अन्य उपन्यासों से भिन्न है। विशिष्ट क्षेत्र की संस्कृति, वहाँ के व्यक्ति, रहन-सहन, खान-पान, उत्सव-मेला, वेश-भूषा, बोली आदि का चित्रण करना ही आँचलिक उपन्यास के उद्देश्य है। इन उपन्यासों में अंचल को केंद्र में रखकर या नायक के रूप में अन्य पात्रों की रचना की जाती है। साहित्य में आँचलिक उपन्यास वह विधा है जिसका विकास निरंतर हो रहा है। आँचलिक उपन्यास सांस्कृतिक धरोहर भी है जिसके माध्यम से उपन्यासकार उस क्षेत्र में व्याप्त सांस्कृतिक विविधता को रचना में चित्रण करता है। विशेष रूप से आँचलिक उपन्यास ग्राम्य जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। उपन्यासकार छोटे-छोटे अपरिचित अज्ञात क्षेत्र में रहनवाले सामान्य जन-जीवन को दर्शाने का प्रयास करता है। साथ-साथ उस क्षेत्र के लोकगीत, लोकनृत्य, लोक उपकरण, जीवन-दर्शन को दिखाने की चेष्ठा करता है।

2. ग.iii. आँचलिक उपन्यास का उद्भव और विकास:

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग में लोकप्रिय साहित्यिक विधाओं में उपन्यास भी आता है। साहित्य की अन्य विधाओं की तरह उपन्यास भी समाज से संबंधित घटनाओं को अभिव्यक्त करता है। हिंदी उपन्यास का आरंभ ही कुतूहल एवं मनोरंजन के साथ हुआ। आधुनिक युग के प्रारंभिक अवस्था में जितने भी उपन्यास लिखे गए थे उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन ही था। परंतु जैसे ही प्रेमचंद का आगमन हुआ उपन्यास के विषय-वस्तु और दृष्टिकोण बदलने लगा। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के अनुसार "मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालने और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[33]

आचार्य नन्दुलारे बाजपेय के अनुसार- "उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है। इसमें मानव जीवन और मानव चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है। वह मनुष्य के जीवन और चरित्र का व्याख्या करता है।"[34]

डॉ.श्यामसुंदर दास के शब्द में "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"[35]

जहाँ एक ओर आरंभिक उपन्यास मनोरंजनपरक थे वहीं समय परिवर्तन के साथ उसके विषय, वस्तु, घटना, तथा स्वरुप में परिवर्तन आने लगा। धीरे-धीरे उपन्यासकार ने इतिहास, समाज-जीवन, व्यक्ति जीवन,

आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक समस्या, देश-प्रेम, आदि विषय को छूने लगे। समय के साथ ही इन विषयों से आगे बढ़कर उपन्यासकारों ने अंचल के केंद्र में रखकर आँचलिक उपन्यास लिखना शुरू किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत आंचलिक उपन्यासों ने हिंदी साहित्य में क्रांतिकारी लहर लाने का काम किया । उससे पहले भी अंचल को लेकर उपन्यास लिखा गया था परंतु सन् 1954 में फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा रचित 'मैला आँचल' उपन्यास के भूमिका में पहली बार 'आँचलिक' शब्द का प्रयोग किया था। हिंदी उपन्यास साहित्य में आँचलिक उपन्यास का आरंभ कब से हुआ है इसे जानने के लिए आँचलिक उपन्यास का विकास के इतिहास पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है, जो निम्नलिखित है-

क. प्रेमचंद पूर्व युग सन् 1882-1918

ख. प्रेमचंद युग सन् 1918-1936

ग. प्रेमचंदोत्तर युग 1936.....

क. प्रेमचंद पूर्व युग :

इस युग के उपन्यासों का उद्देश्य मनोरंजन करना था साथ ही इस युग के उपन्यासों में पाश्चात्य 'रोमांटिक आंदोलन का प्रभाव पड़ा था। इस काल में तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी आदि उपन्यासों की प्रधानता थी। इसलिए प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यासों में आँचलिकता का समावेश नहीं हो सका। इस समय साहित्य में निश्चित प्रकार का उद्देश्य समावेश हुआ था। मनोरंजन के पश्चात् सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया गया। मधुकर गंगाधर लिखते हैं- "हिंदी उपन्यास का विकास मनोरंजन की स्थिति से होता है।"[36]

प्रेमचंद पूर्वकाल में कहीं-कहीं प्रकृति वर्णन मिलता है और यह आँचलिक उपन्यासों का आधार बना। "आँचलिकता के बीज ढूँढने के प्रत्यन किए गए.....वातावरण के अनेकानेक सुंदर चित्र होने पर भी आँचलिक चित्रण की आवश्यकता की पूर्ति नहीं करते.... किसी विशिष्ट अंचल के जीवन का चित्रण व वातावरण की संयोजना नहीं है।"[37] वास्तव में यह है कि प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में प्रकृति या वातावरण का चित्रण संयोजन से बना, आँचलिकता के आधार पर नहीं।

ख. प्रेमचंद युग :

प्रेमचंद युग के उपन्यासों में सामाजिक एवं राजनीतिक प्रवृत्ति का उभ्युथान हुआ। प्रेमचंद के आगमन से हिंदी उपन्यासों में नया युग प्रारंभ होता है, बल्कि यों कहा जाए कि वास्तविक अर्थों में उपन्यास युग प्रारंभ होता है। उपन्यास साहित्य की सृष्टि जिस उद्देश्य को लेकर हुई थी, उस उद्देश्य की पूर्ति प्रेमचंद युग के उपन्यासों में हुई। प्रेमचंद ने पहली बार उपन्यास के मौलिक क्षेत्र, स्वरूप और उद्देश्य को पहचाना। पहचाना ही नहीं उसे भव्य समृद्धि प्रदान की काफी ऊँचाई तक ले गए।"[38] प्रेमचंद द्वारा रचित 'गोदान' उपन्यास पूर्ण रूप से ग्रामीण जीवन पर आधारित है। आँचलिकता की प्रवृत्ति प्रेमचंद युग से ही मानी जा सकती है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य का केंद्र ग्रामीण जीवन, किसान, बदलते परिवेश, मध्यवर्ग, संघर्ष, सामाजिक समस्या आदि को बनाया। प्रेमचंद ने भारत की आत्मा ग्राम्य अंचल में देखा और इसी को केंद्र में रखकर साहित्य की रचना की। वातावरण के साथ-साथ शैली में भी आँचलिक उपन्यास को गति इस युग से मिला था।

ग. प्रेमचंदोत्तर युग :

आँचलिक की प्रवृत्ति का आगमन हिंदी साहित्य में व्यवस्थित रूप से सन् 1950 के बाद ही देखने को मिलता है। इस युग में सामाजिक यथार्थ और मनोविश्लेषण दो प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती है। देश के स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आँचलिक उपन्यास विकास की ओर अग्रसित होती है। साथ ही नयी दृष्टि एवं नये विचारों के कारण हिंदी कथा साहित्य में व्यापकता आयी। डॉ. आदर्श सक्सेना के अनुसार- "आँचलिक उपन्यास साहित्य के विकास की नई दिशा के द्योतक है। यह दिशा जहाँ एक और राष्ट्रीयता की भावना पर आधारित है, वहीं दूसरी ओर जन-जागृति एवं रोमानी दृष्टिकोण से भी परिपुष्ट है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत जब देशवासियों का ध्यान राष्ट्र के उपेक्षित तथा तिरस्कृत वर्ग की ओर गया। तब उसके उद्धार के लिए प्रयत्न किए जाने लगे, तो साहित्यकर भी अपने कर्त्तव्य के प्रति विशेष जागरूक हो उठा। उससे ऐसे ही वर्ग को साहित्यिक निरूपण का आधार बनाया। ऐसे ही प्रयत्नों का परिणाम आँचलिक उपन्यास है।"[39]

हिंदी में 'रेणु' द्वारा रचित 'मैला आँचल' (1954 ई.) उपन्यास को पहला आँचलिक उपन्यास माना जाता है। इसमें पहली बार अंचल विशेष का समग्र रूप चित्रित हुआ है। इससे पूर्व भी प्रताप नारायण आँचलिक उपन्यास

का आरंभ शिवपूजन सहाय कृत 'देहाती दुनिया (1926 ई.) से मानते हैं । कई विद्वान् नागार्जुन कृत 'बलचनमा'(1952 ई.) को भी मानते हैं। परंतु 'मैला आँचल' उपन्यास में वर्णित आँचलिकता का स्वरूप अन्य उपन्यासों में प्राप्त नहीं होता है। मैला आँचल' के पश्चात् आँचलिक उपन्यासों के क्रम में उदयशंकर कृत 'सागर लहरें और मनुष्य (1955), रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ (1958), शिव प्रासद सिंह कृत 'शैलूष' (1989), देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'ब्रह्मपुत्र' (1956), राजेंद्र अवस्थी कृत 'जंगल के फूल (1960), राही मासूम रजा कृत 'आधा गाँव' आदि प्रमुख है। इनमें उपन्यासकारों ने अंचल को केंद्र में रखकर, उस क्षेत्र के विविधताओं को चित्रित करने का प्रयास किया।

उपरोक्त बातों से निष्कर्ष यह निकलता है कि आँचलिकता के तत्व हल्के रूप में प्रेमचंद युग से ही मिलता है। नामकरण में भले ही नवीनता हो परंतु इसके आभास पहले की रचनाओं में भी मिलती है। इस परम्परा को आगे ले जाने में जिन उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उनकी कृतियाँ हिंदी साहित्य में अक्षय भंडार है। आज आँचलिक उपन्यासों की एक लंबी परम्परा है, जिसमें भारत के विभिन्न अंचलों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। जिस कारण हम उस अंचल के न होते हुए भी उसके बारे में इन उपन्यासों के माध्यम से प्राथमिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

2.ग.iv. आँचलिक उपन्यास के तत्त्व :

आँचलिक एक प्रवृत्ति है, जो संपूर्ण उपन्यास में प्रवाहित रहती है। अन्य उपन्यासों की तरह सभी तत्व आँचलिक उपन्यास में मौजूद तो रहती है परंतु अंचल को केंद्र में रखकर ही इन तत्वों का विश्लेषण किया जाता है। डॉ. नगीन जैन ने आंचलिक तत्वों के दो प्रमुख तत्वों को महत्त्व दिया हैं। उनके शब्दों में- "आँचलिकता की इस खोज के जो उल्लेखनीय तत्व ये हैं- 1. क्षेत्र विशेष का सत्य उद्घाटित करना। 2. क्षेत्र की संपूर्ण जनसंख्या को चुनना। कुल मिलाकर अंचल के व्यक्तित्व या जीवंत नायक का चुनाव।"[40] आँचलिक उपन्यास में कुछ तत्व ऐसे मौजूद होते हैं जो उसे अन्य उपन्यासों से अलग बनती हैं। आँचलिक उपन्यास में मौजूद तत्व निम्न प्रकार से हैं-

क. अंचल विशेष की कथानक :

सभी उपन्यासों में कथानक मुख्य तत्व है। उपन्यास की सफलता-विफलता कथावस्तु पर ही निर्भर है। कहा जाए तो कथावस्तु उपन्यास का ढाँचा है। उपन्यास का कथा प्रायः जीवन या समाज से जुड़ा होता है। इसके विपरीत आँचलिक उपन्यासों का प्रधान केंद्र बिंदु एक अंचल होता है। सीमित क्षेत्र को लेकर प्रस्तुत कथानक उस क्षेत्र का संपूर्ण जीवन, समाज, परिवेश, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि को चित्रित करता है। इस प्रकार आंचलिक उपन्यासों की एक निश्चित कथावस्तु रहती है। आँचलिक उपन्यासों में फैलाव नहीं होता बल्कि बिखराव की स्थिति रहती है। अन्य उपन्यासों में जिस प्रकार पात्रों के साथ एक नगर से दूसरे नगर बदलता हुआ पाया जाता है, परंतु आँचलिक उपन्यासों में जिस क्षेत्र या अंचल को लेकर लिखा गया हो पात्र उसी सीमित क्षेत्र में विचरण करता है। संपूर्ण कथावस्तु अंचल से संबंधित है और इसका विकास भी अंचल में ही होता है। आँचलिक उपन्यास की कथावस्तु उस अंचल के क्रियाकलाप, स्थितियों, घटनाएँ परम्परा, प्रगति, परिवर्तन, विश्वास, धर्म, अंधविश्वास, गीत, खान-पान, पर्व-उत्सव आदि के रंग में रगें होते है। आँचलिक उपन्यासों की कथावस्तु के लिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्व है। आँचलिक उपन्यास की कथा अन्य उपन्यास से अलग रहती है।

ख. चरित्र-चित्रण :

कथा को आकर्षण बनाने में चरित्र या पात्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पात्रों का सही रूप से नियोजन उपन्यासकार की बड़ी सफलता होती है। साधारण उपन्यासों में नायक-नायिका अथवा पात्र का नियोजन उपन्यास को सफल बनाने के लिए किया जाता हैं, जबकि आँचलिक उपन्यास की प्रमुख विशेषता है नायक शुन्यता। आँचलिक उपन्यास में कथावस्तु को आगे ले जाने के लिए अंचल को केंद्र में रखकर पात्रों की परिकल्पना किया जाता है। पात्रों का नियोजन ऐसा किया जाता है कि जिससे अंचल की कोई भी पहलू छूट न जाए। आँचलिक उपन्यास संपूर्ण रूप से अंचल पर केंद्रित होता है, जिस कारण इसकी कथा किसी व्यक्ति विशेष न होकर अंचल विशेष है। किसी भी व्यक्ति या पात्र को आँचलिक उपन्यास में प्रधानता मिलती है तो केवल अंचल से तादाम्य दिखाने के उद्देश्य से होता है। उपन्यासकार किसी व्यक्ति विशेष पर ध्यान न देकर संपूर्ण अंचल पर ध्यान केंद्रित करते हैं। "किसी एक पात्र पर उपन्यासकार का फोकस नहीं होता है बल्कि अंचल ही

उसका नायक होता है और अंचल का जीवन ही लेखक का वक्तव्य होता है। कथाकार उसी अंचल से संबद्ध तमाम छोटी-छोटी कथाओं, प्रसंगों संदर्भों की सृष्टि करता है और किसी भी पात्र की कहानी को बहुत दूर तक अकेला नहीं चलने देता है।"[41] साधारण उपन्यासों में जहाँ उद्देश्य को ध्यान में रखकर गिने-चुने पात्रों की योजना की जाती है, वहीं आँचलिक उपन्यासों में क्षेत्र को केंद्र में रखकर कथावस्तु को आगे ले जाने के लिए पात्रों की भीड़ उपस्थिति कर दी जाती है। कहीं-कहीं पर कथानक को ध्यान रखते हुए पात्रों की संख्या में कम ज्यादा हो सकती है। "यहाँ अंचल स्वयं एक जीवंत विशिष्ट पात्र, समूह पात्र है और शेष सभी पात्र स्वयं नहीं है, किसी के लिए है...इस तरह यह अंचल पात्र सारे कथानक पर छाया रहता है और सभी पात्रों को संचालित करता रहता हैं।"[42]

ग. देशकाल-वातावरण :

उपन्यास की अन्य एक महत्त्वपूर्ण तत्व है परिवेश या वातावरण। उपन्यासकार किसी विशेष परिवेश का चित्रण करके कथावस्तु और पात्रों को प्रमाणिक बनाने के साथ रोचक भी बनाता है। सामान्य उपन्यास में परिवेश या वातावरण का चित्रण पात्रों एवं कथानक को वास्तविकता प्रदान करने के लिए किया जाता है, परंतु आँचलिक उपन्यासों में वातावरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन जाता है। इन उपन्यासों में वातावरण केवल एक तत्व से ही नहीं बल्कि अंचल विशेष के पूर्ण व्यक्तित्व के रूप में उल्लेख किया जाता है। आँचलिक उपन्यास में परिवेश कालिक होती है क्योंकि लेखक का उद्देश्य समसामयिक वातावरण को चित्रित करना होता है। आँचलिक उपन्यास में परिवेश का सजीव चित्रण मिलता है। आँचलिक उपन्यासकार कथावस्तु के माध्यम से अंचल के अनेरूपता को व्यक्त करता है। आँचलिक उपन्यासकार परिवेश से आँचलिक रंगत देने के साथ-साथ कई कथा भी कहता है- "परंतु आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार परिवेश से दुहरा काम लेता है- आँचलिक रंगत तो देती है, साथ ही कोई कथा भी कहता है, कोई संवेदना भी गढ़ता है।"[43]

घ.भाषा :

आँचलिक उपन्यास में जिस अंचल या क्षेत्र को क्रेंद्र में लेकर लिखा गया होता है, उस क्षेत्र विशेष के समग्र जन-जीवन की माटी की गंध आना स्वभाविक है। आँचलिक उपन्यास और सामान्य उपन्यास की भाषा में स्पष्ट

अंतर परिलक्षित होता है । अन्य उपन्यास में कथावस्तु तथा पात्रों को गति प्रदान करने हेतु भाषा का प्रयोग किया जाता है, वहीं दूसरी ओर आँचलिक उपन्यासों की भाषा केवल भाषा तक सीमित न रहकर वातावरण बन जाती है। डॉ. जवाहर सिंह सामान्य उपन्यास और आँचलिक उपन्यास का अंतर स्पष्ट करते हुए मत दिया है कि "यहाँ पर अनांचालिक और आँचलिक उपन्यासों की भाषा के प्रयोग में जो अंतर है वह केवल स्तर का या गहराई का है । सामान्य उपन्यासों में पात्रों के वार्तालाप की भाषा का स्वरूप सामान्ययः बोलचाल का ही होता है अर्थात् साहित्यिक या परिनिष्ठत हिंदी न होते हुए भी उससे बहुत भिन्न नहीं होता । अधिक से अधिक कोई उपन्यासकार उस भाषा में देशज शब्दों या स्थानीय बोली के दो चार शब्दों, मुहावरों का प्रयोग कर देता है । परंतु आँचलिक उपन्यासों में पात्र के वार्तालाप की भाषा का स्तर सामान्य साहित्यिक भाषा से काफी भिन्न होता है । उसमें स्थानीय बोलियाँ या आँचलिक भाषा के शब्दों, मुहावरों, लोकोतियाँ ध्वनि-बिंबों और प्रतीकों आदि का प्रयोग ही बहुतायत से नहीं होता, बल्कि कहीं-कहीं तो पूरा वार्तालाप ही स्थानीय बोली में हो जाता है।"[44] आँचलिक परिवेश या वातावरण को जीवंत करने के लिए भाषा का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहता है ।

ङ. उद्देश्य :

आँचलिक उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य है अंचल को केन्द्रित करके प्राचीन संस्कृति की चेतना को विलुप्त होने से बचाना । अधिकांश आँचलिक उपन्यासों में किसी अंचल को केंद्र में लेकर उस क्षेत्र में व्याप्त सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन, धर्म, परंपरा, राजनैतिक चेतना, परिवेश, अंधविश्वास आदि का चित्रण किया जाता है। इसी उद्देश्य को आगे रखकर उपन्यासकार आँचलिक उपन्यास में कथावस्तु का निर्माण करता है । सामान्य उपन्यास में किसी आदर्श, सिद्धांत आदि को स्थापन करने के लिए पात्रों, कथावस्तु एवं वातावरण का निर्माण किया जाता है तथा इसके माध्यम से उपन्यास के उद्देश्य की पूर्ति की जाती है । दूसरी ओर आँचलिक उपन्यास का उद्देश्य किसी अंचल की विशिष्टता को प्रतिफलित करना स्पष्ट परिलक्षित होता है । डॉ. त्रिभुवन सिंह ने आँचलिक उपन्यास को अन्य उपन्यास से अलग मानते हुए अपना मत इस प्रकार दिया है- "आँचलिक उपन्यासों का उद्देश्य अन्य उपन्यासों से भिन्न नहीं पर आँचलिक उपन्यासकार अन्य उपन्यासकारों की भाँति समस्त मानव-समाज एवं अखंड भू-भाग को सामने रखकर अपनी रचना नहीं करता बल्कि वह उसके लिए समाज विशेष एवं भूखंड को ही आधार बना लेता है जो समस्त मानव समाज एवं संपूर्ण भूखंड का अंग होते हुए

भी अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण भिन्न जान पड़ता है ।"[45] आँचलिक उपन्यास का उद्देश्य सामान्य उपन्यास से अलग दिखाई पड़ती है । अंचल को चित्रित करना ही आँचलिक उपन्यासकार और आँचलिक उपन्यास का प्रधान उद्देश्य है । अपनी कतिपय विशेषता और उद्देश्य के कारण आँचलिक उपन्यास अन्य उपन्यासों से अलग हैं।

2. ग. v. हिंदी और असमिया के आँचलिक उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय :

फणीश्वरनाथ 'रेणु' द्वारा सन् 1954 में रचित उपन्यास 'मैला आँचल' का आगमन एक नयी दृष्टि और नयी विधा को लेकर हुआ । 'मैला आँचल' हिंदी का बहुचर्चित आँचलिक उपन्यास है । हिंदी साहित्य में आँचलिकता की चर्चा 'मैला आँचल' के प्रकाशन के पश्चात् नए ढंग से किया जाने लगा । 'मैला आँचल' के पहले संस्करण की भूमिका में 'रेणु' का मंतव्य इस बात की पुष्टि करता है कि उनके हिसाब से भी यह एक आँचलिक उपन्यास है- "यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास कथानक है पूर्णिया । पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल । विभिन्न सीमा-रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा रेखाएँ खींच देते हैं । मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव के पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है । यह गाँव है मेरीगंज और स्वतंत्रता से पूर्व के दो-तीन वर्षों की उस जिंदगी के जीवित चित्र है । यह जिन्दगी ठीक वैसा है, जैसे वह है, इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी सुंदरता भी है, कुरूपता भी ।"[46]

उपन्यास का आरंभ गाँव में मलेरिया सेंटर खुलने की प्रतिक्रिया से होती है । डॉ. प्रशांत का आगमन गाँव जीवन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उपन्यास और ग्रामीण जीवन को गति डॉ. प्रशांत के आगमन के पश्चात् मिलता है । एक ओर पुराने को टूटता और बदलते नए परिस्थिति को दिखाया गया है । प्रबुद्ध साहित्यकार 'रेणु' के पास इन बदलते-टूटते परिस्थिति को शब्दों में बाँधने की असीम कला थी । उसी कला का सार्थक रूप है 'मैला आँचल' । "हिंदी में पहली बार किसी अंचल विशेष के उपेक्षित जीवन की समस्त छवि और कुरूपता, सीमा, विवश्ता और संभावना को इतनी मानवीय ममता और सूक्ष्मता का रूप दिया गया है ।"[47]

'मैला आँचल' किसी व्यक्ति को केंद्र में लेकर लिखा गया उपन्यास नहीं है वह पूरे मेरीगंज क्षेत्र को लेकर लिखा गया है। इस उपन्यास के माध्यम से मेरीगंज अंचल की भौगोलिक परिवेश, वेश-भूषा, आवास व्यवस्था, भाषा, बोली, धर्म, परंपरा, अंधविश्वास, संस्कृति, गीत, नृत्य सामाजिक संरचना, ग्रामीण जीवन आदि को चित्रित किया है। 'मैला आँचल' में प्रयुक्त भाषा के संदर्भ में लेखक की यह स्वीकृत उल्लेखनीय है – मैंने जो शब्द इस्तेमाल किया, जैसी भाषा लिखी, क्या पता उसको लोग कबूल करेंगे या नहीं करेंगे.... इसीलिए मैंने उसे आँचलिक उपन्यास कह दिया। उसके बाद तो लोगों ने एक खाँचा ही बना दिया 'आँचलिक' का।"[48] स्पष्टतः 'मैला आँचल' उन परिस्थितियों का चित्र है, जो ग्रामीण जीवन समस्त वास्तविकताओं के साथ प्रतिबिंबित होता है।

'मैला आँचल' नायक विहीन उपन्यास है। इसका नायक वह समस्त अंचल है जिसका जिक्र उपन्यास में किया गया है। लेखक ने कथा के माध्यम से विश्रृंखलाबद्धता का प्रभाव जगाने की चेष्टा की है। हिंदी साहित्य में ऐसी कुछ कृतियों में 'मैला आँचल' भी समाहित है।

सागर लहरें और मनुष्य :

उदय शंकर भट्ट द्वारा रचित उपन्यास 'सागर लहरें और मनुष्य' में तूफानों से संघर्ष करते, समुद्र की लहरों में साँस लेते, जीवन के धनी मछुआरों की अंतरंग कहानी हैं। इस उपन्यास का केंद्र बम्बई के पश्चिमी तट के मच्छीमारों का गाँव 'बरसोवा' का परिवेश, वहाँ रहने वाले मनुष्य का जीवन, स्थानीय भाषा बोली, रहन-सहन, संस्कृति, संघर्ष, आदि का जीवंत दस्तावेज है। इसका शीर्षक ही इस बात को पुष्ट करती है कि सागर के लहरों के बीच मनुष्य का जीवन कैसा है। इस उपन्यास के कथावस्तु, को आगे ले जाने में पात्र रत्ना का योगदान महत्त्वपूर्ण है जो जीवन में संघर्ष करके कुछ हासिल करना चाहती है। मछुवारें के जीवन से रत्ना संतुष्ट नहीं है। वह जीवन में परिवर्तन चाहती है। बम्बई के ऊचें-ऊचें महल उसे आकर्षित करते हैं। लेखक रत्ना के माध्यम से कथावस्तु तो आगे ले जाते हैं साथ ही अंचल के विभिन्न पहलू को भी उजागर करते चलते हैं। उपन्यास के माध्यम से बरसोवा में रहने वाले उन मछुआरों की कथा को व्यक्त करने की चेष्टा की गई है। यह एक व्यक्ति की कथा नहीं संपूर्ण 'बरसोवा' समाज की कथा है। यह व्यक्तिवादी चेतना का उपन्यास न होकर समाजशास्त्रीय और सामाजिक चेतना का उपन्यास है। इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने 'बरसोवा' के जीवन को,

मछुआरे के आचार-विचार को उनके ग्रामीण व्यवहारों को, उनकी सहज-सरल भाषा को और संपूर्ण संस्कृति को यथार्थवादी शैली में चित्रित किया गया है। मछुआ जीवन में व्याप्त रीति-नीति, सदाचार-दुराचार, प्रेम-वियोग, ईर्ष्या-द्वेष, कलह-सुलह, नैतिक-अनैतिक, विश्वास, परंपरा, अंधविश्वास आदि का जीवंत दस्तावेज है। यह सागर के लहरों के बीच संघर्ष करते मनुष्य का जीवन चित्रण है।" तूफानों में उमड़ते, समुद्र की लहरों में साँस लेते मनुष्यों की कहानी हैं। जहाँ घोंघा, मछलियों और बेशुमार जंतुओं की तरह हवाएँ बोलती हैं, बादल गरजकर ललकारते हैं, बिजलियाँ लहरों से श्रृंगार करती है और भी कि इस उपन्यास में लेखक ने समुद्र को वाणी दी है, लहरों में बातें की है और दी है सदियों से कोई मच्छीमारों की आत्मा पहचानने की आँखें।"[49]

आधा गाँव :

'आधा गाँव' उपन्यास राही मासूम राजा द्वारा रचित है। यह उपन्यास मुसलमानों के जीवन पर आधारित है। उपन्यास का प्रधान क्षेत्र गाजीपूर गंगौली है। इस गाँव में रहने वाले शीया मुसलमानों के दस परिवारों के जीवन का यथार्थ चित्रण है। प्रथम बार हिंदी साहित्य में छोटे से गाँव में रहने वाले शिया मुसलमानों की सामाजिक और आर्थिक समस्या को सामने लाने की चेष्टा की है। देश विभाजन के मूल्य पर मिली आजादी कितनी मँहगी पड़ी 'आधा गाँव' उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। लेखक ने प्रमुख रूप से मुसलमान जाति को केंद्र में रखा था परंतु आवश्यकता अनुसार अन्य जाति का जिक्र भी किया है, स्वतंत्रता के नाम पर निर्माण किया गया भारत-पाकिस्तान के कारण हिंदू और मुसलमानों में जो मानसिक आघात मिला था 'आधा गाँव' उस मानसिक आघात को अभिव्यक्त करता है। यह उपन्यास अपने समय, समाज तथा इतिहास की प्रतिक्रिया से गुजरता है। "यह उपन्यास वास्तव में मेरा एक सफर है। मैं गाजीपुर की तलाश में निकला हूँ, लेकिन पहले मैंने अपनी गंगौली में ठहरूंगा। अगर गंगौली की हकीकत पकड़ में आ गई तो मैं गाजीपुर का 'एपिक' लिखने का साहस करूँगा। यह उपन्यास, वास्तव में उस एपिक की भूमिका हैं।"[50]

उपन्यास में 'राही' अपने पूरे परिवार के साथ स्वयं मौजूद थे तथा वहाँ घटनेवाले घटनाओं में उनका उपस्थिति स्पष्ट दिखाई पड़ती है....मैं जिस गाँव और जिन लोगों की बातें कर रहा हूँ, वह मेरा गाँव और मेरे अपने लोग हैं और मैं उनसे प्यार करता हूँ....मैंने पूरे गाँव को नहीं चुना, बल्कि गाँव के उस टुकड़े को चुना, जिसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"[51]

इस उपन्यास में आजादी के बाद भारत-पाकिस्तान के नाम पर बाटे गये दो मुल्क के कारण हिंदू-मुसलमानों की मानसिक त्रासदी को चित्रित करने के साथ ही मुसलमानों के समाज व्यवस्था, आर्थिक स्थिति, जीवन, पर्व-त्यौहार, विश्वास, परंपरा, सामाजिक जीवन, वातावरण आदि चित्रत है। अतीत के टूटती स्थिति और नये बदलते समय को आकर्षित रूप में लेखक ने प्रस्तुत किया है। यह किसी एक मुसलमान की कथा नहीं बल्कि गंगौली को केंद्र में रखकर सामूहिक मुसलमानों के जीवन को दर्शाया गया है।

कब तक पुकारू :

'कब तक पुकारू' रांगेय राघव की चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास का क्षेत्र राजस्थान और ब्रज के सीमांत पर बसे 'बैर' नामक ग्राम की है। अंचल को केंद्र में रखकर खानबदोश जयराम पेशा नटों का जीवन को अभिव्यक्त किया गया है। खानबदोश जाती 'करनट' ब्रज में रहनेवाले हैं। उनके जीवन के संघर्ष को लेकर उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। उपन्यास में नट जाति की अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, अज्ञात, अज्ञानता, शोषित एवं तिरस्कृत जीवन की कथा है। समाज में व्याप्त जाति के नाम पर शोषण को इस उपन्यास में दिखाया गया है। किस प्रकार समाज में दलित या निम्न जाति के लोग शोषण, उत्पीड़न, प्रताड़ना का स्वीकार होते हैं, साथ ही पुलिस और दूसरे कर्मचारियों के भ्रष्टाचार तथा सामाजिक आर्थिक एवं नैतिक समस्याओं से लोग पीड़ित हैं। नट जाति के लोग बचपन से ही संघर्ष करते हैं, प्रकृति के गोद में पलकर बलवान होते हैं। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने नट जाति के संघर्ष को चित्रण करने के साथ ही उस क्षेत्र के अंचल का वातावरण, जंगल, पेड़-पौधे, जंगली औषधि के पेड़, जड़ी-बूटियों का भी चित्रण किया है। प्रकृति के गोद में रहने वाले नट जाति का जीवन, नाँच, बोली, कला-करतब, प्रेम-ईर्ष्या, आंतरिक आत्मीयता, सामाजिक संरचना, नारी-पुरुष संबंध, व्यवसाय, धोखेबाजी, रीति-रिवाज, पर्व, खान-पान, लोकगीत आदि तत्व यह आँचलिक उपन्यास होने की पुष्टि करती है। यह केवल एक व्यक्ति की गाथा नहीं पूरे नट समाज की कथा है। "नटों के जीवन के संशिलष्ट यथार्थ को उभारने के लिए लेखक ने परिवेशों के रूप में या तनाव तथा संघर्ष पैदा करनेवाली प्रतिकथा के रूप में उस भू-भाग की अन्य जातियों के लोगों को भी लिया है।"[52]

अलग अलग वैतरणी :

प्रेमचंद के पश्चात् ग्रामीण जीवन का चित्रण करने वाले सफल कथाकारों में शिव प्रसाद सिंह का नाम उल्लेखनीय है। 'अलग अलग वैतरणी' उपन्यास के माध्यम से उत्तर प्रदेश के करैता गाँव को चित्रित किया है जो समस्त भारतीय गाँवों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन की समस्याओं, बिखराव, नैतिक मूल्यों में गिरावट, जातिभेद, अज्ञानता, अंधविश्वास आदि अत्यंत यथार्थवादी ढंग से विश्लेषण किया है। कथा का आरंभ करैता गाँव के देवी धाम पर लगनेवाली सालाना रामनवमी मेले से होता है। इस विषय में दयाल पंडित कहते हैं – "जो जनता को जितना चुतिया बनता है उतना ही मजा काटता है। यह नया जमाना है न ?"[53] गाँव के परिवर्तन के लिए विपिन नगर में पढ़ाई कर के आता है परंतु गाँव में व्याप्त घुटन, स्वार्थपरता, जाति-भेद के कारण रह नहीं पाते हैं। गाँव की वर्तमान हालात के संदर्भ में जग्गन मिसिर का विश्लेषण कितना सही है – "यहाँ रहते वे हैं, जो यहाँ रहना नहीं चाहते, पर कहीं जा नहीं पाते।"[54]

मूलतः लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से करैत गाँव की परिवेश, घटना, दुर्घटना, सांस्कृतिक रूढ़ियाँ, सामाजिक आर्थिक बदलाव, राजनीतिक जीवन, मनुष्य के विचार-चिंतन, मूल्यबोध का हास्य, के साथ गाँव के जनजीवन में अलग-अलग वैतरणीयों को चित्रित किया है। इस उपन्यास में उस अंचल या क्षेत्र में प्रयोग होनेवाली स्थानीय भाषा भोजपुरी के साथ लोकगीत, लोककथा मुहावरों आदि का प्रयोग किया गया है। जो आँचलिक वातावरण को अधिक पुष्ट बनाती है।

असमिया के आँचलिक उपन्यास :

कपिली परिया साधु :

'कपिली परिया साधु' नवकांत बरुआ द्वारा रचित एक असमिया आँचलिक उपन्यास है। यह उपन्यास नगाँव जिले में प्रवाहित होने वाली कपिली नदी के आस-पास के क्षेत्रों को लेकर लिखा गया है। कपिली नदी के समीप क्षेत्र में व्याप्त परिवेश, फल-फूल, पेड़-पौधे, संस्कृति, सामाजिक जीवन प्रवाह का चित्रण है। उस क्षेत्र में रहनेवाले लोगों के सहज सरल रूप उपन्यास में अभिव्यत है। वहाँ लोग नदी को अपनी जीवनदायी माता

समझते हैं, क्योंकि नदी एक प्रकार से असम के लोगों का जीविका निर्वाह करने का साधन भी है। असमिया साहित्य में नदी को केंद्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों में 'कपिली परिया साधू' उपन्यास अन्यतम् है।

कपिली परिया उपन्यास की कथावस्तु को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। कपिली नदी के किनारे बसे सहज ग्रामीण जन, रूपाय पात्र के जीवन को लेकर बनाया गया कथावस्तु और स्वत्रंता आंदोलन से संबंधित घटना। कपिलीपरीया वह गाँव है जो बाढ़ के समस्या से पीड़ित है। परंतु वहाँ बसे सरल लोगों को कपिली नदी सामाजिक आर्थिक आधार प्रादन करती हैं। उपन्यास का पात्र रुपार्यु कपिली नदी को माँ मानता है। लेखक ने रुपाई के माध्यम से कपिली परिया अंचल में व्याप्त जीवन, वातावरण, सामाजिक आर्थिक स्थिति, धर्म, संस्कृति, गीत, पर्व, नृत्य, बोलि, भाषा, स्वतंत्रता आंदोलन, राष्ट्रीय चेतना, विश्वास, परंपरा, यातना, आदि को दर्शाया हैं। लेखक ने आँचलिक पहलूओं को उजागर करने के लिए इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक वातावरण का यथार्थ चित्रण किया है। शिक्षा के प्रति बदलते मानसिकता को उपन्यास में इस प्रकार देखने को मिलता है "लोग अपने गहने बेचकर लड़के को पढ़ाते है। भगवान के कृपा से फल और सुपारी का व्यवसाय अच्छा चल रहा है।"[55]

रंगमिलीर हाँही :

कारबी जनसमुदाय के जीवन पर आधारित 'रंग मिलीर हाँही' उपन्यास रंगबंग तेरांग द्वारा रचित है। सन् 1981 में प्रकाशित यह पुस्तक उससे पहले पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यह उपन्यास नाटक रूप में गुवाहाटी दूरदर्शन में दिखाया गया था। कारबी जनजाति के जीवन पर आधारित यह उपन्यास असमिया साहित्य में जनजातीय जीवन पर लिखे गये प्रमुख उपन्यासों में एक है। इस उपन्यास की नींव अंचल में रखा गया है। कारबी समाज को साहित्य के केंद्र में लाकर खड़ा करने में इस उपन्यास का महत्त्व भूमिका है। इस उपन्यास के माध्यम से कारबी समाज में प्रचलित रहन-सहन, वेश-भूषा, सामाजिक मूल्य, रीति-रिवाज, आचार-विचार, लोकविश्वास, परंपरा, अंधविश्वास, मान्यताएँ, भाषा, बोली, नृत्य, लोक मान्यताएँ, लोकगीत, खाद्य आदि का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है।

कथा को आगे ले जाने के लिए प्रमुख पात्र के रूप में सारइक तेरांग है। जो अंचल की जीवंतता का प्रतीक है। उसके आस-पास ही कथा बूनी गई है और उसके माध्यम से ही अंचल के समग्र पहलू को उजागर किया गया है। वह कारबी समाज में पले-बड़े हैं परंतु संकीर्ण मानसिकता उनके अंदर कभी नहीं आई। कारबी समाज में स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसे उपन्यास में दर्शाया गया है। उपन्यास में अमफू, कादम्ब, कासांग आदि स्त्री पात्र इसका उदाहरण है। कारबी समाज में 'जिरसंग एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक अनुष्ठान है। गाँव अपने ही नियम-कानून से चलता है, दंड भी अपने ही गाँव के नियम अनुसार दिया जाता है। गाँव में पूजा, पर्व, उत्सव में साथ मिलकर एक दूसरे के सहायता करते हैं। सारइक तेरांग वह पात्र है जिसके माध्यम से कारबी समाज में व्याप्त विभिन्न पहलूओं को चित्रित करने की चेष्ठा की गयी है। सारइक तेरांग अतीत के टूटते मूल्यबोध और बदलते परिस्थिति को देखकर अचंभ है। सूग तेरांग अपने मन में निहित आवेग इस प्रकार लोकगीत के माध्यम से व्यक्त करता है-

"बंअई मिरलरि

नांपने ने इलि सिरेण ल आरनि

ने ससे लखिमी "[56]

अर्थात् इस इस परिवेश को देखकर मन विचलित हो उठता है। 'रंग मिलीर हाँही' उपन्यास लोक तत्व से भरपूर है। वातावरण, प्रेम, पर्यावरण, उत्सव, देव-देवी को लेकर अनेक लोकगीतों का जिक्र उपन्यास में हैं। अंचल के संपूर्णता को चित्रित करने के लिए वैविध्यपूर्ण जीवन को अभिव्यक्त किया गया है। लोकनृत्य, लोकवाद्य, लोक वाक्य, लोकभाषा, लोकगीत के प्रयोग ने कथा को विशिष्ट आँचलिकता प्रदान की है।

नोई बोई जाय :

असमिया समाज-संस्कृति को उजागर करने वाला उपन्यास 'नोई बोई जाय' डॉ. लीला गोगोई द्वारा रचित है। दिखोऊ नदी के किनारे सेंदुरीपाम अंचल को लेकर यह उपन्यास लिखा गया। उपन्यासकार ने फैलशबेक शैली का प्रयोग किया है। सेंदुरीपाम गाँव में रहने वाले लोगों का जीवन नित्य नए उपादान ग्रहण करते हुए परिवर्तित हो रहा है। अतीत के परंपरा टूट रहे हैं और बदलते परिस्थिति उनके अंदर हावी होते जा रहे हैं।

उपन्यासकार ने गाँव की इसी बदलते परिवेश को उपन्यास में चित्रित किया है। रचनाकार ने अंचल के विभिन्न पहलुओं को उजागर करने के लिए पात्र भागीरथ फूकन को कथावस्तु के रूप में बुना है। भागीरथ फूकन का बेटा विजन नगरीय मोह में पड़कर आँचलिक परिवेश को त्यागना चाहता है। इस परिस्थिति में भागीरथ फुकन अपने परंपरागत संस्कारों को सुरक्षित रख पाने में असमर्थ होता है।

उपन्यासकार भगीरथ फुकन के माध्यम से असमिया समाज में लुप्त होता मानवीयता को दिखाने का प्रयास किया है। वर्तमान समाज में न पहले जैसी आत्मीयता शेष है और न ही मानवता। भगीरथ फूकन अपने बीते दिनों की तुलना आज के समाज के साथ करते हुए अत्यंत दुःखी होता है। बदलते समय ने मनुष्य को संवादहीन और संवेदनाहीन बनाकर रख दिया है। मनुष्य को इस बात का ज्ञात ही नहीं कि आधुनिक बनने की प्रक्रिया में वे अपने अतीत के परंपरा खो रहे हैं। जो पीढ़ी दर पीढ़ी से चलती आ रही है। उपन्यासकार ने असमिया समाज के सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों पर अपनी दृष्टि का अलोकपात किया है। "जात-पात की कठोर व्यवस्था ने लोगों की धारणाओं को संकुचित बना दिया है। डॉ. लीला गोगोई ने 'नोई बोई जाय' उपन्यास के माध्यम से सेंदुरीपाम गाँव को केंद्र में लेकर उस अंचल में व्याप्त-जीवन, परिवेश, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, रहन-सहन, अंधविश्वास, परंपरा, खान-पान, खेत-खलिहान, पेड़-पौधे, लोकगीत, नृत्य, लोकउपकरण, मान्यता आदि का उल्लेख करते हुए बदलते समय के प्रभाव को चित्रित किया है। 'नोई बोई जाए' उपन्यास में लोकगीतों का भरमार है- जैसे प्रेम लोकगीत-

"आईकू तेजिमें बूपाईकू तेजिमे

तेजिमे समनीया भाई,

तूक ओ सुवागी तेजिव नुवारूँ

मरिम वरविहे खोई।"[57]

अर्थात् लेखक ने युवा भगीरथ फुकन की मनोदशा इस लोकगीत के माध्यम से चित्रित किया है। ऐसे ही 'नोई बोई जाए' उपन्यास में लोकगीतों का भरमार हैं। इन्हीं लोकतत्व के प्रयोग से कथा में आँचलिक बनी रहती है।

कईनार मूल्य :

अरुणाचल के आदि समाज को केंद्र में लेकर लुम्मेर दाई ने 'कईनार मूल्य' उपन्यास लिखा था । इस उपन्यास के माध्यम से आदि समाज में प्रचलित जीवन व्यवस्था, वातावरण, संघर्ष, रहन-सहन, आर्थिक जीवन, संस्कृति आदि का विश्लेषण किया है । उपन्यासकार ने आदि समाज में प्रचलित लड़की बेचने तथा उसका मूल्यग्रहण करने की सामाजिक परंपरा को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। आदि समाज में स्त्री के जीवन को केंद्र में रखकर उपन्यासकार ने उपन्यास की कथा को गति प्रदान की है। आदि समाज में लड़की पैदा होना आनंद का विषय है, क्योंकि विवाह के समय उचित मूल्य पर उसे बेचा जाता है। इसी प्रचलित समाज व्यवस्था के कारण पात्र गुमबा को उसके पिता बचपन में ही बेच देते हैं। गुमबा स्कूल जाने लगती है। शिक्षा प्राप्त करके गुमबा यह समझ जाती है कि समाज में प्रचलित यह व्यवस्था अत्यंत भयावह है। जिसका विरोध करना चाहिए। उपन्यास का शीर्षक 'कईनार मूल्य' का अर्थ है बेटी का मूल्य। जो समाज में प्रचलित कु-संस्कार का प्रतीक है।

यह उपन्यास असमिया साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर में लिखा गया महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। लड़की बेचने जैसी कुप्रथा के साथ ही बाल विवाह की समस्या को भी उपन्यास में दर्शाया गया है। गुमबा का विवाह कम उम्र में होने के कारण उसे शारीरिक और मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। पात्र गुमबा के माध्यम से आदि समाज में रहनेवाली हर स्त्री के दुःख दर्द को चित्रित करने की चेष्टा की गई है। इस उपन्यास में एक ऐसी बाहदुर गुमबा को दिखाया गया है जो समाज में प्रचलित कुप्रथा का विरोध करती है। गुमबा ऐसी साहसी स्त्री का प्रतीक जो समस्या से डरती नहीं है बल्कि उसका सामना करती है। साथ ही उपन्यास में आँचलिकता की पुष्टि के लिए आदि समाज की विभिन्न सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, परिवेश, लोक जीवन लोक उपकरण, संगीत, विसंगति, मूल्यबोध का पतन आदि का यथार्थ चित्रण मिलता है।

मिरि जियरी :

असमिया साहित्य के मूल्यवान उपन्यासों में रजनीकांत बरदलोई कृत 'मिरि जियरी' अन्यतम् है । यह उपन्यास लखीमपुर जिले के अंतर्गत सोवणशिरी नदी के किनारे अवस्थित धुनासूती गाँव एवं वहाँ बसे लोगों की जीवन कथा है। यह एक प्रेम कहानी पर आधारित आँचलिक उपन्यास है। प्रेम कथा को केंद्र में लेकर कथा को

गति प्रदान करने में अंचल के आँचलिक तत्व का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जंकी और पानोई के सरल-निश्चल प्रेम कहानी पाठकों के मन में वेदना की टीस उत्पन्न करता है। जंकी और पानेई पात्र बचपन से ही नदी किनारे खेल-कूदके बड़े होते हैं। उन दोनों का प्रेम यौवन अवस्था में प्रस्फुटित होता है। नराचिगा बिहू वाली रात दोनों सोवणशिरि नदी किनारे चंद्र देवता को साक्षी मानकर साथ जीने-मरने का शपथ लेते हैं।

परंतु पानोई के पिता धन लोभी हैं जो पानेई का विवाह मुखिया की लड़की के साथ तय कर देते हैं। इस परिस्थिति में दोनों गंधर्व विवाह करते हैं। परंतु इसके चलते उनका जीवन संघर्षमय बन जाता है। उनके जीवन में समस्याओं का पहाड़ टूट पड़ा जिसका कोई अंत नजर नहीं आता है। एक के बाद एक समस्या आती रहती है। उन्हें मिरि समाज ने प्राणदंड की सजा दी, अंत में उनके लाशों को सोवनशिरी नदी में बहा दिया गया, जो पाठकों के लिए अत्यंत मार्मिक स्थिति रहती है। इस कथानक के साथ-साथ उपन्यास में आँचलिक तत्व की भरमार है। मिरि समाज में प्रचलित जाति व्यवस्था, परिवेश, जीवन, रहन-सहन, संगति-विसंगति, नदी का महत्त्व, खेती, किसान, गीत, बोली, नृत्य, उत्सव, पर्व, परंपरा, नियम कानून आदि की अभिव्यक्ति की गयी है। प्रेम की संयोग-वियोग के स्थिति के साथ-साथ आँचलिक तत्व ने उपन्यास को गति प्रदान की है। निष्कर्षतः 'मिरि जियरी' के माध्यम से उपन्यासकार ने मिरि जन जीवन के आँचलिक पहलुओं को अधिक तटस्थ और यथार्थवादी ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया है।

साहित्य मनुष्य के निकट होता है। प्रकृतार्थ लेखक या साहित्यकार मानव जीवन का मूल्यांकन करते हुए अपने जीवन दर्शन को प्रस्तुत करता है। उपन्यास में कहानी या कथा तो होती है परंतु उसमें मानव जीवन का यथार्थ भी सम्मिलित होता है, उपन्यास के अंतर्गत आँचलिक उपन्यास में क्षेत्र विशेष के सत्य का उद्घाटन किया जाता है। जो जीवन के किसी एक वातावरण विशेष नहीं वरन् उस खंड की समग्र क्षेत्रीयता का प्रतीक है। जिसमें नायक की भूमिका अंचल ही निर्वाह करता है। आँचलिक उपन्यास में जीवन की सत्यता, देश काल, जाति, धर्म, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक सामाजिक प्रणाली, रीति-नीति परंपरा, संस्कृति आदि को व्यक्त करता है। मनुष्य के जीवन एवं अंचल से संबंधित समस्या हो या भिन्न विषय, सब आँचलिक उपन्यास में समाहित है। अंचल से जुड़ी सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू का विश्लेषण आँचलिक उपन्यास में किया जाता है।

हिंदी साहित्य में 'मैला आँचल' उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात् आँचलिक उपन्यास की परंपरा की शुरुआत हुई है। इसके पहले के उपन्यासों में भी आँचलिकता के तत्व तो मिलते थे लेकिन 'मैला आँचल' आँचलिकता की दृष्टि से पूर्ण आँचलिक उपन्यास है। रेणु के आँचलिक उपन्यास लिखने के बाद हिंदी साहित्य में इस परंपरा का श्री गणेश हो गया। अनेक साहित्यकार ने नए-नए विषयों को लेकर आँचलिक उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। जिनमें राही मासूम राज़ा कृत 'आधा गाँव' रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ, शिवप्रसाद सिंह कृत- 'अलग-अलग वैतरणी', नागर्जुन कृत 'बलचनमा' उदय शंकर भट्ट कृत 'सागर लहरें और मनुष्य', देवेंद्र सत्यार्थी कृत 'ब्रह्मपुत्र' राजेंद्र अवस्थी कृत- "जंगल के फूल', रामदरश मिश्र कृत 'सूखता हुआ तालाब' आदि प्रमुख है। असमिया साहित्य में भी आँचलिक उपन्यास की एक लंबी परंपरा पायी जाती है। जिनमें रंगवंग तेंराग कृत 'रंग मिलीर हाँही' नवकांत बरुआ कृत 'कपिली परीय साधु, डॉ. लीला गोगोई कृत 'नोई बोई जाय' लूम्मेई दाई कृत 'मिरि जियरी' वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य कृत 'ईयारुईगम' आदि प्रमुख हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है कि भारत के सभी अंचल एक दूसरे से अलग-अलग होते हुए भी समानता एवं विशेषता देखने को मिलता है, हिंदी और असमिया के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित विभिन्न पहलुओं में कहीं अलगाव है कहीं जुड़ाव है। क्षेत्र की भिन्नता के कारण यह अलगाव स्वाभाविक है।

संदर्भ :

1. आधुनिक परिवेश में फणीश्वरनाथ 'रेणु' व्यक्तित्व सृजन : मूल्यांकन, रुकमणी वर्धिनी- पृ.सं.- 23
2. रेणु रचनावली, फणीश्वरनाथ रेणु (सं. भारत यायावर) खण्ड-4, पृ.सं.- 431
3. वही, पृ.सं.- 83
4. वही, पृ.सं.- 112
5. सारिका पात्रिका (रेणु स्मृति अंक) अप्रैल 1976, पृ. सं.- 08
6. कला का जोखिम, निर्मल वर्मा, पृ.सं.- 68
7. हिंदी के आँचलिक उपन्यास, डॉ. मृत्युंजय उपाध्यय, पृ.सं.- 36
8. फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य, डॉ. वीरेंद्र नारायण सिंह, पृ. सं.- 9
9. वही, पृ.सं.- 10

10. फणीश्वरनाथ रेणु का कालचयी चरित्र मनोविश्लेषण, डॉ. विजयप्रसाद अवस्थी, पृ.सं.-87
11. फणीश्वरनाथ रेणु का कथा शिल्प, रेणु शाह, पृ.सं.- 185
12. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : श्रेठ कहानियाँ, सं. राजेंद्र यादव की भूमिका से
13. हिंदी साहित्य का आधुनिक काल, डॉ. ईश्वरदत्त शील, डॉ.आभा रानी, पृष्ठ- 370-371
14. फणीश्वरनाथ रेणु कथा साहित्य, डॉ. वीरेंद्रनारायण सिंह, पृ.सं.- 13-14
15. स्वामीर सानिध्यत उनतीस बसर, चंद्रप्रभा गोगोई, खगेंद्र गथ तालुकदार (संपा.) पृ. सं – 01
16. डॉक्टर लीला गोगोई : कर्पुर सुवास' लघुगुरु, महेंद्र बरा,पृ,सं.- 250
17. सिद्धांत कौमुदी, उणादि प्रकरण, अंतिम सूत्र, पृ.सं.- 751
18. आधुनिक परिवेश और नव लेखन, शिव प्रसाद सिंह, पृ.सं.- 116
19. वृहद प्रामाणिक हिंदी शब्दकोश, संपा. रामचन्द्र वर्मा, पृ.सं.- 81
20. आपत्कालोत्तर हिंदी ग्रामांचालिक उपन्यासों की मीमांसा, डॉ. वसंत सुर्वे,
21. हिंदी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा, भाग-1, पृ.सं.- 95
22. आँचलिकता और आधुनिक परिवेश कल्पना, मार्च 1965, शिवप्रसाद सिंह, पृ.सं.- 26
23. पूर्णिमा, राजनाथ पाण्डेय, अप्रैल, पृ.सं.- 6
24. डॉ. माली : जल टूटता हुआ अनुशीलन, डॉ. परदेशी, डॉ.देवरे, पृ.सं.- 52
25. हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ.सं.- 225
26. सारिका मासिक, अक्टूबर 1961, नन्दुलारे बाजपेयी, पृ.सं.- 91
27. आधुनिक परिवेश और नवलेखक, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.सं.- 129
28. हिंदी उपन्यास, डॉ. सुषमा धवन, पृ.सं.- 80
29. Bentley the english Regional Novel, page-7
30. abteams page- 113
31. उपन्यास आरू असमिया उपन्यास, गोविंद प्रसाद शर्मा, पृ.सं.-309
32. आधुनिक असमिया उपन्यासर शिल्प रीति, प्रदीप कुमार बरुआ, पृ.सं.- 80
33. कुछ-विचार, प्रेमचंद, पृ.सं.-71

34. आधुनिक साहित्य, नन्दुलारे बाजपये, पृ.सं.- 173

35. साहित्यालोचन, श्यामसुंदर दास, पृ.सं.-180

36. आलोचना, जनवरी 1966, मधुकर गंगाधर, पृ.सं.- 79

37. हिंदी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, डॉ. आदर्श सक्सेना, पृ.सं.- 70-73

38. हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ.सं.- 33

39. स्वातंत्र्योत्तर आँचलिक उपन्यास, सुभाषिनी शर्मा, पृ.सं.- 15

40. आँचलिकता और हिंदी उपन्यास, डॉ. नगीन जैन, पृ.सं.- 8

41. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में आँचलिकता, डॉ. प्रदीप श्रीधर, पृ.सं.- 16

42. प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, डॉ. सत्यपाल चुघ, पृ.सं.- 557

43. रामदरश मिश्र के उपन्यास में आँचलिकता, डॉ. प्रदीप श्रीधर, पृ.सं.- 18

44. हिंदी के आँचलिक उपन्यासों का शिल्प विधि, जगहर सिंह, पृ.सं.- 218

45. वही, पृ.सं.- 218

46. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु', प्रथम संस्करण की भूमिका

47. आँचलिक समग्रता की सच्ची अनुभूति 'दिशाओं' का परिवेश, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ.सं.-87

48. फणीश्वरनाथ रेणु और उनका कथा साहित्य, रागिनी वर्मा, भूमिका- डॉ. श्याम सुंदर शुक्ल

49. उदय शंकर भट्ट : सागर लहरें और मनुष्य का कवर पृष्ठ से

50. आधा गाँव, राही मासूम राज़ा, पृ.सं.- 11

51. आधा गाँव, राही मासूम राजा, उपन्यास के बीच में लिखी गई भूमिका से, पृ.सं.- 302

52. हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ.सं.-205

53. अलग अलग वैतरणी, शिवप्रसाद सिंह, पृ.सं.- 6

54. वही, पृ.सं.- 485

55. कपिली परीया साधु, नवकांत बरुआ, पृ.सं.- 20

56. रंग मिलीर हाँही, रंगवंग तेरांग, पृ. सं.- 93

57. नोई-बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.-68

तृतीय अध्याय

'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यास में सामाजिक-आर्थिक जीवन

अंचल या क्षेत्र ही आँचलिक उपन्यास का आधार एवं पृष्ठभूमि है। आँचलिक उपन्यासों में अंचल का जीवन, परिवेश, समाज, आर्थिक स्थिति, राजनैतिक स्थिति, परंपरा, सांस्कृतिक स्थिति, धार्मिक स्थिति आदि का उल्लेख अनिवार्य है। उपन्यास को गति प्रदान करने के लिए कथावस्तु बूना जाता है और उसी के साथ आँचलिक तत्व का उल्लेख किया जाता है। "आँचलिकता अपनी बनावट में किसी भी अन्य औपन्यासिक प्रवृत्ति की भांति मनुष्य को उसकी जिंदगी के साथ खोजती है। उसे घेरने वाले तमाम आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक पहलूओं के बीच मनुष्य की खोज जितनी महत्त्वपूर्ण है उतने ही महत्त्वपूर्ण ये पहलू भी है।"[1] आँचलिक उपन्यास में चित्रित व्यक्ति जीवन किसी निर्दिष्ट स्थान से रहने वाले जनमानस से संबंधित है। आँचलिक उपन्यास में क्षेत्र विशेष के हर एक सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू को उजागर करने की चेष्टा की जाती है।

आँचलिक उपन्यास में न केवल अंचल व्याप्त सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तत्व पर ध्यान दिया जाता है बल्कि उस अंचल से जुड़ी समस्याओं के उद्घाटन में भी बल दिया जाता है। इसमें वास्तविक या यथार्थ चित्रण पर बल दिया जाता है। अच्छाई हो या बुराई दोनों पहलू को सत्यता के साथ उजागर करते हैं। "आँचलिक उपन्यासों में सामाजिक स्थितियाँ किसी विशिष्ट भौगोलिक परिधि के भीतर विद्यमान सामाजिक संरचना की स्थितिशीलता और उसके टूटने की प्रक्रिया तथा मानवीय संबंधों के बदलाव के संदर्भ में उत्पन्न होती है और उनका प्रयोग लेखक अपने वस्तु संगठन के लिए करता हैं।"[2]

'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में उल्ल्लेखित सामाजिक जीवन निम्नलिखित हैं-

3.क. सामाजिक जीवन :

मनुष्य अपनी मूल प्रवृत्ति और प्रयोजन के कारण सामाजिक प्राणी कहलाता है। प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य ने प्राकृतिक संकटों से बचने के लिए सामाजिक जीवन की उपयोगिता और आवश्यकता को समझकर

परिवार बनाकर रहने लगा। धीरे-धीरे परिवार बढ़ता गया और एक समाज का निर्माण हुआ। 'सामाजिक' शब्द का शाब्दिक अर्थ है सजीव। यह शब्द 'समाज' में ईक प्रत्यय लगकर बना है। मानव हो या पशु हर किसी का अपना समाज होता है, जहाँ पर वे रहते हैं। समाज के निर्माण के पश्चात् वहाँ पर संस्कृति का जन्म होता है। उसमें समाज की आशा, आकांक्षा, आस्था-विश्वास, आमोद-प्रमोद, पर्व-उत्सव आदि का समावेश हो जाता है। ऐसा सामाजिक जीवन, व्यवस्था, परंपराओं का उल्लेख जायसी की रचनाओं में मिलता है। इस्लाम में मान्यता है कि- "मनुष्य को समाज में रहकर सामाजिक समस्याओं में उलझ कर मुक्ति पाना ही जीवन की सार्थकता है।"[3]

'समाज' का अर्थ एकाधिक है। किसी ने 'समाज' शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के लिए किया है, किसी ने समूह के लिए, किसी ने समस्त राष्ट्र के लिए, किसी ने मानवजाति के लिए, किसी ने मानव सभ्यता के लिए किया है, तो किसी ने पशु के समूह को भी समाज कहा है। व्यक्ति या पशु जब अपने समाज में रहने लगता है तो उनका सामाजिक जीवन आरंभ होता है। यहाँ सामाजिक संबंधों से तात्पर्य उन संबंधों से हैं जो अर्थपूर्ण ढंग से या किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए की जाती है। सामाजिक जीवन में सामाजिक संबंधों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब कोई व्यक्ति अपनी जैविक अथवा सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति के साथ क्रिया करता है, तब क्रिया के फलस्वरूप सम्पन्न होने वाले संबंध को सामाजिक संबंध कहते हैं।

समाज के अंतर्गत संबंध परिवर्तन होते रहते हैं। सामाजिक जीवन में परिवेश, शिक्षा, नैतिक मूल्य, नारी पुरुष संबंध आदि महत्त्वपूर्ण तत्व है। परिवर्तित समय के साथ इन तत्वों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। शहर हो या ग्रामीण क्षेत्र सब का अपना-अपना समाज, परंपरा, सांस्कृतिक जीवन, वातावरण, धर्म, रहन-सहन, राजनीतिक जीवन, आर्थिक जीवन, भाषा, लोकगीत आदि होती हैं। शहर की तुलना में ग्रामीण समाज में इनकी बहुलता रहती है और इन्हीं तत्व को लेकर अंचल का निर्माण होता है। वहाँ एक सामाजिक जीवन चलता है। सामाजिक मूल्यों के अनुसार मनुष्य का व्यवहार में परिवर्तन होता है और वह व्यवहार समय के साथ परिमार्जित भी होता है। साहित्य का संबंध समाज के साथ है, साहित्यकार जिस साहित्य की रचना करता है उसकी जड़े समाज से जुड़ी विषय वस्तु के साथ होता है। साहित्यकार किसी समाज में घटित घटनाओं को कलात्मक ढंग से साहित्य में अभिव्यक्त करता है। इसके अंतर्गत सामाजिक जीवन भी आता है।

3.क.i. ग्रामीण जीवन :

भारत विशाल जनसंख्या वाला देश है, जिसका बड़ा भाग गाँव में बसा हुआ है। गाँव में निवास करने वाले अधिकांश लोग अपनी आजीविका के लिए पूर्ण रूप से कृषि पर निर्भर है। देखा जाए तो भारत की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि ही है। "भारतीय जीवन तथा सभ्यता का मूल स्रोत कृषि है और उसका विस्तार ग्राम-जीवन में ही परिलक्षित होता है।"[4] भारतीय संदर्भ में जब भी ग्रामीण जीवन की बात की जाती है तो तपती हुई धूप में खेती करता किसान और उसके पारिवार, मिट्टी से खून-पसीने की खुशबू, लहराते सुनहले खेत, हाट-बाजार, मेला-पर्व आदि का दृश्य मन-मस्तिष्क को पुलकित कर देती है। संयुक्त परिवार से भरा हुआ घर स्वच्छ वातावरण, बड़ों का आशीर्वाद, बच्चों की किलकारी, नदी के तट पर कमर में गागर लेकर चलती स्त्रियाँ, फल-फूल से लदे पेड़-पौधें, पके खेतों की महक आदि का दृश्य आखों के सामने आती है।

ग्रामीण लोग प्रायः सादा जीवन व्यतीत करते हैं। ग्रामीण परिवेश में व्याप्त सुगंधित व ताज़ी हवा, प्रदुषण मुक्त परिवेश, हरियाली आदि उपन्यासकार को खींचती है। ग्रामीण जीवन में पूरा समाज एक परिवार की तरह रहता है। समस्या पड़ने पर एक-दूसरे की सहायता करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। ग्रामीण जीवन में सहज-सरल लोगों का निश्चल प्रेम देखने को मिलता। आमतौर पर छोटे-छोटे कच्चे मकान में रहने वाले ग्रामीण जनों का ह्रदय बहुत बड़ा होता है। उनके परिवार कर्मठता और आपसी सहयोग का बड़ा सुंदर उदाहरण देखने मिलता है। गाँव पर अधिकतर लोग खेती करते हैं। हल चलाना, खेतों में मिट्टी ठीक करना, बीज बोना, सींचाई करना, फसल काटने का दृश्य अत्यंत मनमोहक रहता है। ग्रामीण समाज में केवल पुरुष ही नहीं महिला भी परिवार चलाने में मदद करती है। ग्रामीण समाज में लोग बलवान तो होते हैं परंतु धैर्य और सहनशीलता की कमी भी होती है।

भारतीय संस्कृति का मूल रूप गाँव के जीवन में ही बचा है। शहरी लोगों के तुलना में गाँव के लोगों का जीवन बहुत अलग होता है परंतु भारतीय संस्कृति की रीति-नीति, परंपरा, पर्व, त्योहार, नृत्य, लोकगीत केवल गाँव में ही मौजूद है। गाँव केवल मात्र भौगोलिक क्षेत्र से ही नहीं बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी हमारे अतीत का एक जीवंत दस्तावेज है। इसलिए वर्तमान समय में गाँव को बचाने की चेष्टा की जा रही है। गाँव में मौजूद विभिन्न जातियों, उनकी संस्कृति के अलावा पशु-पक्षी आदि में भी एकता है। गाँव के माध्यम से ही पूरे

देश की ग्रामीण समाज और सभ्यता संस्कृति का वर्णन किया गया है। आज के बुद्धिजीवी लेखन और जीवन दोनों ही स्तर पर ग्रामीण जीवन को बचाने के प्रति प्रयासरत है।

ग्रामीण जीवन जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति की जीवंत दस्तावेज है तो दूसरी ओर ग्रामीण समाज में बुराइयाँ व्याप्त है। सबसे बड़ा अभिशाप तो निरक्षरता है। अनपढ़ होने के कारण ग्रामीण लोग ठग चालाक व्यक्ति के कहने में जल्दी आ जाते हैं। जिस कारण उन्हें जमींदार, साहूकार आदि से शोषित होना पड़ता हैं। ग्रामीण समाज में प्रचलित अंधविश्वास, कुसंस्कार आदि के चलते उन्हें कई बार समस्याओं का सामना करना पड़ता है। परंतु वे अपने मान्याताओं को बदलने को तैयार नहीं रहते। डाईन के नाम पर कितनी महिलाओं को मार दिया गया है जिसका कोई हिसाब नहीं है। बाल-विवाह उनके समाज में प्रचलित एक सामाजिक बुराई है, जिसके चलते कम उम्र की लड़की शारीरिक और मानसिक शोषण का शिकार होती है। ग्रामीण समाज में चमत्कारी बाबाओं और ओझाओं द्वारा महिलाओं का शोषण किया जाता है। ग्रामीण समाज में व्यापक रूप से धार्मिक ठग, पाखंड, अंधविश्वास देखने को मिलता है, जिसके चक्कर में ग्रामीण जन के सरल लोग सहज रूप से आ जाते हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि ही भारतीय अर्थव्यवस्था एवं भारतीय जीवन की मुख्य धुरी है। ग्रामीण समाज में अधिकांश जीवन कृषि के ऊपर ही निर्भर है। ग्रामीण समाज सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दृष्टि से कृषि पर निर्भर है। खेती में पुरुषों के समान महिलाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण है। महिलाओं को ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का रीढ़ भी कहा जाता है। विकासशील देशों में इनकी भूमिका अह्म रहती है। ग्रामीण जीवन के इन्हीं खट्टे-मीठे अनुभवों को साहित्यकार ने अपने साहित्य में उकेरा है। 'मैला आँचल' में रेणु ने ग्रामीण जीवन का मनोरम रूप चित्रित किया है – "इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी- मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।"[5] फणीश्वरनाथ रेणु ने अंचल में याप्त समस्त अच्छाईयों और बुराइयों को इस उपन्यास में चित्रित किया है। इस उपन्यास के माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म ग्रामीण जीवन और सामाजिक जीवन की अभिव्यक्त की गयी है। ग्रामीण जीवन के पिछड़ेपन, दुःख-दैन्य, अभाव, अज्ञान, अंधविश्वास के साथ विविध सामाजिक शोषण-चक्रों को व्यक्त किया है। लेखक ने 'मैला आँचल' के संबंध में लिखा है- "मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है।"[6]

ग्रामीण परिवेश का चित्रण प्रस्तुत करते हुए लेखक उपन्यास में लिखते हैं- "मेरीगंज एक बड़ा गाँव हैं, बारहो बरन के लोग रहते हैं। गाँव के पूरब एक धारा है जिसे कमला नदी कहते हैं। बरसात में कमला भर जाती है, बाकी मौसम में बड़े-बड़े गढ़ों में पानी जमा रहता है-मछलियों और कमल के फूलों से भरे हुए गढ़े ! पौष पूर्णिमा के दिन इन्हीं गढ़ों में कोसी स्नान के लिए सुबह शाम तक भीड़ लगी रहती हैं।"[7] 'मैला आँचल' उपन्यास बिहार के एक पिछड़े ग्रामीण अंचल को पृष्ठभूमि बनाकर कथा को गति प्रदान की गई है। वहाँ विभिन्न तरह के लोग रहते हैं। उनका स्वभाव, चरित्र, विश्वास, परंपरा रहन-सहन को उपन्यास में चित्रित किया गया है। मेरीगंज में बहती कमला नदी का जिक्र लेखक ने किया है। उपन्यास में रेणु स्वयं अपनी उपस्थिति को दर्शाते हैं। जिस कारण उस अंचल के परिवेश से उनका घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया है और इसी कारण ग्रामीण जीवन का चित्रण जीवंत रूप से उभर कर आया है। "मैला आँचल ! लेकिन धरती माता अभी स्वर्नांचल है ! गेहूँ की सुनहली बालियों से भरे हुए खेतों में पुरवैया हवा लहरें पैदा करती हैं। सारे गाँव के लोग खेतों में हैं। मानो सोने की नदी में कमर-भर सुनहले पानी में सारे गाँव के लोग क्रीड़ा कर रहे हैं। सुनहली लहरें ! ताड़ के पेड़ों की पंक्तियाँ झरबेरी की जंगल, कोठी का बाग, कमल के पत्तों से भरे हुए कमला नदी के गड्ढे।"[8] प्रस्तुत पंक्ति के माध्यम से फणीश्वरनाथ रेणु ने मेरीगंज अंचल के किसान और वहाँ की प्रकृति परिवेश को प्रस्तुत किया है। मेरीगंज क्षेत्र में व्याप्त जंगलों का उल्लेख भी रेणु ने उपन्यास में किया है। ग्रामीण क्षेत्र का चित्रण में पेड़-पौधे, जंगलों, फूलों का जिक्र होना स्वभाविक है- "कोठी के बगीचे में, अंग्रेज फूलों के जंगल में आज भी मेरी की कब्र मौजूद है। कोठी की इमारत ढह गई है। नील के हौज टूट-फूट गए हैं, पीपल, बबूल तथा अन्य जंगली पेड़ों का एक घना जंगल तैयार हो गया है। लोग उधर दिन में भी नहीं जाते।"[9]

शीतकालीन मौसम में वातावरण में चारों ओर नमी फैलती हैं। ग्रामीण परिवेश में इन मौसमों का महत्त्व अलग होता है। रात को आग सेंकना और सबेरे उठ कर पूजा करने का माहौल केवल ग्रामीण समाज में ही मिलता है। "माघ के ठिठुरते हुए भोर को मठ से प्रातकी (प्रभाती) की निर्गुणवाणी निकलकर शुन्य में मँडरा रही है। बूढ़े मध्य साहब पहला पद कहते हैं।"[10] प्रातःकाल की शांत वातावरण मठ में महंत के क़दमों से पुलकित हो उठती है। इसका वर्णन रेणु इस प्रकार करते हैं- रामदास की खंजड़ी की गमक निःशब्द वातावरण में तरंगे पैदा करती है। खंजड़ी में लगी हुई छोटी-छोटी झुनुकियों की हल्की झुनुक ! मानो किसी का पालतू हिरन नाच रहा हो, दौड़ रहा हो ! डिम डिमिक ! रुन झुनुक-झुनुक !"[11] ऐसा शांत और मनोरम दृश्य केवल ग्रामीण समाज में ही

मौजूद है वरना आज के इस ठंड में प्रातःकाल भजन करने वालों की संख्या बहुत कम ही है। भोर में सुनाई देता यह भजन के स्वर मन-मस्तिष्क को पुलकित करती है। सर्दियों के मौसम में बहती निश्छल हवा ग्रामीण अंचल की शोभा बढ़ाती है। जिसका उल्लेख लेखक ने उपन्यास में किया है। गाँव इलाके में तालाबों में फूल खिलने का दृश्य स्वाभाविक है। खास करके कमल का फूल तालबों की शोभा बढ़ाती है। कमल के फूल अपनी सुदंरता के लिए प्रसिद्ध है। गाँवों के तालाबों में खिलता कमल एक मनोरम दृश्य का निर्माण करता है। लेखक ने मेरीगंज के तालाबों में खिलते कमल का जिक्र इस प्रकार किया है- "यहाँ गड्ढ़ों और तालाबों में कमल के पत्ते भरे रहते हैं। कहते हैं, फूलों के मौसम में छोटी-छोटी गड़हियाँ भी किस्म-किस्म के कमल और कमिलनी से भर जाती है।"[12]

लेखक ने एक ओर ग्रामीण जीवन का सुंदर वर्णन किया है तो दूसरी ओर गाँव में प्रचलित अंधविश्वास को भी उपन्यास में उल्लेख किया है। गाँव में विश्वास है कि स्त्री अगर बीमार पड़े तो बिना दवा की ठीक हो सकती है- "लड़की की जाति बिना दवा-दारु के ही आराम हो जाती है।"[13] मनुष्य का शरीर सब का एक ही होता है। बीमार से छुटकारा पाने के लिए स्त्री को भी दवा चाहिए पुरुषों को भी। परंतु समाज में यह अंधविश्वास प्रचलित है कि स्त्री का शरीर बिना दवा से ही ठीक हो सकती है।

असमिया के आँचलिक उपन्यास 'नोई बोई जाय' में लेखक लीला गोगोई ने ग्रामीण जीवन का चित्र अंकित किया है। एक समय ऐसा था जब साहित्यकार का ध्यान विशेष क्षेत्र में रहने वाली जन-जातियाँ, अशिक्षित निवासियों, ग्रामीण जीवन पर था और रचनाकार ने उसी को साहित्य में उकेरे जाने की चेष्टा की। उस समय असमिया भाषा में लिखे गए उपन्यासों में 'नोई बोई जाय' प्रमुख है। इस उपन्यास में लेखक ने सेंदुरीपाम गाँव के ग्रामीण जीवन को बड़े मनोरम रूप में अभियक्त किया है। "नागकेशर फूल देखने के साथ मन नाचने लगता है। मधु मालती का गंध नाक को स्पर्श करके जाता है। नदी किनारे केतकी फूल के गंध से वातावरण आनंदित हो उठता है। कदमनी जंगल नागकेशर फूलों से भरा पूरा रहता है।"[14] ग्रामीण परिवेश को देखकर मानो ह्रदय आनंदित हो उठता है। सुंदर फल-फूलों से लदे हुए पेड़-पौधे, सुनहले खेत, नाना स्थानीय फूलों से भरा रहता है। असम में अघन महीने में खेत सुनहले रंग के हो जाते हैं। धान पककर काटने का समय होता है। इस मनोरम दृश्य को लेखक ने इस प्रकार व्यक्त किया है- "अगहन महीना खेत में पके धान। हामसोया खेत, मानो चारों ओर से लक्ष्मी फल-फूल रही हैं।"[15]

प्रकृति का सुंदर चित्र के साथ गाँव में अनेक बुराइयाँ प्रचलित है। जिस कारण गाँव दिन-प्रतिदिन पतन की ओर जा रहा है – "देखो उस पार सुवागी का गाँव है। संपूर्ण गाँव कानी खाने वालों से भरा पड़ा है। जमीन, गहनें बेचकर भी लोग कानी/गाजा खाते हैं। लोगों की स्थिति ठीक नहीं है जैसे-तैसे दो वक्त की रोटी खाते हैं।"[16] ग्रामीण जीवन में नशा एक महत्त्वपूर्ण बुराई है। जिसक चलते समाज में अपना मान-सम्मान खोने के साथ साथ धन-संपत्ति भी खोते हैं। सुवागी के पिता गाजे के नशे में धूत होकर अपना जमीन संपत्ति खो चुका है। केवल अब घर की जमीन ही बची हुई है। कानीय (गजेरी) बोलकर भगरथी के बड़े पिताजी उसकी बेटी से भगीरथ का शादी नहीं करना चाहते हैं।

कानी के नशे के बाद अब भांग के नशे के बारे में उपन्यासकार ने इस प्रकार जिक्र करते हैं। "भांग खा कर बहुत अच्छा लगता है। कुछ समय के लिए दुःख दर्द भूल सकते हैं।"[17] अब तो गाँव में भांग के नाम पर पूजा भी की जाने लगी है। "जंगली भांग से चक्कर आता है, मोहीनी भांग अच्छा है। कानी का जैसा नशा नहीं होता है, इसे जहाँ-तहाँ खरीद सकते हैं। जंगली भांग और मोहीनी भांग एक साथ खाने से भी नशा चढ़ता है। फकीर के साथ रहने के पश्चात् ही वाखर प्रायः भांग खाता है। धीरे-धीरे गाँव में भांग का मेला होने लगा है। किसी न किसी के घर पूजा होने से भांग अर्जन करना पड़ता है। वाखर भांग मेला का कर्ता धर्ता है।"[18]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि 'मैला आँचल' और नोई बोई जाय' दोनों आँचलिक उपन्यास में ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण है। ग्रामीण जीवन की अच्छाईयाँ और बुराइयाँ दोनों का अभिव्यक्त किया है। जहाँ एक ओर ग्रामीण जीवन के सहज-सरल रूप, वातावरण, प्रकृति सौंदर्य चित्रित है तो दूसरी ओर समाज में प्रचलित अंधविश्वास, भांग, कानी के नशे में पड़कर अपने आप को त्यागने के प्रवृत्ति को दिखाया गया है।

3. क.ii. परिवार :

इस संसार में बिना परिवार के कोई भी व्यक्ति अधूरा है। परिवार ही व्यक्ति विकास की धुरी है। एक व्यक्ति के बौद्धिक विकास में परिवार महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। आगे बढ़ने और सुरक्षित रहने के लिए संसार में 'परिवार' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। परिवार एक व्यक्ति को सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराता है। परिवार में रहने वाल व्यक्ति अकेले रहने वाले व्यक्ति से ज्यादा खुश और सुरक्षित महसूस करता है।

एक खुशहाल परिवार एक व्यक्ति के पूरे जीवन को खुशहाल बना सकता है। लेकिन आज के इस चकाचौंध में परिवार का महत्त्व कम हो रहा है। आज के समय में परिवार के सदस्यों के बीच मेल-मिलाप कम और मन मुटाव अधिक देखने को मिलता है। शहरीकरण के कारण आज के समय में परिवार नष्ट हो रहे हैं। लोगों का अपने परिवार के सदस्यों के प्रति कर्त्तव्य तथा विश्वास का भाव कम होता जा रहा है इसलिए घरेलू हिंसा आदि अधिक सुनने में आता है।

एक परिवार में बहुत सारे रिश्ते होते हैं सबकी अपनी-अपनी जिम्मेदारियाँ होती है। आज के समय में लोग परिवार में इसलिए रहना नहीं चाहते क्योंकि सभी अपनी जिम्मेदारियों से भागना चाहते हैं। परिवार के सदस्यों के बीच भावनात्मक संबंध होना चाहिए ताकि एक-दूसरे की मदद करने के साथ-साथ वो एक दूसरे के साथ सुरक्षित महसूस कर सके लेकिन आज के समय में लोग अपने परिवार के सदस्यों के साथ ही दुर्व्यवहार करते हैं। परिवार का महत्त्व आज वैश्विकरण के कारण समाप्त होता जा रहा हैं। अपने परिवार के सदस्यों के लिए लोगों के पास समय नहीं होता लेकिन वे घर बैठे-बैठे पूरे संसार के लोगों से बात करते हैं।

प्रत्येक समाज के नियम, रीति-नीति, परंपराएँ और अपने मूल्य होते हैं परंतु प्रत्येक समाज की सबसे मौलिक प्राथमिक और जरूरी इकाई परिवार होती है। हमारे संस्कृति संयुक्त परिवार की रही हैं। दादा-दादी, माता पिता, चाचा-चाची, बुआ आदि से भरा पूरा परिवार। परंतु कालांतर में बदलती स्थिति ने परिवार को छोटा बना दिया है। वर्तमान समय में एकक परिवार दिखाई देता है। गाँव में परिवार का महत्त्व ज्यादा होता है। परंतु गाँवों से पलायन, औद्योगिकीकरण और रोजी-रोटी की तलाश ने परिवारों का विभाजन कर दिया है। विज्ञान और तकनीक के इस युग में परिवार टूटने लगा है। बड़े परिवार की जिम्मेदारी से मनुष्य भाग रहा है। मनुष्य में पलायनवादी मनोवृत्ति घर कर रही है। परिवार के अभाव से मानव जीवन असंपूर्ण है। परिवार के बिना मनुष्य जीवन का कल्पना नहीं कर सकते हैं। एक भरा पूरा परिवार भारतीय संस्कृति की नींव है। इसे बचाए रखने के लिए हमें चेष्ठा करनी चाहिए।

भारत मुख्यत कृषि प्रधान देश है और परिवार की संरचना कृषि जीवन को प्रभावित करता है। भारतीय परिवार में मर्यादाएँ और आदर्श का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पिता-माता, पुत्र, भाई, बहू नानी, आदि से भरा पूरा संयुक्त परिवार देखने को मिलता है। परिवार के सभी सदस्य मान, सम्मान, आदर्श, मर्यादा को मानकर चलते

है। भारतीय समाज ज्यादातर पितृसत्तात्मक है। परिवार का मध्य दायित्व पालन कर्ता पुरुष होता है। परंतु साथ ही परिवार को निर्दिष्ट ढंग से चलाने में स्त्री की अह्म भूमिका रहती है। रामायण-महाभारत काल से ही भारतीय समाज व्यवस्था में परिवार का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। न केवल पौराणिक कथाओं बल्कि साहित्य में भी परिवार के महत्त्वता को स्वीकार किया गया है। 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यास में इस महत्त्व को उजागर किया गया है। 'मैला आँचल' उपन्यास में खेलावन सिंह यादव की डेरावाली बलदेव की बुढियां मौसी को अपने साथ रहने के लिए आमंत्रण करते हुए इस प्रकार कहता है- "घर आँगन सब आपका है। जिस घर में एक बूढ़ी नहीं, उस घर का भी कोई ठिकाना रहता है। मैं अकेली क्या करूँ, दूध-घी देखू कि गोबर-गुहाल ?"[19] ग्रामीण परिवार में बुजुर्गों का होना महत्त्व पूर्ण होता है। उनके अभाव से परिवार पूरा नहीं होता। इस कथन से इसकी स्पष्टता मिली है। ग्रामीण समाज में सयुक्त परिवार में महत्त्व को तुलसीदास भी स्वीकार करते हुए उसका जिक्र रामचरितमानस में इस प्रकार किया है-

"बंदऊँ कौशल्या दिसी प्राची। कीरति जासू सकल जग माची ॥

दशरथ राउ सहित सब रानी। सृकृत सुमंगल मूरति मानी ॥"[20]

गाँव केवल भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं वरन् वहाँ प्रचलित सभ्यता, परिवार, समाज, जीवन, रहन-सहन आदि से आकर्षित बनता है। ग्राम में कोई व्यक्ति का आदर कैसे करते हैं यह इस उपन्यास में पात्र खेलवानसिंह यादव के माध्यम से दिखाया गया है- "जात का नाम, जात की इज्जत तो तुम्हीं लोगों के हाथ में है। तुम कोई पराए हो ? तुम्हारी मौसी मेरी चाची होगी। हम तुम भाई-भाई ठहरे।"[21] बलदेव को अपने घर रहने के लिए आग्रह प्रकट की है। असमिया आँचलिक उपन्यास 'नोई बोई जाय' में भी ग्रामीण जीवन में परिवार के महत्त्व को मनोरम रूप से चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में साधारण ग्रामीण जीवन को दिखाया गया है। स्वाधीनता से पूर्व और बाद में परिवार में बदलते स्थिति को दर्शाया है। 'नोई बोई जाय' के लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से वंश-परंपरा, संयुक्त परिवार, पारिवारिक एकता, प्रेम, मर्यादा त्याग भावना को चित्रित किया है, पात्र भगीरथ फुकन अपने परिवार के संबंध में कहता हैं- "परिवार बड़ा होने पर भी, सब लोग साथ मिलजुलकर रहते थे। यदि किसी को किसी से शिकायत भी होती है तो बाहर के लोगों को इसका पता नहीं चलता था।"[22] सयुक्त परिवार के माध्यम से वहाँ बसे लोगों का एक-दसूरे के प्रति सम्मान आदर भाव, परिवार में एकता को दिखाया है।

भगीरथ फूकन ने संयुक्त परिवार भी देखा है और इस परिवार को टूटते भी देखा है। इस संबंध में भगीरथ कहता है- "यह वर्ष बहुत अमंगल रहा है। देश विभाजन के साथ हमारा परिवार भी विभाजित हो गया। एक समय ऐसा था जब घर युवक-युवती से परिपूर्ण था। आठ लोग, खेत छः बीघा, घर-आँगन, बास दो बीघा, ईख तीन बीघा, लाऊ, बैगन, आलू सरसों आदि के लिए नदी किनारे की जमीन, अपने नातियों के लिए जंगलों को साफ करके निकाला हुआ जमीन आदि था, परंतु बच्चे बड़े हो गए। पढ़-लिखकर नौकरी करने लगे तो गाँव आना छोड़ दिया।"[23]

भारत के प्रत्येक क्षेत्र के गाँव की स्थिति कई मायने में समानता और असमानताएँ है। परंतु भारत की आत्मा और ह्रदय गाँव में बसता है। वहाँ के परिवार, परिवेश, सभ्यता हमारा नींव है। लेकिन पिछल कुछ दशकों से भारतीय गाँवों की स्थिति में जो परिवर्तन आया है वह सब को दृष्टिगत हैं। साहित्यकार ने भी उसे कलात्मक ढंग से रचना में चित्रित किया है। 'नोई बोई जाय' के पात्र भगीरथ फूकन सोचता है- "भरापूरा परिवार में बहुत से लोग हैं। जवान, बुढ़ा, बेटी-बहु, लड़का-लड़की सब मिलकर कुल चालीस लोग होंगे। एक ही चूल्हें में खाना खाते हैं। बहुएँ बारी-बारी से अपने हिस्सें का काम करती है, बेटे अपने-अपने हिस्से का। सास-ससुर की अनुमति के बिना घर में कोई कार्य नहीं होता। यदि बहुओं को मायके जाना होता है तो वे अपने सास के जरिए ससुर से आज्ञा लेती है।"[24] परंतु परिवर्तित समय में परिवार का विभाजन देखकर भगीरथ फुकन अत्यंत दुखी है। वे नहीं चाहते थे कि परिवार का विभाजन हो। उनका सपना था कि एक माँ के पेट से जन्मे बच्चें एक साथ रहे।

'नोई बोई जाय' फैलेश बेक शैली में लिखा गया उपन्यास है। परिवार की भूमिका विवाह, उत्सवों में महत्त्वपूर्ण होता है। सभी सदस्य मिलजुल कर कार्य सपन्न करते है। भगीरथ फूकन की माँ अपने नाति सोन के शादी को लेकर व्यस्त है। इस संबंध में भगीरथ फूकन कहता हैं – "विवाह में सगे संबंधी, रिश्तेदार किस किसको आमंत्रित करना हैं, माँ ने मुझे इसका हिसाब दिया है। फूफा-मौसी, मामा-भांजा, दीदी-जीजा, बहन-बहनोई, दादा-दादी, नाना-नानी, जेठ-जेठानी, वंश के अन्य सदस्यों, दोस्तों तथा जितने भी लोग हैं सबको आमंत्रित करना है। निमंत्रण के लिए सभी को सुपारी पान देने जाना है।"[25]

परिवार की यह अभिन्न परंपरा धीरे-धीरे टूटने लगी। आधुनिक समाज में लोग वैयक्तिक को अधिक महत्त्व देने लगे। परिवार का महत्त्व कमता गया, संबंध टूटते लगे। संबंधों में दूरिया आने लगी। संयुक्त परिवार में विघटन आने लगा। "पुराने लोग मधुमखी की तरह एक साथ रहते थे, परंतु नये लोगों का मन ही अलग है, दूसरों की बात नहीं सोचते, केवल अपना ही देखते हैं।"[26]

निष्कर्षत: यह कह सकते हैं कि 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में ग्रामीण जीवन सुदृढ़ और रसील दिखाई पड़ता है। परंतु तीव्र गति से परिवर्तन भी दिखाए दे रहा है। पारिवारिक संबंधों के महत्त्व खो रहे हैं। गाँव धीरे-धीरे खो रहा है। शहरी जीवन का महत्त्व दिख रहा है। संयुक्त परिवार में आज के बच्चे रहना पसंद नहीं करते। परिवार में पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पुत्र आदि के बीच संबंधों में परिवर्तन आ रहा है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में इस अलगाव की पुष्टि बार-बार होती है।

3. क.iii. शिक्षा :

तमसो मा ज्योतिर्गमय अर्थात् अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाओ। यह श्लोक भारतीय संस्कृति की आत्मा तथा मूल स्तम्भ है। व्यक्ति प्रकाश की ओर तभी जा सकता है जब वह शिक्षित हो। व्यक्ति को अपने आप को विकसित करना हो तो शिक्षा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति का वस्तुगत ज्ञान भले ही महत्त्वपूर्ण हो परंतु साथ ही नैतिक ज्ञान भी अत्यंत आवश्यक है। ऐसे शिक्षा से ही व्यक्ति समाज में आदरणीय बनता है। शिक्षा हर एक व्यक्ति की ऐसी आवश्यकता है जिसके बिना कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं हो सकता। एक शिक्षित व्यक्ति, शिक्षित समाज ही देश की उन्नति में सहायक बन सकता है। शिक्षा जीवन में आगे बढ़ने और सफलता प्राप्त करने के लिए बहुत आवश्यक है। शिक्षा ही व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। परंतु आज भी हमारा ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का प्रकाश पूरी तरह नहीं पहुँच पाया है। जिस गाँव में पले-बढ़े है आज उसी गाँव को त्याग करके शहर में बसने चले गए हैं। जिन-जिन लोगों को शिक्षा ग्रहण करने की सुविधा मिली उन्होंने तो ग्रहण किया परंतु अधिकांश लोग शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझ पाते और ग्रहण करने के लिए इच्छुक भी नहीं होते। स्वतंत्रता के पूर्व हो या बाद बहुत समय तक शिक्षा का प्रकास गाँव में नहीं हुआ था। परंतु धीरे-धीरे शिक्षा प्रदान करने हेतु संगठन, संस्था खोला गया। ये सब होने पर भी गाँव के अधिकांश बच्चे पढ़ने नहीं जाते। गाँव में व्याप्त आर्थिक संकट और अज्ञानता इसका प्रमुख कारण है, साथ ही शिक्षित वर्ग गाँव से पलायन करते देख परिवार और

गाँववासी हताश हो बैठता। जो पढ़-लिखकर गाँव का विकास करेगा सोचते थे वहीं पलायनवादी स्वभाव ग्रहण करता दिखायी देता है।

'मैला आँचल' उपन्यास में मेरीगंज गाँव में व्याप्त शिक्षा की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए स्वयं फणीश्वरनाथ रेणु लिखते है- "सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े-लिखे हैं, पढ़े लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नए पढ़ने वालों की संख्या है पंद्रह।"[27] मेरीगंज जैसे विशाल गाँव में मात्र दस लोगों का शिक्षित होना इस बात को दर्शता है कि गाँव में शिक्षा का मानदंड क्या है ? भारतवर्ष में ज्यादातर आबादी गाँवों में बसती है इसलिए ग्रामीण लोगों को अपनी अज्ञानता को छोड़कर पीढ़ी के भविष्य के बारे में चिंतन करना आवश्यक हैं। हमें स्वयं में ही शिक्षा के प्रति जागरूकता दिखानी चाहिए। ग्रामीण शिक्षा को सफल बनाने से सहायता करनी चाहिए। 'मैला आँचल' उपन्यास के उक्त कथन से यह पता चलता है कि ग्रामीण जन शिक्षा के प्रति कोई उत्साह नहीं है। शिक्षा के नाम पर हो रहे लापरवाही को रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास के माध्यम से चित्रण किया है। मैला आँचल' उपन्यास में कहीं पर शिक्षा देने की व्यवस्था का जिक्र किया है- "चरखा सेंटर में सिर्फ चरखा-करघा ही नहीं, बूढ़े लोगों को रात में पढ़ाया भी जाता है। औरतों और बच्चों को मास्टरनी जी पढ़ाती और बूढों को मास्टर जी। बूढा विरंचीदास दस दिनों से 'क ख ग घ, पढ़ रहा है लेकिन क के बदले ग से ही ककहरा शुरू करता है....ग घ क ख। मास्टर जी हैरान है....क्या सचमुच ही बूढा तोता पोस नहीं मानता ?"[28]

दूसरी ओर 'नोई बोई जाय' उपन्यास के माध्यम से पात्र भगीरथ फुकन द्वारा शिक्षा के महत्त्व को दिखाया गया है। भगीरथ फुकन अपने सभी बच्चों को शिक्षित करने की चेष्टा करता है। सेंदुरीपाम गाँव में उसकी बेटी है जो लड़की के रूप में गाँव से पहली बार स्कूल जाती है। भगीरथ फुकन ही नहीं उनकी पत्नी सुवागी भी शिक्षा के प्रति जागरूक है। वह कहती है- "पिताजी कहते हैं हमारे साथ जो हुआ सो हुआ। पढ़ना-लिखना नहीं करके बहुत बड़ा गलती किया। सोन को शहर में पढ़ने के लिए भेजना पड़ेगा। पढ़े-लिखे लोग आज कल सुखमय जीवन बिताते हैं।"[29] शिक्षा के महत्त्व को गाँव में रहने वाले भगीरथ और पत्नी सुवागी भी समझ गए थे। वह अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देकर सु-नागरिक बनाना चाहते हैं। भगीरथ फुकन अपने शिक्षा न लेने पर इस तरह पछताता है- "लिखना-पढ़ना जानता तो अच्छा था। अब पश्चाताप से क्या फायदा, समय तो चला

गया।"[30] भगीरथ फुकन ने बचपन में जो गलती की थी उस गलती को दोबारा दोहराना नहीं चाहते थे। अपने बच्चों को जैसे भी शिक्षा प्रदान करना ही उनका जीवन का लक्ष्य था। बच्चों की पढ़ाई के लिए उन्होंने धन-संपत्ति को त्याग कर दिया। "उसको पढ़ाने के लिए हाथी बेच दिया। जमा पूंजी खत्म कर दी।"[31] भगीरथ फुकन समझ गये है कि व्यक्ति केवल शिक्षा के माध्यम से उन्नति कर सकेगा। केवल खेती-बाड़ी पर निर्भर होकर व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। दिन प्रतिदिन खेती के लिए जमींन कमता जा रहा है। जनसंख्या बढ़ रहे हैं। शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य जीविका निर्वाह कर सकता हैं।

भगीरथ फुकन के जीवन में एक ही दुःख रहा कि उनका सयुक्त परिवार दिन व दिन विभाजित होती जा रही है। जिन बच्चों के पढ़ाई के लिए इतना दिन संघर्ष करते रहे वे शिक्षित होकर नगर में ही बस गये। आज वे गाँव का रास्ता भूल गये। साल में केवल एक या दो बार ही उनका घर आना होता है। उनकी सोच थी कि बच्चें शिक्षित होकर गाँव का विकास करेंगे पर सब उल्टा हुआ। उनका पुत्र विजन को डॉक्टर की पढ़ाई करवाये ताकी वह गाँव में आकर सेवा कर सकें परंतु वह भी शहर में बस गया। "पाँच साल बाद विजन डॉक्टर बनकर निकला। धीरे-धीरे घर आना उसका कम होता गया। मेरा आशा अर्थहीन हो गया। डॉक्टर होकर रोग निरोध करने के लिए वह वापस नहीं आया। गाँव का बच्चा बड़ा होकर नगर में बस गया।"[32]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में शिक्षा का स्वरूप मिलता-जुलता तथा अलगाव है। कहीं पर शिक्षा के प्रति आर्थिक स्थिति बाँधा बनती है तो कहीं पर अज्ञानता। ग्रामीण अंचल में शिक्षा की सुविधा कम होती है परंतु भगीरथ फुकन जैसे व्यक्ति एक प्रेरणा स्वरूप है। परंतु उनके बच्चों की बदलति मानसिक उन्हें दुःख देती है। भगीरथ फुकन शिक्षा के महत्त्व को भली-भांति जानते थे और अपने बच्चों को भी शिक्षित करने के लिए कोई कमी नहीं छोड़ा परंतु उनके बच्चें ही बदल गए। दूसरी ओर 'मैला आँचल' में मेरीगंज जैसे बड़े क्षेत्र में शिक्षा की अज्ञानता साफ झलकती हैं। जिस कारण नाना अंधविश्वास समाज में प्रचलित है।

3. क.iv. जातिगत स्वरूप :

भारतीय समाज में जात-पात का स्वरूप बड़ा ही कठोर है। खासकर के ग्रामीण क्षेत्र में इसका महत्त्व अधिक है। जाति के आधार पर व्यक्ति की स्थिति का अंकन किया जाता है। जाति व्यवस्था के चलते ग्रामीण समाज में उच्च-निम्न वर्ग का भेदाभेद अधिक है। जाति व्यवस्था एक सामाजिक बुराई है जो सदियों से भारतीय समाज व्यवस्था में प्रचलित है। लोग आलोचना करते हैं परंतु वास्तविक जीवन में इसका महत्त्व आज भी बहुत अधिक हैं। जातिगत स्वरूप को सत्ता में बैठे लोग अपने हिसाब से विकसित करते हैं। किसी भी व्यक्ति का मान-सम्मान, आदर, आचार-विचार, रहन-सहन आदि पर जाति बहुत प्रभावित करता है। ग्रामीण अंचल के विकास के लिए कोई योजनाएँ विफल होते है। हमारा संपूर्ण समाज जातिगत प्रथा द्वारा परिचलित होता है जो मानवीय जीवन को खोखला बना देता है। जातिवाद के चलते मनुष्य को मनुष्य के रूप में जीने नहीं दिया जाता है। निम्न वर्ग के लोगों को अस्पर्श माना जाता है, उसे छूने से हमारा धर्म भ्रष्ट होगा आदि मान्यताएँ है। जिसके चलते एक उच्च वर्ग दूसरे निम्न वर्ग को अमानवीय व्यवहार करता है। कोई भी व्यक्ति उच्च शिक्षा के बलबूते पर अच्छी नौकरी कर रहा है तो उससे सबसे पहले सवाल किया जाता है तुम कौन सी जाति के हो ? दलित हजारों वर्ष पहले सामाजिक व्यवस्था पर रचे गये धर्मग्रंथ का वह पात्र है जिसे किसी ने नहीं चाहा। यहाँ तक कि उनकी परछाँय तक से लोग खुदको कलंकित मानते हैं। उन्हें समाज के द्वारा तमाम तरह की पताड़नाएँ सहनी पड़ती है। ग्रामीण समाज में तो जातिगत व्यवस्था ने अपने जड़े मजबूती से जमा रखें हैं। 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में जातिगत प्रथा और उसके कुप्रभावों को देखने को मिलता है।

'मैला आँचल' आँचलिक उपन्यास में जाति व्यवस्था का शक्तिशाली रूप देखने को मिलता है। 'मैला आँचल' में जाति के नाम पर पृथक-पृथक दल बन गए हैं। "अब गाँव में तीन प्रमुख दल हैं, कायस्थ, राजपूत और यादव, ब्राह्मण लोग अभी भी तृतीय शक्ति हैं। गाँव के अन्य जाति के लोग भी सुविधानुसार इन्हीं तीनों दलों में बंटे हुए हैं।"[33] इन्हीं तीन टोली के बीच लड़ाई-झगड़े होते ही रहते हैं। सभी अपने-अपने जाति के गुण-गान करने में व्यस्थ हैं। मेरीगंज एक बहुत बड़ा गाँव है। जहाँ बहुत से लोग रहते हैं परंतु सब अपने-अपने जाति के टोली में रहते हैं। सबके अपने नियम कानून है। 'पोलियाटोली, तत्रिमा-छत्रीटोली, यदुवंशी, गहलोत-छत्रीटोली, कुर्म छत्रीटोली, आमात्य ब्राह्मणटोली. धनुकधारी छत्रीटोली, कुशवाहा छत्रीटोली और रैदास टोली।"[34] ग्रामीण लोगों

में जाति व्यवस्था को लेकर संकीर्ण मनोभाव है। उपन्यास गाँव में प्रचलित जातिवाद का वीभत्स चेहरे को पुष्टि करती है। "राजपूतों और कायस्तों में पुश्तैनी मन मुटाव और झगड़े होते आए हैं। ब्राह्मणों की संख्या कम हैं, इसलिए वे हमेशा तीसरी शक्ति का कर्त्तव्य पूरा करते रहे हैं। अभी कुछ दिनों से यादवों के दल वे भी जोर पकड़ा है। जनेऊ लेने के बाद भी राजपूतों ने यदुवंशी क्षत्रिय को मान्यता नहीं दी। इसके विपरीत समय-समय पर यदुर्वशियों के क्षत्रित्व को व्यंग्यविद्रूप के वाणों से उभारते रहे।"[35] प्राचीन वैदिक काल में समाज को श्रम विभाजन तथा सुचारूप से परिचालित करने के लिए चार भागों में बाँटा गया था। कालांतर में इनसे लाखों जातियाँ बन गयी। उन्हीं में कुछ जातियाँ 'मैला आँचल' उपन्यास में हैं। समाज में प्रचलित जातिगत व्यवस्था की निराशाजनक तथा दुःखद स्थिति को लेखक ने उपन्यास में चित्रित किया है। एक सभ्य समाज का दावा करते हुए भी जातिगत व्यवस्था का भयंकर रूप देखने को मिलता है। छुआ-छुत के कठोर व्यवस्था को उपन्यास में दर्शाया गया है। "विरंची एक बार राज की गवाही देने के लिए कचहरी गया तो तहसीलदार ने पूड़ी-जिलेबी खिलाई थी। गाँव में न जाने कैसे, यह हल्ला हो गया कि बिरंची ने तहसीलदार का जूठा खाया है। जनेऊ देने के लिए जाति के पंडित जी आए थे। विरंची के सर पर सात घंटे तक घैला-सुपाड़ी रखने की सजा दी गई थी, पाँच सुपारी पर घैला भर पानी गिरा कि ऊपर से झाड़ ककी मार। तसीलदार साहब क्या कर सकते हैं। जाति-बिरादरी का मामला है, इसमें वे कुछ नहीं बोल सकते। आखिर पाँच रुपैया जुरमाना और जाति के पंडित जी को एक जोड़ा धोती देकर विरंची ने अपनी हुका पानी खुलवाया था।"[36] जाति के मामले में बड़े से बड़े व्यक्ति भी कुछ नहीं कर सकता है।

किसी भी व्यक्ति का मान-सम्मान जाति पर निर्भर है। उपन्यास की घटनाएँ इस बात को पुष्टि प्रदान करते हैं- "जात?...नाम पूछने के बाद ही लोग यहाँ पूछते हैं जात ? जीवन में बहुत कम लोगों ने प्रशांत से उसकी जाति के बारे में पूछा है। लेकिन यहाँ तो हर आदमी जाति पूछता है। प्रशांत हँसकर कभी कहता है 'जाति डॉक्टर। डॉक्टर जाति ! डॉक्टर ! बंगाली है या बिहारी।' सामाजिक व्यवस्था में ख़ास करके व्यक्ति।"[37] जाति महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। भले ही वह बड़ा नौकरी कर ले परंतु उसको जाति से ही जाना जाता है। घर में उत्सव पर्व अपने जाति के लोगों का सम्मान सेवा करने के लिए होता है। ऐसे ही घटना उपन्यास में चित्रित है- "तहसीलदार ने अपने बाप के श्राद्ध में जाति-बिरादरीवालों को भात और गैर जाति के लोगों को दही-चुड़ा खिलाया था। सिंघजी ने अपनी सास के श्राद्ध में अपनी जाति के लोगों को पूरी मिठाई और अन्य जाति के लोगों को दही-चुड़ा

खिलाया था। खेलवान के यहाँ पिछले साल माँ के श्राद्ध में जैसा भोज हुआ से तो सबों ने देखा ही।"[38] छुआ-छुत का दूसरा मामला 'मैला आँचल' उपन्यास में सामने आता है। "इसी समय लछमी दासिन ने आकर खबर दी- 'सिपैहियाटोली के लोग भी नहीं खाएँगे। हिबरनसिंह का बेटा आकर कह गया है, ग्वाला लोगों के साथ एक पतल में नहीं खाएंगे। हम लोगों के गाँव का आटा घी-चीनी अलग दे दिया जाए, हम लोग अलग बनवा लेंगे।"[39] एक जाति अपने को दूसरे से बड़ा दिखाने के कारण साथ बैठकर नहीं खायेगें। उन्हें अपना-अपना खाद्य सामग्री अलग से दे वे स्वयं बनाकर खायेंगे वरना अपने से छोटे जाति के साथ बैठकर नहीं खायेंगे। इससे उनका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। कोई भी व्यक्ति कितना बड़ा क्यों न हो उसका सर्वच जाति पर ही निर्भर है। लेखक ने उपन्यास में इसी बात की ओर इशारा किया है- "जाति बहुत बड़ी चीज है। जात-पात नहीं माननेवालों की भी जाति होती है। सिर्फ हिंदू कहने से ही पिंड नहीं छुट सकता। ब्राह्मण है...? कौन ब्राह्मण ! गोत्र क्या है ? मूल कौन है?...शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता। शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना। लेकिन गाँव में तो बिना जाति के आपका पानी नहीं चल सकता है।"[40]

जाति व्यवस्था एक सामाजिक बुराई है जो प्राचीन काल से भारतीय समाज में मौजूद है । जिसे साहित्यकार ने साहित्य में उकेरा है। असमिया आँचलिक उपन्यास में भी ग्रामीण समाज व्यवस्था में प्रचलित जातिगत व्यवस्था को चित्रित किया है। जातिवाद ग्रामीण जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है जिसे छोड़कर ग्रामीण जीवन की कल्पना नहीं किया जा सकता। 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में लेखक ने भगीरथ फुकन के माध्यम से निरंजन गोस्वामी द्वारा गाँव में दिन-प्रतिदिन बढ़ते जातिवाद को दिखाया है। "निरंजन गोस्वामी गाँव में आने के बाद ही जात-कुल की कट्टरता बढ़ती चली गई। पहले आहोम, कछारी, सुतिया, कोच जाति के लोगों के बीच विवाह संपन्न किया जाता था। लेकिन गोस्वामी जी ने एक जाति द्वारा दूसरी जाति से विवाह संपन्न करने पर प्रायश्चित की प्रतिक्रिया लागू कर दी, जिसके फलस्वरूप लोगों का मन संकीर्ण होता चला गया।"[41] धर्म के नाम पर पंडित बड़े-बड़े बाते करते हैं। जनता को नाना भय दिखाते हैं जिस कारण जात-पात को धर्म के साथ जोड़कर कई प्रकार के प्रायश्चित करने के लिए विवश करते हैं। किसी भी व्यक्ति का अंहकार जाति को लेकर ही है। इसी को हथियार बनाकर उच्च वर्ग के लोग अपने से निम्न वर्ग के लोगों का शोषण करते हैं। अमानवीयता और असमानता जाति व्यवस्था का मूल स्रोत है। सामाजिक विभाजन का एकमात्र साधन जाति ही है। कोई व्यक्ति का पहचान जाति से ही जुड़ा है।

'नोई बोई जाय' उपन्यास में लेखक ने विभिन्न पहलू के माध्यम से धर्म के नाम पर हो रहे जातिवाद को दिखाया है। "पहले जब घर में, पूजा, पर्व, जन्माष्टमी जो भी होता था लोग एक साथ बैठते थे। किसी को किसी बात पर आपत्ति नहीं थी। निरंजन गोस्वामी आने के पश्चात् ही कौन कहाँ बैठ सकता है इस बात का तय होने लगा। परंपरा से चली आ रही नियम को तोड़ा गया। अंदर ही अंदर द्वन्द्व बढ़ता गया।"[42] सेंदुरीपाम गाँव में पहले जात-पात का विचार किए बिना सब पूजा-पर्व में एक साथ बैठकर पालन करते थे। जब से गाँव में पंडित निरंजन का आगमन हुआ तब से परंपरा से चली आ रही व्यवस्था में संघात आरंभ हुआ। धर्म को केंद्र में लेकर निरंजन गोस्वामी सरल जनता के मिलजुल के साथ खेलने लगे। कुछ भी कहना उचित न था। नामघर (मंदिर) में जाति के आधार पर लोगों को बिठाये जाने लगा।

केवल निरंजन गोस्वामी ही नहीं उनकी पत्नी भी जात-पात को बहुत कठोरता से मानती थी। कोई भी निम्न जाति के लोग उनके घर आता है तो कैसे व्यवहार किया जाता है उसका चित्रण लेखक ने उपन्यास में किया है- "किसी व्यक्ति को अगर खाने का सामान बर्तन में दिया तो उसे वहीं व्यक्ति को धोना पड़ता है। दो दिन वह बर्तन बाहर ही रहता है उसके पश्चात् शुद्धि होती है। जो कोई व्यक्ति उनके आँगन में प्रवेश नहीं कर सकता है।"[43] ग्रामीण समाज में व्याप्त कठोर जात-पात का उदाहरण निरंजन गोस्वामी और उनकी पत्नी के माध्यम से मिलता हैं। सेंदुरीपाम गाँव में हो रहे परिवर्तन को ग्रामीण लोग समझ रहे हैं परंतु इसका कारण निरंजन गोस्वामी को नहीं दे सकते क्योंकि वह बड़े जाति का है। उसके ऊपर कुछ भी नहीं कहा जा सकता वे पंडित हैं। धर्म को हथियार बना कर फिर से किसी न किसी रूप में ग्रामीण जनता पर प्रहार करने लगेगा।

भगीरथ फुकन के फूफा बहुत समय से बीमार थे। गाँव के तांत्रिकों ने हाथ ऊपर किया अंत में डॉक्टर का परामर्श लेना ही पड़ा। इस संबंध में उपन्यास में एक घटना चित्रित है "उन्होंने डॉक्टर के हाथ से सुई लेने के बाद से ही मान लिया कि उनका जात चला गया। प्रायश्चित भी किया, परंतु मन में जो भाव बैठा है उसको निकाल नहीं पाये। शरीर के अंदर विदेशी सामग्री रखकर जीवित हूँ और बाहर नीति नियम दिखाकर क्या फायदा।"[44]

अंततः कहा जा सकता है कि 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास के माध्यम से जातिगत व्यवस्था का भयंकर रूप को चित्रित किया है। ग्रामीण समाज का पूरा सामाजिक ढाँचा जाति व्यवस्था

पर आधारित है, इसे झुठलाया नहीं जा सकता। उमा चक्रवर्ती के शब्दों में – "यदि कोई ऊँची जाति का है और व्यक्तिगत स्तर पर गरीब है तो भी राजनीतिक तंत्र में मौजूद अपने जाति-भाइयों के माध्यम से वह सामाजिक वर्चस्वता का सुख भोगता है।"[45] ग्रामीण सामाजिक जीवन में जातिवाद एक प्रमुख यथार्थ है। भारतीय समाज का अध्ययन करने वाले इतिहासकार, समाजशास्त्री, नृविज्ञानी यहाँ तक कि राजनीतिक अर्थशास्त्री भी इस सच्चाई की उपेक्षा नहीं कर सकते। समाज को चित्रित करने वाले साहित्यकार इसी सच्चाई को कलात्मक ढंग से साहित्य में प्रस्तुत करते हैं।

3.क.v. नारी-पुरुष संबंध :

सामाजिक जीवन में एक स्त्री कई भूमिका निभाती है। कभी माँ बनकर, कभी पत्नी, कभी बहू, कभी बहन-बेटी बनकर। विधाता ने इस संसार की रचना की है। जल, वायु, अग्नि, पेड़, सागर, लहराते खेत, गगन, जीव-जंतु, पक्षी का निर्माण किया। आदि पुरुष जब सृष्टि में आया तो उसने सभी वस्तु को निहारने लगा परंतु उसे कोई साथी न मिला। विधाता ने तब नारी की रचना की। पुष्पों की कोमलता, मृगों से चंचलता, धरती से क्षमाशीलता, गगन से विशालता आदि गुणों को लेकर नारी की रचना हुई। प्राचीन समाज में नारी इतिहास एवं साहित्य के पृष्ठों पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि वैदिक युग में नारी को सम्मान प्राप्त था। वे स्वतंत्र थी, किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था। यज्ञों में भाग लेती थी, शिक्षा प्राप्त करती थी। समाज के विकास में नारी और पुरुष दोनों भागीदार थे। समय ने करवट बदली और सामाजिक स्वरूप में परिवर्तन होने लगा। प्राचीन काल में जहाँ स्त्री-पुरुष के समान सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक कार्यों में भाग लेती थी, आज उन्हें वंचित किया जाने लगा। परंतु समाज के विकास एवं निर्माण में दोनों की भूमिका अह्म हैं। हमारे भारतीय संस्कृति में स्त्री को आदि शक्ति का रूप मानकर देवी क स्थान दिया है, परंतु कालांतर में उसी देवी का शोषण, अमानवीय व्यवहार किया जाने लगा है, वर्तमान समय में शहरी क्षेत्रों में स्त्री शिक्षित होकर पुरुष के समान ही कदम से कदम मिला रही है परंतु ग्रामीण समाज में आज भी कई स्त्रियाँ विकास को नहीं जानती। आज भी वे शोषण का शिकार होती है। हमारा समाज पितृसत्तात्मक है। जिस कारण आज भी स्त्री को पुरुष के बराबर नहीं समझा जाता है। वह आज भी पुरुषों के अधीन है। आज भी वह प्राचीन रूढ़ियों और परंपराओं में बंधी हैं। पुरुष समाज स्त्री को अपने बराबर का नहीं समझकर उनके समान समाज में स्थान देने को तैयार नहीं। ख़ास करके

ग्रामीण अंचल में रह रही स्त्री को अधिक समस्याओं का शिकार होनी पड़ती है। उन्हें कहा जाता है कि पति परमेश्वर होता है, तुम्हारे लिए वह भगवान है। जिस कारण स्त्रियाँ हर अत्याचार सहकर पति के साथ रहती है। बाल विवाह के फलस्वरूप कम उम्र में ही उन्हें शारीरिक और मानसिक शोषण से गुजरना पड़ता है। साथ ही समाज में ऐसे पुरुष भी हैं जो सदियों से स्त्री के विकास के लिए कार्य कर रहे हैं। जैसे- स्वामी दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्या सागर, राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले आदि ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने स्त्री शोषण के खिलाफ आवाज उठाया तथा स्त्री का साथ दिया। समाज में चल रहे इन्हीं घटनाओं को साहित्यकारों ने अपने रचना में स्थान दिया।

'मैला आँचल' उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु ने स्त्री-पुरुष के संबंध को चित्रित किया है। हर व्यक्ति का अपना अलग व्यक्तित्व होता है और व्यक्तित्व संबंध स्थापन में अह्म भूमिका निभाती है। उपन्यास में जहाँ एक ओर सुंदर संबंध को दिखाया गया है तो दूसरी ओर कुत्सित प्रवृत्तियों को भी चित्रित किया गया है। उपन्यास में रेणु ने स्त्री-पुरुष के संबंध को व्यापक फलक पर प्रस्तुत किया है। उपन्यास में अधिक से अधिक अनैतिक संबंध को दिखाया गया है। "अंत में लछमी कानून सेवादास की ही हुई। सेवादास के वकील साहब ने समझाकर कहा था- महंथ सहाब ! इस लड़की को पढ़ा-लिखाकर इसकी शादी करवा दीजिएगा, महंथ सहाब ने वकील साहब को विश्वास दिलाया था वकील सहाब, लछमी हमारी बेटी की तरह रहेगी लेकिन आदमी की मति को क्या कहा जाए। मठ पर लाते ही किशोरी लछमी को उन्होंने अपनी दासी बना लिया। लछमी अब जावन हुई है, लेकिन लछमी के जवान होने से पहले ही महंत सेवादास की आँखें अपनी ज्योति खो चुकी थी। पता नहीं, लछमी को जवानी को देखकर उसकी क्या हालत होती। अब महंथ सेवादास को बहुत लोग प्रणाम बंदगी भी नहीं करते।....धर्म भ्रष्ट हो गया है। बगुलाभगत है। ब्राह्मचारी नहीं व्यभिचारी हैं।"[46] बड़े-बड़े पंडित साधु मठ में अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए छोटी-छोटी लड़की को रखते है। समाज के लिए वह बेटी है परंतु अपने लिए दासी। उपन्यास में महंथ सेवादास लछमी को बेटी के रूप में ले आता है परंतु वह लछमी के साथ शारीरिक शोषण करता है। लछमी उस शोषण को सहकर मठ में ही रहती है। क्योंकि उसके पास कोई समाधान नहीं। बाहर भी निकलकर जाए तो उसे शोषण करनेवालों की कमी नहीं रहती है। उसने सेवादास की दासी बनकर रहना ही स्वीकार किया। भारतीय समाज में यह देवदासी प्रथा प्राचीन काल से चलता आ रहा है। महंथ सेवादास के मृत्यु के पश्चात् उनका शिष्य मठ का महंथ रामदास बन जाता है वही भी लछमी के साथ वही करना

चाहता है जो सेवादास करते थे। "रामदास ! हाथ छोड़ो ! बैठो ! आखिर तुम चिंत को नहीं संभाल सके। माया ने तुम्हें भी अंधा बना दिया, माया से कोई परे नहीं। माया को कोई जीत नहीं सकता महंत साहब आज लछमी को हर बात का जवाब देंगे। तुम नरक की ओर पैर बढ़ा रहे हो। अब भी चेतो। अब चेतने से फायदा नहीं मुझे सरग नहीं चाहिए....लछमी को बचपन की बातों की याद दिलाना चाहता है रामदास। लछमी हाथ छुड़ाकर बिछावन पर से उठना चाहती है, लेकिन महंथ साहब ने दस मिनट पहले ही चौथी चिलम गाँजा फूँका है। 'मैं तुम्हारी गुरुमाई हूँ रामदास।' कैसी गुरुमाई, तुम मठ की दासिन हो। महंथ के मरने के बाद नए महंथ की दासी बनकर तुम्हें रहना होगा ! तुम मठ की दासिन हो।"[47]

एक बार जब कोई स्त्री मठ की दासी बन जाती है तो वह हर महंथ की वासना को तृप्त करगी। लछमी के साथ भी यही हुआ पहले सेवादास की दासी थी और उनके मरने के पश्चात् रामदास। देवदासी प्रथा भारतीय संस्कृति में परंपरा से चली आ रही है। यह प्रथा स्त्री शोषण का एक बड़ा अंग है। भारतीय समाज में यह प्रथा कब से आयी पता नहीं परंतु आज भी जगह-जगह यह कुरीती है। जहाँ मठ के मठाधिपति दासी को पैतृक संपत्ति की तरह प्रयोग करते है। पहले तो उन्हें मठ मंदिर में देख-रेख करने, पूजा-पाठ हो या नृत्य के लिए रखा जाता है अंत में उनका शारीरिक शोषण किया जाता है।

'मैला आँचल' उपन्यास में एक से अधिक के साथ अनैतिक संबंध बनाने की प्रवृत्ति अभिव्यक्त है। रमजूदास की स्त्री फुलिया की माँ को सिंघवा की रखेल कहकर कहती है – "रे सिंघवा की रखेल ! सिंघवा के बगान का बम्बै आम का स्वाद भूल गई ! तरबन्न में रात रात भर लुकाचोरी मैं ही खेलती थी रे ? कुरअंखा बच्चा जब हुआ था तो कुरअंखा सिंघवा से मुँह- देखौनी में बाछी मिली थी, सो कौन नहीं जानता।"[48] यह तो फुलिया की माँ की बात थी। रमजूदास की स्त्री का भांडा फोड़ करते हुए फुलिया की माँ कहती हैं- "मुँह संभालकर बात कर नेंगड़ी ! बात बिगड़ जाएगी। खलासी हमारा बहन बेटा है। बहन बेटा लगाकर गाली देती है ? गाली हमारे देह में नहीं लगेगी। तेरे देह में तो लगी हुई है। अपने ख़ास भतीजा तेतरा के साथ भागी तू और गाली देती है हमको ? सरम नहीं आती है तुझको ? बेशरमी बेलज्जी ! भरी पंचायत में जो पीठ पर झाड़ू की मार लगी थी सो भूल गई ? गुअरटोली के कलरू के साथ रात-भर भैस पर रसलीला करती थी कौन नहीं जानता।"[49]

अनेक स्त्रियाँ अपनी एवं आश्रितों के आर्थिक स्थिति के कारण वेश्या वृत्ति को अपनाति है। समाज में प्रचलित अपनी मान्यताओं रूढ़ियों और त्रुटिपूर्ण नीतियों द्वारा तथा संस्कार के कठोर नियम, दहेज प्रथा, विधवा विवाह पर प्रतिबंध, सामान्य चारित्रिक भूल के लिए सामाजिक बहिष्कार आदि के कारण स्त्री को वेश्या बनना पड़ता है। सबसे बड़ा तो आर्थिक कारण है जिसके चलते माता-पिता परिवार के जिम्मेदारी ने स्त्री को इस ओर ढकेलता है। 'मैला आँचल' उपन्यास में चित्रित घटना इस बात की पुष्टि करती है- "अरे फुलिया की माये ! तुम लोगों को न तो लाज है और न धरम। कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारीवाली साड़ी चमकाओगी ? आखिर एक हद होती है किसी बात की। मानती हूँ कि जवान बेवा बेटी दुधार गाय के बराबर है। मगर इतना मत दूहो कि देह का खून सुख जाए।"[50]

मैला आँचल उपन्यास में फुलिया और खलासी के संबंधों में त्रिकोणात्मक प्रेम द्वारा संबंधों में पड़ते दरार को चित्रित किया गया है- "फुलिया ने खलासी को छोड़ दिया है। खलासी को खोकसीबाग की एक पतुरिया से मुहब्बत था, रोज ताड़ी पीकर वहीं पड़ा रहता था। तलब मिलने के दिन वह पतुरिया खलासी का पीछा नहीं छोड़ती थी। तलब का एक पैसा इधर-उधर हुआ कि पैर की चट्टी खोलकर हाथ में ले लेती थी। आखिर फुलिया कितना बर्दाश करती। टीसन के पैटमान जी नहीं रहते तो फुलिया की इज्जत भी नहीं बचती। फुलिया अब पैटमान जी के यहा रहती है। खलासी के दिन पैटमान से लड़ाई करने आया।"[51] विवाह के पश्चात् स्त्री-पुरुष के मिलजुल से ही घर-गृहस्थी चलती हैं परंतु यहाँ फुलिया और खलासी को छोड़ देते हैं और टीसन के साथ रहने लगी। परंतु मर्द को इस पर भी आपत्ति है। वह अगर ऐसा कार्य करे तो स्त्री को आपत्ति नहीं होनी चाहिए परंतु स्त्री करने लगे तो वह झगड़ा का विषय हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु ने मेरीगंज अंचल में रहने वाली प्रायः स्त्री-पुरुष संबंध को उपन्यास में व्यक्त किया है। मंगलादेवी के माध्यम से लेखक ने नारी जीवन की विडम्बना और पुरुषों की स्वार्थपरता को अभिव्यक्त किया है। मंगलादेवी अपने जीवन के कटु अनुभवों को स्वयं इस प्रकार व्यक्त करती है – "आदमी के अंदर के पशु को उसने बहुत बार करीब से देखा है। विधवा-आश्रम, अबला आश्रम और बड़े बाबुओं के घर आया की जिंदगी उसने बिताई हैं। अबला नारी हर जगह अबला ही है। रूप और जवानी ?....नहीं, यह भी गलत। औरत होना

चाहिए, रूप और उम्र की कोई कैद नहीं । एक असहाय और देवता के संरक्षण में भी सुख-चैन से नहीं सो सकती।"[52]

एक ओर जहाँ स्त्री-पुरुष के अनैतिक संबंधों का उल्लेख रेणु ने उपन्यास में किया वहीं दूसरी ओर स्त्री-पुरुष के सुंदर संबंध भी चित्रित किया है। "पन्द्रह दिनों से कालीचरण मंगलादेवी की सेवा कर रहा है। दिन में तो और लोग भी रहते हैं, लेकिन रात में कालीचरण की ड्यूटी रहता है। डॉक्टर कहते हैं, अब कोई खतरा नहीं कमजोरी हैं, कुछ दिनों में ठीक हो जाएगी ।"[53] यह स्त्री के प्रति पुरुष का मानवीय प्रेम दिखता है । मंगलादेवी जिसने अपने जीवन में न जाने कितने बहुरूपी पुरुष को देखा है अब ऐसे सत्य पुरुष के दर्शन हैं धन्य हो जाती हैं।

दूसरी ओर डॉ. प्रशांत की दोस्त ऐसी एक स्त्री है जिसने हर वक्त प्रशांत को प्रेरणा और साहस दिया है। प्रशांत जब जेल से वापस आता है और अपने बच्चें को पहली बार बाहों में लेता है तो वह कमजोर दिखाई देता है। इस वक्त भी ममता कहती है- "पटना चले चलो एक महीने में ही तुम्हारा बेटा लाल हो जाएगा ।"[54]

लछमी अपने जीवन में अनेक अत्याचार सही । कम उम्र में ही उसे शारीरिक और मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ा। पुरुष को वह भली भांति जानती थी। परंतु बलदेव से मिलने के बाद पुरुष के प्रति उसका दृष्टिकोण बदला "लछमी बलदेव जी को भूली नहीं हैं। कहती है साधु सुभाव के पुरुष हैं, किसी का चित्त दुखाना नहीं चाहते । बलदेव जी मठ पर नहीं आते हैं, लछमी दासिन ने हिंसाबात करवाया है मठ पर, मठ पर नहीं जाएँगे।....बहुत सीधे हैं बलदेव जी। सच्चे साधू हैं। उनसे छिमा माँगना होगा ।"[55] लछमी को आज तक ऐसा सच्चा पुरुष नहीं मिला था जिसे वह कुछ कारण से दिल दुखाने से छमा माँग सके। बलदेव जैसे पुरुष को पाकर लछमी धन्य हो गई।

स्त्री-पुरुष के संबंध से समाज बनाता है। समाज में चल रहे घटना साहित्य में अभिव्यक्त होना स्वाभाविक है। 'मैला आँचल' नारी-पुरुष के संबंध को विविध रूप से चित्रित किया गया है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में भी स्त्री-पुरुष संबंध चित्रित हैं परंतु 'मैला आँचल' के तुलना में 'नोई बोई जाय' उपन्यास में अनैतिक संबंधों का चित्रण ज्यादा नहीं हुआ है। असमिया समाज में आज भी स्त्री पुरुष के साथ सहयोगी है। परिवार चलाने में

नारी-पुरुष की अह्म भूमिका 'नोई बोई जाय' उपन्यास में देखने को मिलता है। असमिया समाज में पुरुष के समान ही स्त्री को सम्मान प्राप्त है। असमिया समाज में बहू विवाह का प्रचलन था। दो से अधिक शादियाँ भी करते थे। परंतु सब एक साथ मिलकर रहते हैं। "हमारे समाज में औरत का दर्जा बहुत ऊँचा है। औरतें बच्चों को जन्म देती है। जिससे परिवार बढ़ता है। परिवार बड़ा होने से समाज में मान बढ़ता है। खेती ज्यादा होती है। पहले समय में दो-तीन औरतों के साथ विवाह किया जाता था। जितनी ज्यादा स्त्रियाँ घर में होगी, उतना ही खेती-बाड़ी के कार्यों में सुविधा होगी।"[56]

असमिया समाज में नारी की शक्ति को महत्व दिया जाता हैं। नारी का सम्मान समाज व्यवस्था में होता है। परिवार और समाज के भीतर नारी के प्रति भेद भाव को हटाकर उन्हें भी पुरुष की तरह समाज का अंग माना गया है। महिलाएँ परिवार के निर्णय में पुरुषों को मतामत देने का अधिकार रखती है। घर में ही निर्मित छोटे-छोटे ताँतखाल (कपड़ा बुनने वाला उपकरण) के माध्यम से कपड़ा बुनकर या खेतों में काम करके वे आर्थिक रूप से भी निर्भर होती है। पुरुष के बिना जिस तरह खेती करने का सोच नहीं सकते उसी प्रकार नारी भी खेती-बाड़ी के लिए आवश्यक अंग हैं। विनम्रता, स्त्री सुलभ उदारता का फायदा पुरुष नहीं उठाते हैं। हमारे देश की सदियों पुरानी संस्कृति नारी का सम्मान करना एवं उसके हितों की रक्षा करना असमिया समाज पालन करते आया है। महामानव महत्मा गांधी ने भी नारी को सम्मान की बात कहीं हैं और वे उनकी शिक्षा के प्रति सजग थे। असमिया समाज में समाज व्यवस्था पुरुष और नारी के प्रेम से चलता है। इसी बात का उजागर डॉ. लीला गोगोई ने 'नोई बोई जाय' उपन्यास में किया हैं। भगीरथ फुकन को जब दूसरी शादी के लिए घर से दबाव देने लगे तो वह अपनी पत्नी सुवागी से प्रेम से कहता हैं- "सुगावी मैं नादुकी के बारे में सोच ही नहीं सकता। परंतु क्या कर सकते हैं, सुपारी पान देकर अंगूठी लेने कौन जाएगा।"[57] भगीरथ फुकन के माध्यम से लेखक ने ऐसे व्यक्ति की प्रतिमूर्ति का निर्माण किया है जो अपनी पत्नी को सुख-दुःख का साथी मानता है। अपने निर्णय में उसका भी मतामत लेना चाहता है। भगीरथ के साथ नादुकी का सगाई हो चुका था परंतु भगीरथ सुवागी से प्रेम करता था जिस कारण उसने सुवागी के साथ भाग कर शादी कर लिया। कठोर समाज व्यवस्था के चलते भगीरथ को नादुकी से विवाह करने के लिए दबाव डाल गया है। सुवागी भी अपने पति से कितना प्रेम करती है उपन्यास में लेखक ने चित्रित किया है "सासू माँ भी अपने पुत्र के जीवन में सौत लाकर संघात पैदा करना नहीं चाहती, वे भी दिन प्रतिदिन चिंता में दूबली होती जा रही है। रात-रात भर नहीं सोती है।"[58] पति के प्रति निश्चल

प्रेम के आगे सुवागी को कुछ नहीं दिखता। वह जानती है पति के चिंता का कारण। जिससे पति को मुक्ति दिलाने के लिए वह सौतन को भी स्वीकार करती है।

दूसरी ओर समाज में ऐसी नारी की भी कमी नहीं है जो दिन रात अपना घर चलाने के लिए पुरुष के समान ही काम करती है। सुवागी के पिता नशे में लद रहते हैं। घर में कभी शांति नहीं रहता। कभी-कभी नशे में पत्नी को भी मार देते थे। झगड़ा तो उनके घर में सामान्य बात थी परंतु सुवागी की माँ ने अंतिम वक्त तक उस इंसान का साथ दिया जिसके चलते जीवन में उसे अनेक कष्ट सहन करना पड़ा। मृत्यु के बाद अंतिम विदाई के वक्त सुवागी की माँ उनका पैर पकड़कर कहती है – "उन्होंने पिताजी के पैर को पकड़कर कहा, इतने दिन हमारे बीच कितने झगड़े हुए उनका हिसाब नहीं, आप आज चले गये मुझें अकेला छोड़कर।"[59] केवल इतना ही कहकर उनके आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। ऐसे बह रही थी मानो रुकने का नाम नहीं ले रही हो। अपने आप को समर्पण करना स्त्री को बहुत अच्छे तरह से आता है, इसका उदाहरण सुबागी के माँ से मिलता है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यासों में नारी-पुरुष संबंध में पर्याप्त अलगाव दिखाई पड़ता है। 'मैला आँचल' उपन्यास में अनैतिक संबंधों की व्यापकता है। नारी को भोग का वस्तु मानकर शारीरिक और मानसिक शोषण करते हैं। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक भारतीय स्त्रियों की स्थिति परिवर्तशील रही है। हमारा समाज पुरुष प्रधान है। स्त्रियों का शोषण पुरुष की तरह दूसरी स्त्री भी करती है। पुरुष की उदंडता, उच्छश्रृंखलता और अह्म के कारण या स्त्री की शिक्षा, विनम्रता और स्त्री सुलभ उदारता के फलस्वरूप उसे प्रताड़ित, शोषित, अपमानित और उपेक्षित होना पड़ता। एक तरफ तो उसे शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। सदियों से समय की धार पर चलती हुई नारी अनेक विडम्बनाओं और विसंगतियों के बीच जीती रही है। परंतु हमारा समाज समझ नहीं पाता कि परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में नारी और पुरुष दोनों का योगदान अत्यंत आवश्यक है। नारी की स्थिति घर के भीतर और बाहर दयनीय है जिसे रेणु ने मैला आँचल' उपन्यास में दर्शाया है। दूसरी ओर असमिया उपन्यास 'नोई बोई जाय' में नारी-पुरुष के संबंधों में प्रेम, मिठास, अपनापन को लेखक में चित्रित किया है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक में पुरुष के समान ही नारियों के लिए स्थान है। असमिया समाज में स्त्रियाँ खेती-बाड़ी के काम करकर परिवार का पालन-पोषण करती है। अतः पुरुष-नारी को समाज का मूल्यवान अंग मानता है।

3. क.vi. नैतिक मूल्यों का बदलता स्वरूप :

नैतिक मूल्य मनुष्य के आधार स्तंभ हैं, जो मानवता को जीवित और फलने-फूलने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। व्यक्ति के जीवन में नैतिक मूल्यों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। नैतिक मूल्यों के माध्यम से इन्सान, परिवार, समाज और राष्ट्र का विकास होता है। नैतिक मूल्य को सामाजिक नैतिक मूल्य भी कह सकते हैं। सामाजिक नैतिक मूल्य के अंतर्गत उचित-अनुचित भावना, आज्ञा, पालन, सम्मान, सत्य-असत्य का ज्ञान, ईमानदारी, दया सत्यवादिता, भक्ति, श्रद्धा, निष्पक्षता, क्षमा, विश्वास, उतरदायित्व आदि भावना आते हैं। व्यक्ति इन्हीं नैतिक मूल्य के माध्यम से अपने आप को विकसित कर सकता है। मनुष्य के रोजाना जीवन में नैतिक मूल्यों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। जन्म के समय बच्चा न तो नैतिक होता है न अनैतिक धीरे-धीरे घर परिवार, समाज, उचित शिक्षा के माध्यम से नैतिक गुण आहरण करता है और अपने जीवन में प्रयोग करता है, धीरे-धीर उचित अनुचित का ज्ञान लाभ करता है और अपने जीवन को सुंदर ढंग से परिचालित करता है। बच्चों में नैतिक मूल्यों का विकास बचपन में होने के लिए बहुत से विद्यालयों में नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती है।

आज का समाज निरंतर तीव्र गति से बदलता जा रहा है। यह परिवर्तन गाँवों में होना भी स्वभाविक है। नयी पीढ़ी दिन-प्रतिदिन परिवर्तन के साथ-साथ पुराने रीति-रिवाज, धर्म, सम्मान, श्रद्धा, आदर आदि नैतिकता की पुरानी मान्यताओं में भी परिवर्तन लाना चाहते हैं। अपने नैतिक परंपरा को सुरक्षित रखना चाहते हैं। हम सभी जानते हैं कि नैतिक मूल्यों का पतन होने का अर्थ है हमारा जीवन नष्टता की ओर अग्रसित होना। इंसान शिक्षा तो ग्रहण करता है परंतु अपने नैतिक गुणों का विकास करना भूल जाता है। अच्छी नैतिक शिक्षा के अभाव से एक इंसान पशु के समान होता है। इंसान में अच्छे गुण हो, तो वह समझा सकता है और अपने जीवन का पालन भी कर सकता है। व्यक्ति अगर नैतिक मूल्यों को नहीं समझेगा तो माता-पिता, बाप-बेटे, भाई-भाई परिवार में संघर्ष होगा। अपना जीवन सही ढंग से चलाना हो तो नैतिक गुण अत्यंत आवश्यक है।

समाज निर्माण में बहुत से तत्व कार्य करते हैं। उन तत्व में नैतिक तत्व एक प्रधान अंग हैं। नैतिक तत्व समाज को अनुकूल बनाये रखने की कोशिश करती है। परंतु आज मानव समाज अनैतिक कार्यों में डूबा हुआ है। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि के चलते स्वयं और समाज को विपरीत दिशा में ले जा रहा है। वर्तमान समय में व्यक्ति केवल व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को अपनाकर चल रहा है। नैतिकता की कमी के कारण उसमें अशिष्टता

जन्म ले रही है। बच्चे अनैतिकता के कारण उश्रृंखल बन रहे हैं। नैतिकता भारतीय संस्कृति का आधार स्तंभ हैं परंतु आज इसे भुलाकर व्यक्ति स्वार्थ पूरे करने में लगा हुआ है। साधु-संत अपने उद्देश्य से हटकर मोह लोभ में पड़े हैं। आज के युवा पीढ़ी से शिष्टाचार की उम्मीद नहीं रख सकते हैं। नैतिक मूल्य भारतीय संस्कृति की पहचान है, जो हमें हमारे पुरखों से विरासत में मिली अनमोल धरोहर है। संपूर्ण संसार में भारत की पहचान नैतिकता से है। परिवर्तित समय ने इस नैतिकता के गुणों को हिलाकर रख दिया है।

आज के पीढ़ी अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु नैतिक मानदंड को भुला चुका है। आज के इस विघटन का श्रेय विज्ञान से अधिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था जिम्मेदार है। जिसने मानवीय संबंधों, संस्कारों को सिक्कों में आंकना आरंभ कर उदात्त मानवीय मूल्यों, संबंधों को बहुत कुछ रिक्त कर दिया। डॉ. बच्चन सिंह इस संबंध में अपना मत इस प्रकार देते हैं- "धर्म ने अपना पुराना अधिकार खो दिया, सामाजिक नैतिकता का सिक्का खोता सिद्ध हुआ । राजनीतिक के चक्रव्यूह में व्यक्ति की हत्या हुई ।"[60] वर्तमान आधुनिक जीवन जटिलताओं और विसंगतियों से भरा हुआ है, व्यक्तिवादी दृष्टिकोण एवं आर्थिक जटिलताओं के कारण इंसानी संबंधों में निरंतर बदलाव आ रहा है। संबंधों में परिवर्तन के फलस्वरूप नैतिक मूल्यों को झटका लगा है। यह झटका केवल शहर में ही नहीं ग्रामीण समाज तक जा पहुँचा है। गाँव में भी संबंध, परंपरा, सम्मान, श्रद्धा, आस्था के ऊपर धन कमाने को महत्त्व दिया जाने लगा है। ग्रामीण जीवन में परिवर्तित मानसिकता नैतिक मूल्यों के पतन का मुख्य कारण हैं।

वर्तमान समाज में नैतिक मूल्यों और मान्यताओं में उलटफेर, स्वार्थी समाज, संबंधों में टकरावट के फलस्वरूप नये परिवेश का निर्माण हो रहा है। जो अमानवीय मूल्यबोध पर निर्मित है। मनुष्य के जीवन में नैतिक-अनैतिक की परिभाषा बदल चुकी है। 'मैला आँचल' उपन्यास में इस बात का संकेत मिलता है। समाज में नैतिक आचारण और अनैतिक आचरण वाले व्यक्ति की संख्या बढ़ रही है। साधु-संत, पंडित अपना आचरण बदलकर वासना की ओर अग्रसर हो रहे है। पिछले कुछ समय से समाज में ज्ञानी संत के जगह पाखंडी संत देखने को मिल रहे हैं। वह धर्म के नाम पर मासूम जनता को लूट रहे हैं साथ ही मठ में रह रही सहज-सरल स्त्री का शोषण करते है। ऋषि-मुनि बोलने से एक आदर्शपूर्ण व्यक्ति, शांत गरिमामय पुरुष की छवि हमारे मन में आती हैं परंतु आज के समाज में संत ही सबसे ज्यादा धर्मनष्ट करने वाले व्यक्ति होते हैं। 'मैला आँचल' उपन्यास

में दिखाया गया है- "अंधा महंत अपने पापों का प्राच्छित कर रहा है। बाबाजी होकर जो रखेलिन रखता है, वह बाबाजी नहीं। ऊपर बाबाजी भीतर दगाबाजी ! क्या कहते हो ? रखेलिन नहीं, दासिन है ? किसी और को सिखाना। पाँच बरस तक मठ में नौकरी किया है, हमसे बढ़कर और कौन जानेगा मठ की बात और कोई देखे या नहीं देखे, ऊपर परमेसर तो हैं। महंथ जब लक्ष्मी दासिन को मठ लाया था तो वह एक दम अबोध थी, एकदम नादान। एक ही कपड़ा पहनती थी। कहाँ वह बच्ची और कहाँ पचास बरस का बूढा गिद्ध। रोजरात में लक्ष्मी रोती थी। ऐसा रोना कि जिसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाए। हम तो सो नहीं सकते थे। उठकर भैंसों को खोलकर चराने चले जाते थे। रोज सुबह लक्ष्मी दूध लेने बथान पर आती थी, उसकी आँखें कदम के फूल की तरह फूली रहती थीं। रात में रोने का कारण पूछने पर चुपचाप टुकुर-टुकुर मुँह देखने लगती थी...ठीक गाय की बाछी की तरह, जिसकी माँ मर गई हो। वैसा ही चंडाल है यह रमादसवा।"[61] इतना नहीं जब महंत सेवादास ने लक्ष्मी को मठ में लाया था तब वकील साहब से कहा था- "महंथ साहब ने वकील साहब को विश्वास दिलाया था- वकील साहब, लछमी हमारी बेटी की तरह रहेगी....लेकिन आदमी की मति को क्या कहा जाए ! मठ पर लाते ही किशोरी लछमी को उन्होंने अपने दासी बना दिया।"[62] महंथ समाज के सामने एक चहेरा दिखता था और लछमी को लेकर दूसरा। समाज में प्रायः लोग जानते थे महंथ लछमी के साथ शारीरिक और मानसिक शोषण कर रहा है परंतु कोई कुछ कहने का हिम्मत नहीं रखता। क्योंकि महंथ धर्म से जुड़े पंडित हैं। डरते थे लोग कही क्रोध में आकर अभिशाप दे दिया तो। इसी का फायदा सेवादास उठाता था। खुलेआम वह अनैतिक कार्य करता रहता है और कोई कुछ कहने का हिम्मत नहीं रखता था। पचास वर्षीय धर्मभ्रष्ट व व्यभिचारी महंथ सेवादास लछमी को दासिन बनाकर रखता। धीरे-धीरे जनता उनको नकारने लगते हैं। पुनः ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से पूरे गाँव को सेवादास भंडारा देने की बात करते हैं – "पुड़ी-जिलेबी और दही-चीनी के भंडारे की घोषणा के बाद जनमत बदल रहा है।...कैसा भी हो, आखिर साधु है ! किसने आज तक इतना बड़ा भोज किया।"[63] मनुष्य दिन-प्रतिदिन अनैतिक कार्य में लिप्त हो रहे हैं। महंथ सेवादास चरित्रहीन व्यक्ति है, अपनी बेटी की उम्र की लड़की को दासी बनाकर रखा हैं। परंतु लोग भंडार के लोभ से फिर उनके नजदीक जाने लगे। लोग दिन-प्रतिदिन और स्वार्थी बनते जा रहे हैं।

पंचायत का निर्माण सब के हित के लिए होता है। पंचायत एक ऐसा अनुष्ठान है जहाँ पर ग्रामीण समस्या का समाधान किया जाता है। भारतीय ग्रामीण समाज व्यवस्था में पंचायत का अह्म भूमिका रहती है। गाँव के

छोटे कस्बे के स्तर पर ग्राम पंचायत होती है। प्राचीन काल से ही भारत वर्ष के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में पंचायत अदालत का काम करता है। पंचों का निर्माण अह्म मानी जाती है। 'मैला आँचल' उपन्यास में मेरीगंज क्षेत्र के पंचायत व्यवस्था के बारे में उल्लेख है। पंचायत के निर्णय में आज-कल हेर-फेर की बात हो रही है। उसका उल्लेख उपन्यास में देखने को मिलता है- "सारी पंचायत में दो ही व्यक्ति ऐसे हैं जिनके ऊपर मेल-मिलाप की ख़ुशी का उल्टा असर हुआ है। खेलावनसिंह यादव को सिंघ ने जिस चलाकी से एक किनारे किया है, इसे कोई नहीं समझ पाए, लेकिन खेलावन ने सब समझ लिया। खेलावन की चर्चा भी नहीं की सिंघ ने। और तहसीलदार को तो देखो, तुरंत गिरगिट की तरह रंग बदल लिया। लड़ाई-झगड़ा यादवटोली से था और गले-मिले तहसीलदार जी। खेलावन की सठ बरसा नहीं समझना। सब चालाकी समझते हैं।"[64] मनुष्य के अंदर बढ़ती स्वार्थपरता चालाकी को लेखक ने इस कथन के माध्यम से पुष्ट किया है। मेरीगंज बड़ा अंचल है। विभिन्न जाति के लोग यहाँ रहते हैं। गाँव में सब लोग मिलजूल कर रहने से शांति बनी रहती है। अलग-अलग जाति के लोग होने के बावजूद अगर एक साथ रहेंगे तो एकता आयेगी, और शांति बने रहने के साथ-साथ एक दूसरे के काम में मदद भी होता रहेगा। परंतु आज न केवल शहर में नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है बल्कि गाँव में भी नैतिक मूल्यों के पतन ने गति पकड़ी है। लोग दिन प्रतिदिन स्वार्थी, लोभी, घमंड, झगाड़ालू और व्यक्ति केंद्रिक बनते जा रहे हैं। जिसका उल्लेख उपन्यास में मिलता हैं- "राजपूतों और कायस्थों में पुश्तैनी मन-मुटाव और झगड़े होते आए हैं।"[65]

जातिगत व्यवस्था हमारे समाज में वैदिक कालों से ही प्रचलित है परंतु आशा रखते हैं कि वर्तमान समय में शिक्षित वर्ग और चिंतन करने की क्षमता रखने वाले व्यक्ति इन संकीर्ण मनोभाव को अपने अंदर पनपने नहीं देगे। समय परिवर्तनशील है। परिवर्तित समय के साथ जात-पात के भेदभाव के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होने चाहिए। परंतु जातिगत व्यवस्था हमारे समाज में आज भी जैसी की तैसी ही है। जिसे उपन्यासकार ने इस प्रकार उपन्यास में चित्रित किया है- "सिपैहियाटोला के लोग भी नहीं खाएँगे।"[66] व्यक्ति का नैतिक गुण होता है कि औरों से जो सम्मान आशा करते हैं हम भी उन्हें वैसा ही सम्मान दे। किसी भी व्यक्ति का सम्मान उसके जाति देखकर नहीं गुण को देखकर करना चाहिए। हर व्यक्ति का आदर करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है परंतु स्वार्थी मनुष्य, अपने को उच्च दिखाने के चेष्ठा में अपने नैतिक गुण खो रहा है।

मनुष्य अपने काम में इतना लिप्त होता है कि किसी की हत्या तक उनके लिए आम बात हो जाती है। उपन्यास में इस बात को दिखाया गया है कि मनुष्य की नैतिकता कैसे गिर चुकी है। मनुष्य इतना अधिक अनैतिक बन गया है कि किसी की हत्या तक करना आम-बात है। "आखिरी गाड़ी जब गुजर गई तो हवलदार और रामबुझावन सिंह मिलकर, बावन की चित्थी लाश, लहू के कीचड़ में लथ-पथ लाश को उठाकर चलते हैं।...नागर नदी के उस पार पाकिस्तान में फेंकना होगा। इधर नहीं...हरगिस नहीं।"[67] मनुष्य इतना स्वार्थी, लोभी हो चुका है कि किसी के जीवन का मूल्य भी नहीं समझता। अगर ऐसे ही नैतिक मूल्य का ह्रास होगा तो मानव जाती का पतन निश्चित है।

सेवादास महंथ गुजर जाने के बाद मठ का महंथ रामदास बना। वही भी लछमी को दासी बनाकर रखना चाहता था परंतु लछमी तैयारी नहीं थी। इस संदर्भ में उपन्यास में जिक्र है- "रामदास फिर बैरा गया है। कल भंडारी से कह रहा था, लछमी से कहो एक दासी रखने की आज्ञा दे। कहिए तो भला...।"[68] संत-साधु के प्रति जो चित्र हमारे मन में चित्रित है, इस उपन्यास में उल्लेखित घटनाओं ने उस चित्र को कलंकित कर दिया।

आधुनिकता की हवा निरंतर तीव्र गति से गाँव में भी अग्रेसित हो रही है। बुरे प्रभाव गाँव को प्रभावित कर रही है। जिस कारण ग्राम्य परिवेश तेजी से परिवर्तन होकर पतन की ओर जा रहा है। जहाँ एक ओर अनैतिक संबंध बढ़ रहा है तो दूसरी तरफ ग्रामीण परिवार में आपसी संबंधों में टकरार हो रही है। "मानती हूँ कि जवान बेवा बेटी दुधार गाय के बराबर है। मगर इतना भी मत दूहो कि देह का खून भी सुख जाए।।"[69]

मंगला देवी के माध्यम से आश्रम के नाम पर चल रहे शारीरिक और मानसिक शोषण दिखलाने की चेष्टा की गई है – "आदमी के अंदर के पशु को उसने बहुत बार करीब से देखा है। विधवा-आश्रय, अबला आश्रम और बड़े बाबुओं के घर आया की जिंदगी उसने बिताई हैं।"[70]

आधुनिक समाज व्यवस्था में प्रेम, अपनापन आदि का अभाव पाया जाता है। लोग अपने से बड़ों का सम्मान-आदर तथा छोटे को प्रेम करना भूल चुके हैं। जहाँ पहले संयुक्त परिवार में रहते थे वहीं आज परिवार टूट रहा है। मनुष्य का मूल्यबोध छूट रहा है। आज अपनी संस्कृति आधुनिक बच्चों के लिए हास्य का विषय बन गया है – "अपने आँखों से देख रहा हूँ, समाज का परिवर्तित रूप।"[71] भगीरथ फुकन आश्चर्य है परिवर्तित

समाज को देखकर। आजकल समाज में केवल पढ़े लिखे लोगों का ही सम्मान है। मनुष्य के मूल्यबोध परिवर्तन हो रहा है। मनुष्य दिन प्रतिदिन स्वार्थी बनता जा रहा है। "अपना स्वार्थ हो तो लोग आगे निकलकर आते हैं।"[72] मनुष्य संपत्ति कमाता है परंतु मन में शांति नहीं। लोग बदलते जा रहे हैं। ग्रामीण समाज में संवादहीनता बढ़ता जा रहा है। भगीरथ फुकन ने अपना समस्त संपत्ति समाप्त कर दिया बच्चों को पढ़ाने के लिए परंतु वे अपने माँ बाप को भूलाकर शहर में बस गया। पिता के त्याग-बलिदान को भुलाकर स्वार्थी बन गये। "पाँच साल बाद विजन डॉक्टर हो गया। परंतु समय के साथ विजन का घर आना कम हो गया।"[73]

भगीरथ फुकन अपने परिवार एवं बच्चों के साथ एक ही घर में रहते हैं परंतु आपसी द्वेष, संघात के कारण परिवार में आए दिन अशांति का माहौल बना रहता है। सभी बच्चे अपने-अपने दायित्व-कर्त्तव्य को भुलाकर उदासीन होते जा रहे हैं। 'नोई बोई जाय' में उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि मानवीय संबंधों में खिंचाव आने के फलस्वरूप नैतिक मान्यताएँ पतन की ओर जा रही है। शहर में पढ़ने जा रहे बच्चे वहीं के होकर रह रहे हैं। वह अपनी जन्मभूमि, माँ पिताजी, सगे-संबंधियों को भूल चुके हैं। शहर की रंगीन जीवन को अपनाकर ग्राम्य सादा जीवन को ठुकरा रहे हैं। "जीवन के आखिरी पड़ाव पर पहुँच चुके माता-पिता की सेवा सत्कार करने का सुवसर यदि बेटे-बहु को मिलता था तो वे अपने आपको धन्य समझते थे और वे शांति का अनुभव करते थे... हमने अपनी माँ की सभी जरूरतों को पूरा किया तथा मृत्यु की अवस्था तक उनकी सेवा में कोई कमी नहीं आने दी। आखिरी समय में, उनके मुँह में पानी की दो बूंदे डाली थी, जिसे पीकर ही माँ ने अपनी आखें सदा के लिए मूंद ली। परंतु आज के वातावरण में समाज में माता-पिता किसी बोझ से कम नहीं।"[74] आज मनुष्य अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए जन्मदाता माता-पिता तक को भूल जाते हैं। आधुनिक बच्चों को अपने माता-पिता की सेवा करना, चरण स्पर्श करने में लज्जा आती है क्योंकि वे आधुनिक हैं। वर्तमन समय में ग्रामीण अंचलों में पुरानी मान्यताएँ बदल चुकी है। जीवन भर जिन माता-पिता ने अपने सुख को त्याग कर बच्चों को पाला वहीं बड़े होकर शादी के बाद पत्नी का गुलाम बनता है। पत्नी के आगे माँ कुछ भी नहीं है- "आज कल शिक्षित बच्चें शादी के पश्चात् माँ-पिता से ज्यादा पत्नी का सुनते हैं।"[75]

जात-पात का भेदभाव करके मनुष्य को मनुष्य न मानने की घटना उपन्यास में चित्रित है। "उसके घर के आँगन में नीची जात का कोई व्यक्ति प्रवेश तक नहीं कर सकता।"[76] निरंजन गोस्वामी पंडित है। वे इतने

कट्टर मनोभाव के है कि किसी दलित या निम्नवर्ग के लोगों को अपने आँगन तक नहीं आने देता है। इससे उनका धर्मभ्रष्ट्र हो जाता है। धर्म के नाम पर ऐसे पंडित कलंक हैं जो ऐसा मनोभाव रखते हैं। प्रतिशोध, द्वेष की भावना आदि तत्व सामाजिक मान्यताओं को खोखली करती जा रही हैं। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का विरोधी हो गया है और प्रतिशोध की भावना के फलस्वरूप उसे पशु के श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है।

हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' दोनों उपन्यासों से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि ग्रामीण समाज निरंतर परिवर्तित होता जा रहा है। परिवर्तन की आँधी में नैतिक-अनैतिक मान्यताओं की परिभाषाएँ भिन्न होती जा रही है। परंतु दोनों उपन्यासों में उल्लेखित अनैतिक घटनाओं ने नैतिक मूल्यों का स्तर अत्यंत निम्न दिखाया है। जिस तरह 'मैला आँचल' उपन्यास में अनैतिक संबंधों का भरमार है उसी तरह 'नोई बोई जाय' में परिवर्तित मानवीय संबंधों को दिखाया गया है। 'मैला आँचल' उपन्यास के माध्यम से दिखाया गया है कि किसी को मारना भी वर्तमान समय में बड़ी बात नहीं। स्वार्थी मनुष्य किस प्रकार व्यक्ति केन्द्रित बनकर अपने पुराने मूल्यबोध तोड़ रहे है उसी का जीवंत दस्तावेज को उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है। माँ-बाप सोचते हैं बच्चे बड़े होकर हमारा साहारा बनेगें परंतु परिवर्तित मानवीय संबंधों को बड़े मार्मिक ढंग से 'नोई बोई जाय' में लेखक ने चित्रित किया है। नैतिक मूल्यों के पतन के फलस्वरूप मनुष्य अपने दायित्व कर्त्तव्य को भूलाकर पतन की ओर जा रहा है। वह केवल वासना, लोभ, मोह, स्वार्थ में पड़ा है। जिसके चलते अच्छा-बुरा का फर्क नहीं कर सकते और गलत कार्य कर बैठते हैं। नैतिक मूल्य की उपस्थिति हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण हैं। स्वयं, समाज और देश के विकास के लिए नैतिक ज्ञान की आवश्यकता है। नैतिक मूल्यों के अभाव से हमारा जीवन अधूरा है।

अंततः कह सकते हैं कि हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास के सामाजिक जीवन अध्ययन करने के पश्चात् बहुत कुछ समानता दिखाई देती है। जगह-जगह विषयों में अलगाव भी मौजूद हैं। दो भिन्न प्रांत के आँचलिक उपन्यासों में समानता और अलगाव होना स्वाभाविक है।

ग्रामीण अंचलों का सादा जीवन आज भी बहुत हद तक पिछड़ा हुआ है। वे प्राथमिक सुख-सुविधाओं से वंचित हैं। प्रत्येक क्षेत्र अपनी एक विशिष्ट जीवन शैली के कारण अन्य प्रांत से पृथक है परंतु अंचल या ग्रामीण क्षेत्र होने के कारण बहुत से बिंदु में समानताएँ देखी जाती हैं। आँचलिक क्षेत्र में व्याप्त जीवन, परिवेश,

परिस्थितियाँ, संगति-विसंगतियाँ, पारस्परिक संबंध, मानवीय मूल्य, वर्ग-संघर्ष, विश्वास, परंपरा, रीति-नीति, नैतिक-अनैतिक, बोली-भाषा आदि की अभिव्यक्ति करके दोनों भाषाओं के आँचलिक उपन्यासों का सामाजिक आयाम के विस्तृत क्षेत्र को दर्शाया गया है। दोनों आँचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन में, यहाँ के रहनेवाले लोगों के पारस्परिक संबंधों का यथार्थ चित्रण मिलता है। दोनों भाषा के उपन्यासों में उपन्यासकारों ने आँचलिक जीवन का सजीव और सत्य को उद्घाटित करने की चेष्टा की है। उपन्यासकारों ने अपनी ग्रामीण जीवन से संबंधित अनुभवशीलता, चिंतन, विचार को गाँव में व्याप्त संबंधों और जीवन मूल्यों का यथार्थ चित्रण करने की चेष्टा की है।

अंचल में व्याप्त ग्रामीण जीवन, शिक्षा, नारी-पुरुष संबंध, जातिवाद, नैतिक मूल्यों का पतन आदि को दोनों उपन्यासकारों ने अभिव्यक्त किया है। बदलते समय का प्रभाव ग्रामीण अंचलों को पतन की ओर ले जा रहा है। मनुष्य स्वार्थी, वासानालिप्त, अनैतिक संबंध स्थापन, छुआ-छुत के कारण मनुष्य को मनुष्य के नजरों से भी देखना जरुरी नहीं समझता है। 'नोई बोई जाय' असमिया उपन्यास की तुलना में 'मैला आँचल' में व्याप्त स्त्री-पुरुष के संबंध में नारी केवल भोग मात्र बन गयी है। साधु-संत की मतिभ्रष्ट होकर वासना में लिप्त है। 'मैला आँचल' की तुलना में 'नोई बोई जाय' उपन्यास में चित्रित नारी की स्थिति काफी मर्यादामय है, साथ ही अधिक उच्च, सजग और हर परिस्थिति में संघर्षशील है। असमिया समाज नारी के सम्मान को लेकर काफी सजग है और नारी को समाज का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। दोनों उपन्यास में दिखाया गया है कि आधुनिक जीवन की जटिलता का प्रभाव ग्रामीण अंचल में भी पड़ा है। जिसके चलते नैतिकता की परिभाषा भी बदल गई है। प्रत्येक समाज अपनी-अपनी सुविधानुसार इसके स्वरूप का निर्धारण करता है।

3.ख. आर्थिक जीवन :

किसी भी देश के विकास एवं उन्नति के लिए आर्थिक विकास प्राथमिक शर्त है। स्वाधीनता के पश्चात् भारत में आर्थिक विकास का प्रश्न मुख्य प्रश्न था। देश में शासन के केंद्र में रहनेवाले लोगों ने देश के विकास के लिए पश्चिमी जीवन को अपनाया। जिसमें जन शक्ति की जगह तकनीक को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था। देश के पास श्रम की कमी नहीं थी परंतु नये रूप से स्वाधीनता प्राप्त करना देश के लिए आर्थिक रूप से दुर्बल था। स्वाधीन भारत को राजनीतिक रूप से मुक्ति तो मिल गई लेकिन आर्थिक दृष्टि से वह कमजोर था। कई सौ वर्षों

पराधीनता के जंजीरों में जकड़े रहने के कारण भारत को आर्थिक विकास का अवसर नहीं मिला। स्वाधीनता मिलने के पश्चात् भारत देश को अपनी समृद्धि और गरीबी पर विचार करना स्वाभाविक था। धीरे-धीरे विकास के लिए विभिन्न योजनाएँ अपनाये जाने लगे।

मार्क्स कहते हैं – "अपने विचारों, धारणाओं एवं चेतना की उत्पत्ति का सीधा संबंध आर्थिक संबंधों एवं गतिविधी से हैं। सोचना-विचारना एवं मानवों का मानसिक संबंध इस स्तर पर सीधे आर्थिक व्यवहारों से उपजता है।"[77] आर्थिक प्रगति ही मनुष्य को सामाजिक संगठन तथा चेतना की नई गति देता है। मनुष्य में विचारधारा का जो प्रभाव है वह धार्मिक चेतना, राजनीतिक चेतना अथवा सामाजिक चेतना से ही होता है परंतु उसके मूल में आर्थिक व्यवस्था निहित होता है। क्योंकि अर्थ के बिना न तो धर्म की रक्षा हो सकती न ही राजनीति और समाज का विकास हो सकता है। मनुष्य का आर्थिक संबंध बहुत हद तक सामाजिक संबंधों का निर्धारण करता है। आर्थिक कमजोरी मनुष्य के विकास में बाधा बन सकती है। जिस समाज में आर्थिक असमानता पायी जाती है उस समाज में व्यक्ति का विकास भी कुंठित हो जाती है, नगेन्द्र अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं- "साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभी रुचियों और संवेदनाओं का इतिहास होता है, जिसका सीधा संबंध आर्थिक और चिन्तनात्मक परिवर्तन से हैं।"[78]

भारतीय अर्थ व्यवस्था की बुनियाद गाँव है। भारतीय अर्थ व्यवस्था में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका कृषि का रहता है। भारत जैसे देश में अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व परंपरागत ग्रामीण क्षेत्र, किसान और कृषि द्वारा किया जाता है। ग्रामीण अंचलों में व्याप्त छोटे कुटीर उद्योग और दस्तकारी है जिसमें ज्यादा आर्थिक ढाँचा निर्भर है। ग्रामीण क्षेत्र में धार्मिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन, राजनीतिक जीवन बहुत हद तक आर्थिक स्थिति पर निर्भर है। गाँव की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतः कृषि पर निर्भर है। भारत में अधिकतम लोगों के लिए कृषि आजीविका का एक प्रमुख घटक है। पहले तो भारत में अर्थ व्यवस्था केवल कृषि पर ही निर्भर था परंतु आज औद्योगिक क्षेत्र पर भी बहुत हद तक अर्थ व्यवस्था निर्भर है।

स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति दयनीय थी। किसानों तथा आम जनता के लिए संघर्ष काल था। किसान समाज में रहे पूंजीपति जैसे- महाजन, साहूकार, जमींदार, ठाकुर आदि से शोषित हो रहे थे। उस समय किसान अंग्रेजों के साथ-साथ इन पूंजीपति वर्ग से लड़ रहे थे। इन शोषकों को विभिन्न तरह से

सरकारी कर्मचारी सहायता करते थे। ब्रिटिश शासन और इन जमींदारों के शोषण से जनता और किसान पूरी तरह टूट चुके थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् किसान की स्थिति में सुधार आने लगी। आशा किया गया था जब अपने लोग शासन करेंगे तो हमारा विकास होना निश्चित है। परंतु आशा निराशा में बदल गई। देश की प्रगति के बावजूद गरीबी और तेजी से बढ़ने लगी। अनेक योजनाएँ बनाई गयी, फाइलों में अधिक कार्यों में कम क्रियांवित होने लगी। डॉ. रांग्रा के अनुसार – "देश के औद्योगीकरण का काम सरकारी स्तर पर पूरी गति से चला तो सत्ता और धन का गठबंधन हो गया। नैतिक मूल्यों का विघटन हो गया था। पुरातन मूल्यों का लोप हो रहा था। बदले में नए मूल्य बन नहीं रहे थे, अस्तित्व का संकट निकट था। व्यक्ति को अपने त्राण का एक ही मर्म दिखता था और वह था धन। जीवन के इस अस्तित्व संग्राम में व्यक्ति ने दर-दर की ठोकरे खाकर घाट-घाट का पानी पीकर, यह अनुभव पा लिया कि दुनिया में धन ही सबकुछ है, धन जीवन का सबसे बड़ा वरदान है और धन का अभाव सबसे बड़ा अभिशाप। इस प्रकार जीवन के सभी मूल्य में अर्थ सिमट आए और आर्थिक मूल्य ही एकमात्र जीवन मूल्य बन गए।"[79]

नवीन विज्ञान और तकनीक के प्रयोग से कृषि में परिवर्तन तो आया फिर भी ग्रामीण अंचल में प्रचलित अंधविश्वास, परंपरा, अशिक्षा, अज्ञानता के कारण आधुनिक तकनीक के प्रयोग से स्वयं को अलग रखा। आज भी ग्राम्य अंचल में किसान खेती करने के लिए पुरानी साधनों का प्रयोग करता है।

3.ख.i. व्यवसाय :

भारतीय अर्थ व्यवस्था का मूल आधार कृषि और उद्योग है। यह सर्वविदित है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि उत्पादन देश की अर्थव्यवस्था पर निर्भर है। भारतीय अर्थव्यवस्था का एक विशिष्ट पहलू कृषि मजदूरों की उपस्थिति है। ग्रामीण क्षेत्र में खेती-बाड़ी ही कृषकों की प्रमुख व्यवसाय है। इसके द्वारा वह रोजी-रोटी कमाते हैं। आधुनिक तकनीकों का प्रयोग धीरे-धीरे ग्रामीण अंचलों में भी होने लगा है। जिससे ग्राम्य कृषकों को खेती के लिए सुविधा हो। ग्रामीण अंचल में व्याप्त खेती, व्यवसाय आदि को रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास में सुंदर रूप से चित्रित किया है। 'मैला आँचल' का सुमरितदास गाँव में लगाए गए पम्पसेट, ट्रेक्टर के बारे में कहता है- "तहसीलदार साहब इस बार ट्रेक्टर खरीद रहे हैं। बेतार कहता था। उसी में सबकुछ होगा, हल, चौंगी विधा, कोड़, कमान, कादी-गोरा और धनकटनी भी। आदमी की क्या जरूरत ? पानी का पम्पू आवेगा। इंदर भगवान्

की खुशामद की जरूरत नहीं। कमला नदी में पम्पू लगा दिया, मिसिन इस टाट कर दिया और हथिया सूँड़ की तरह सब पानी सोखकर खेत पटा देगा।"[80] किसानों के बीच आधुनिक तकनीक, कृषि के लिए, खाद, बीच, मशीनों का प्रचार हो रहा है, जिसके चलते उत्पादन में वृद्धि हो सके। परंतु साथ यह विषय भी ध्यान देने योग्य है कि मजदूर किसान वर्ग के पास ज्ञान और अर्थ दोनों का अभाव होता है। जिस कारण यह आधुनिक सुविधा 'मैला आँचल' में केवल महाजन तहसीलदार साहब ही उठा रहे हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन में कृषकों की अर्थव्यवस्था ही सबसे अधिक दयनीय है। क्योंकि शिक्षा और अज्ञानता के साथ आर्थिक स्थिति भी बड़ी कारण है। रेणु के अंचल की आर्थिक विवश्ता की शुरुआत डॉ. हरदयाल ने अपने लेख 'मैला आँचल : रचना दृष्टि का सवाल' से की है- "किसी भी समाज में पूरे समाज और वर्ग विशेष की आर्थिक स्थिति का विशेष महत्त्व होता है। रेणु इस बात को अच्छी तरह जानते थे। मेरीगंज में गिने-चुने व्यक्तियों को छोड़कर बाकी सभी निर्धन है। जिस समाज के लोग पुड़ी-जलेबी को अमृत समझते हो और जिन्होंने पूरे जीवन में एकाध बार ही इन्हें खाया हो, उस समाज के दारिद्र्य की कल्पना करना कठिन नहीं है। मेरीगंज की नीची मानी जाने वाली जातियों की स्त्रियाँ- जैसे फुलिया, रमपिरिय या आदि आर्थिक कारणों से ही रखैल और दासियाँ बनती हैं।"[81] फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास में ग्रामीण समाज की आर्थिक संरचना को बड़ी बारीकी के साथ प्रस्तुत किया है।

फणीश्वरनाथ रेणु ने मेरीगंज क्षेत्र की आर्थिक अभावों से जूझते हुए किसान-मजदूरों को प्रत्यक्ष अपनी आखों से देखा है। वे उपन्यास में किसानों के दुख-दर्द को इस प्रकार उकेरा है मानो वह स्वयं किसान के रूप में मेरीगंज में मौजूद थे। जिस करण रचना ओर जीवंत बन गई। "सात माह के बच्चे भी बथूआ और पाट का साग खा कर पलता है। गाँव में किसान मजदूर लोगों की आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि हैजा में पड़ी लड़की को दबा-दारु नहीं किया जा रहा है। इस संबंध में डॉक्टर प्रशांत से किसान कहता हैं- "डॉक्टर बाबू, बैल बेच दूँगा तो खेती कैसे करूँगा। बाल-बच्चे भूखें मर जाएँगे।..... लड़की की बीमारी है।"[82] किसान को खेती के लिए बैल अपरिहार्य है। उसके बिना किसान खेती की कल्पना तक नहीं कर सकता। खेती और बैल ही उसका धरोहर है। ग्रामीण क्षेत्र में मजदूरों-किसानों का शोषण दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। बढ़ती महंगाई के कारण घर चलाना ही नहीं पेटभर खाना भी दिक्कत हो रहा है। "अनाज के ऊँच दर से गाँव के तीन ही व्यक्तियों ने फायदा उठाया है- तहसीलदार साहब ने, सिंघ जी ने और खेलावनसिंह यादव ने। छोटे-छोटे किसानों की जमीनें कौड़ी के मोल बिक रही है। मजदूरों को सवा रुपए रोज मजदूरी मिलती है, लेकिन एक आदमी का भी पेट नहीं भरता।

पाँच साल पहले सिर्फ पाँच आने रोज मजदूरी मिलती थी और उसी में घर-भर के लोग खाते थे।"[83] ग्रामीण क्षेत्र में मजदूर किसानों का आय बहुत कम होता है क्योंकि वे खेती या मजदूरी में निर्भर होते हैं। साथ ही इनको बहुत कम रोजगार प्राप्त होता है। अज्ञानता और खेती-बाड़ी के सिवा अन्य काम करने ना जाने के लिए रोजगार पाना कठीन होता है। बदलते समय में महँगाई आसमान छू रही है। इतने कम रोजगार के चलते किसान, मजदूर को अपने परिवार का पालन करना असंभव हो रहा है। धान-चावल का दाम बढ़ रहा है परंतु इसका फायदा समाज में रहनेवाले पूंजीपति, महाजन को मिल रहा है। "गाँव के लोग अर्थशास्त्र का साधारण सिद्धांत भी नहीं जानते। 'सप्लाई' और 'डिमांड' के गोरख-धंधे में वे अपना दिमाग नहीं खपाते, अनाज का दर बढ़ रहा है, बढ़ता जा रहा है और भी ख़ुशी की बात है। पंद्रह रुपए में साड़ी मिलती है तो बारह रुपए मन धान भी तो है। हल का फाल पाँच रुपए में मिलती है तो क्या हुआ ? पाट भी तो बीस रुपए मन है। ख़ुशी की बात है।"[84]

"साल भर की कमाई का लेखा-जोख तो खम्हार में ही होता है, दो महीने की कटनी एक महीना मड़नी, फिर सालभर की खटनी। दबनी- मड़नी करके जमा करो, सालभर के खाए हुए कर्ज का हिसाब करके चुकाओ। बाकी यदि रह जाए तो फिर सादा कागज पर अंगूठे की टीप लगाओ। सफाई करनी है तो बैल गाय भरना रखो या हलवाहा-चरवाहा दो। फिर कर्ज खाओ। खम्हार का चक्र चलता रहता है। खम्हार में बैलों के झुंड से दबनी मड़नी होती है। बैलों के मुँह में जाली का 'जाब' लगा दिया जाता है। गरीब और बेजमीन लोगों की हालत भी खम्हार के बैलों जैसी हैं। मुँह में जाली का जाब।"[85] ग्राम्य लोगों के लिए भूमि मूलाधार है। भूस्वामी अपने लोभ के कारण निरंतर भूमिहीन किसानों का शोषण करते हैं। रेणु निरपेक्ष्य भाव से इस घटना को उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। किसानों की त्रासदी भरे जीवन को रेणु ने बड़े ही सजीव ढंग से चित्रित किया है। भारतीय किसान गरीबी में जीवनयापन करता है और गरीबी में ही मर जाता हैं।

आजादी के बाद सरकार का पहला कदम जमींदारी प्रथा को समाप्त करना था परंतु यह मात्र कागजों में दिखायी देती है। जमींदारों, महाजनों के शोषण से आज भी किसान जुझता है। "बिहार में भूमि-सुधार के प्रावधानों का अस्तित्व बस सरकारी फाइलों में दिखाई देती है, कानून के पेंच से बचने के लिए भूस्वामियों ने अपनी जमीन का पक्का बंदोबस्त कर लिया। कुत्ते-बिल्ली तक के नाम पर जमीन दर्ज हो गई। फर्जी नामों पर जमीन बेची गई। सरकार के पास इस तरह की भूमि के पर्याप्त कागजात और रिकोर्ड नहीं होने से भूस्वामियों की

चाँदी हो गई । पर पर्याप्त सबूत होने के बावजूद सरकार ने बड़े भूस्वामियों पर कभी हाथ नहीं डाला ।"[86] स्वाधीनता के पश्चात् भी बिहार की आर्थिक संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया । जो दिन-रात खेतों में काम करनेवाले किसानों के पास अपनी जमीन नहीं है । वे भूस्वामियों के जमीन जोतते हैं तथा अनाज का अधिकांश अंश भूस्वामियों को देना पड़ता है । अंत में वही दो मुट्ठी अनाज बचता था जो अपने और परिवार के पालन-पोषण के लिए पार्याप्त नहीं होता है ।

मेरीगंज के अधिकांश लोग किसानी करते हैं । उनका जीवन खेती पर निर्भर है । खेती का मनोहर दृश्य का चित्रण उपन्यास में हुआ है – "मैला आँचल ! लेकिन धरती माता अभी स्वर्णाचंल है । गेहूँ की सुनहली बालियों से भरे हुए खेतों में पुरवैया हवा लहरें पैदा करती हैं । सारे गाँव के लोग खेतों में हैं । मानो सोने की नदी कमर भर सुनहले पानी में सारे गाँव के लोग क्रीड़ा कर रहे हैं । सुनहले लहरें ! ताड़ के पेड़ों की पंक्तियाँ झरबेरी का जंगल, कोठी का बाग, कमल के पत्तों से भरे हुए कमला नदी के गड़ेढ ।"[87]

कुटीर उद्योग आँचलिक जीवन में व्याप्त रोजगारहीनता को बहुत हद तक समाधान करती है । यह व्यवसाय सामन्यता ग्रामीण जन अपने ही घरों में आरंभ कर सकते हैं । मेरीगंज अंचल में चरखा सेंटर खुल गया है । इसके महत्त्व का स्पष्ट करते हुए शिवनाथ चौधरी कहते हैं – "आँकड़े देकर साबित कर रहे हैं कि यदि घर का एक एक व्यक्ति चरखा चलाने लगे तो गाँव से गरीबी दूर हो जाएगी अन्न-वस्त्र की कमी नहीं रहेगी । चरखा सेंटर खुल गया है । अब गाँव में गरीबी नहीं रहेगी । पटना से दो मास्टर आए हैं चरखा मास्टर और करघा मास्टर । एक मास्टरनी भी आयी हैं- औरतों को चरखा सिखाने के लिए । औरतों से कहती हैं, चरखा हमार भतार-पूत, चरखा हमार नाती, चरखा के बदौलत मोरा दुआर झूले हाथी ।"[88]

'मैला आँचल' उपन्यास में देह व्यापार को भी दिखलाया गया है । आर्थिक संकट के चलते फुलिया जैसी स्त्री देह व्यापर से संग्लन होकर अपनी रोजी रोटी कमाती है । इस संबंध में रमजुदास के स्त्री का कहना है- "अरे फुलिया की माये ! तुम लोगों को न तो लाज है और धरम ! कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारीवाली साड़ी चमकाओगी ? आखिर एक हद होती है किसी बात की ! मानती हूँ कि जवान बेवा बेटी दुंधार गाय के बराबर है मगर इतना मत दूहो कि देह का खून सुख जाए ।"[89]

'मैला आँचल' की तरह 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में भी ग्रामीण जीवन के आर्थिक स्थिति का महत्त्व को स्वीकार करते हुए ग्राम्य जीवन के व्यवसाय को चित्रित किया गया है। असमिया समाज कृषि प्रधान है, विशेषतः ग्रामीण अंचल के लोगों का आर्थिक आधार खेती से प्राप्त होता है। वह खेती के अलावा दूसरा काम सोच भी नहीं सकतें। उपन्यास में दिखाया गया है कि सेंदुरीपाम अंचल के अधिकांश लोग खेती पर निर्भर है। "पिछले साल भादो महीने में बस्लुई नदी में बाढ़ आने के कारण धान की पैदावर नष्ट हो गये थे। भादो और आसीन महीने में जितनी भी धान की खेत की गयी थी, उसे भी जंगली जानवरों ने नष्ट कर दिया। यदि पुराना अनाज जमा करके नहीं रखा होता तो, मांग के खाने की नौबत आ जाती।"[90] संपूर्ण ग्राम्य लोग खेती पर निर्भर होकर ही जीवन-यापन करते हैं। अगर किसी कारण उनका खेत नष्ट हो जाए तो उन्हें भीख माँग कर खाने की नौबत तक आ जाती है। कृषक मौसम पर ही निर्भर होते हैं और इसके आधार पर खेती होती है। बदलते मौसम से दुखित होकर भगीरथ फुकन कहते है- "खेती का समय हैं। श्रावण का महीना पानी नहीं। किसानों के मन में हाहाकार मंचा हुआ है। मैं भी गर्मी से फटे खेत को देख रहा हूँ।"[91]

बदलते समय में कृषि व्यवसाय को लेकर भगीरथ चिंतित है। दिन प्रतिदिन मौसम परिवर्तित हो रहा है। परिवार बढ़ रहा है। किसानों को और भी समस्याएँ हो रही है- "जनसंख्या बढ़ रहे हैं। खेती की जमीन कम हो रही है। खेती की जमीन में लोग घर बनाना शुरू कर रहे हैं। खेती करने के लिए जमीन कम हो रहा है।"[92] खेती का धान अगर न बेचे तो लोग पैसे का मुँह नहीं देख सकते। भगीरथ फूकन इसके अलावा दूध भी बेचता है। "धान और दूध की बिक्री न करने पर पैसा की शक्ल तक नहीं दिखाती।.....तेल, नमक कपड़े लते खरीदने के लिए पैसे का अभाव बना रहता हैं।"[93]

'नोई बोई जाय' उपन्यास में रंगाई नाम का एक ओझा है। वह झाड़-फूक करके ही अपना जीवन निर्वाह करता है। झाड़-फूक से मिले पैसे से ही उसका जीवन चलता है। "रंगाई ओझा एक ऐसा इंसान है जो कोई भी बीमार क्यों न हो उसे औषधी देता है। रंगाई ओझा के बिना हमारा गाँव नहीं चलता है। उनके जैसा ओझा मिलना बहुत मुश्किल है।"[94] ग्रामीण समाज में ओझा पर मान्यता बहुत है। डॉक्टर को दिखाने से भी ज्यादा ओझा पर विश्वास करते है। उन्हीं से औषधी ले जाकर खाते हैं। उसके परिणाम ओझा को जो मिलता है उसी से वे अपने घर-परिवार का पालन-पोषण करते हैं।

भगीरथ फुकन खेती करने के अलावा अपने दोस्त हातीबरुवा के साथ मिलकर जंगली हाथी पकड़कर बेचने का व्यवसाय करता है। खेती से प्राप्त धन से घर चलाना और बच्चों की पढ़ाई नहीं हो पाती हैं। जिस कारण वह हाथी पकड़ने का कार्य भी करता है। "पिछली बार हाथी खरीदने वाले लोग आने में देर हुआ था। जिस कारण सब हाथी को घर में रखना पड़ा।"[95]

किसान का जीवन अत्यंत दयनीय होता है। मौसम के चलते खेती नष्ट हो जाने से किसान जीवन में उथल-पुथल मच जाती है। "खेती का समय है। आखों में नींद नहीं। खेती की जमीन को एकटक देखता रहता हूँ। खेतीबाड़ी परिपूर्ण मात्रा में थी। अब तामूल (सुपारी) के कुछ पेड़ के अलावा बगान में कुछ नहीं है। जो एक दो गहने थे, पेट की आग के कारण महाजन को दे दिया गया।"[96] भगीरथ फुकन कहते हैं "जो नदी इतना दिन शान्ति का प्रतीक था आज कुछ वर्षों से वही अशांति का कारण बन रहा है।"[97] ग्रामीण क्षेत्र में प्रधान व्यवसाय कृषि ही है परंतु आज बदलते परिपेक्ष्य में उनका व्यवसाय संकट में हैं। मानव समुदाय में परिवर्तन स्वाभाविक है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। इसी परिवर्तन के चलते गाँव में व्यवसाय करने के लिए जमीन कम पड़ रहे हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यास में ग्रामीण जनों का प्रमुख व्यवसाय खेत-खलिहान ही है। मौसम पर निर्भर होने के कारण किसान तथा ग्रामीण जनों की आर्थिक स्थिति में उतार-चढ़ाव रहती है। 'मैला आँचल' उपन्यास में ग्रामीण जीवन में व्याप्त व्यवसाय में देह व्यपार भी है। चरखा का उल्लेख भी उपन्यास में मिलता है। परंतु असमिया उपन्यास में उल्लेखित है कि ग्रामीण जीवन से व्यवसाय का प्रधान स्रोत खेती ही। इसके अलावा एकाध लोग दूध बेचना, जंगली हाथी को पकड़कर बेचने का कार्य भी करते हैं।

3. ख.ii. जमींदार और सामान्य जनमानस :

भारतवर्ष में जमींदारी प्रथा मुगल काल एवं ब्रिटिश शासन काल से प्रचलित है। यह समाज में प्रचलित कुरीति है जिसमें भूमि खेती करने वाले का न होकर जमींदार, महाजनों का होता है। जमींदारी प्रथा सामंती सभ्यता का एक अंग है। भारत में प्राचीन काल में यह विचारधारा प्रचलित थी कि भूमि सार्वजनिक संपत्ति हैं, इस पर सभी का अधिकार है। भूमि को भी प्रकृति ने वायु, जल, प्रकाश की तरह दी है। बदलते समय के साथ

भूमि व्यक्तिगत संपत्ति बनता गया । इस भूमि के चलते मनुष्य-मनुष्य में झगड़े होने लगे । मुगलकाल से ही जमींदारी प्रथा का उदय होने लगा। उनके आने से पूर्व ही भूमि समाज के बलशाली लोगों के हाथ चला गया था। महाजन, जमींदारों ने भोले-भाले जनता के साथ षड्यंत्र रचकर उनको उन्हीं के जमीन से निकाल फेंका था । अंग्रेज शासकों को विश्वास था कि वे भूमि स्वामी है और कृषक उनकी प्रजा जिस कारण उन्होंने स्थायी और अस्थायी बंदोबस्त बड़े किसान, राजाओं, जमींदार और महाजनों से किया । जमींदार किसानों से वसूली करते थे और उसे अंग्रेज शासकों को देते थे । प्राचीनकाल, मध्यकाल और अर्वाचीन काल में उल्लेखित है कि समय के माँग ने जमींदारों की उत्पत्ति के कारण बड़ा सा क्षेत्र बिना जमींदार-महाजनों के सहयोग से सठीक रूप से परिचालना करना संभव न था । केंद्रीय शक्ति को अपने छोटे-छोटे क्षेत्र में प्रभाव बनाये रखने के लिए जमींदारों को जन्म दिया । जमींदारी प्रथा का जन्म व विकास परिस्थितियों के दबाव के कारण थी- किसी साधन संपन्न शक्तिमान व्यक्ति का आश्रय प्राप्त करना क्षेत्र विशेष के निवासियों के लिए आवश्यक हो गया होगा । इस तरह परिस्थितियों की देन के रूप में छोटे-छोटे जमींदार स्वतः बनते गये होंगे ।"[98]

मेल्कम ने भारत की कृषि-व्यवस्था पर अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि "भारत वर्ष की प्रचलित प्राचीन सामाजिक परंपरा के अनुसार वहाँ प्रत्येक जाति व वर्ग का एक प्रमुख होता था जो उसका संरक्षक, निर्देशक, नियामक एवं मार्गदर्शक होता था तथा इसी रूप में जमींदारों का आविर्भाव हुआ ।"[99]

कालांतर में जमींदारी प्रथा वंशानुगत होता गया । जमींदार अपने क्षेत्र में रहने वाले जनता, किसानों पर अपना पूर्ण अधिकार दिखाने लगे । बदलते समय के साथ व्यक्तिगत स्वार्थ पूरा करना ही जमींदार और महाजनों का उद्देश्य बनता गया । स्वतंत्रता के पहले ब्रिटिश शासकों ने जनता को लूटा । उस समय ब्रिटिश शासकों के साथ स्वार्थी एवं लोभी जमींदार, महाजनों ने भी किसान और सरल जनता को लूटा था । स्वतंत्रता के पश्चात् जमींदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए कानून बनाया गया और इस प्रथा को समाप्त करने में कानून ने मदद किया ।

स्वतंत्रता से पूर्व साम्राज्यवादी अंग्रेज, पूंजीपति और जमींदार शोषण की तीन स्तर थे जो जनता को विविध रूप से प्रताड़ित, शोषित, अत्याचार करते थे । जमींदार और महाजन वह इकाई थी जो अंग्रेज और किसानों के बीच संबंध स्थापित करते थे । जमींदार किसानों से भूमिकर लेकर अंग्रेज को देते थे । "इस प्रकार किसानों से

इतना लगान लेता था कि वह स्वयं भी मौज कर सके और सरकार को भी दे सके। किसान अपने खून से जमींदारों और साम्राज्यवादी सरकार तथा सरकार की गोद में पलते हुए पूँजीवाद इन सबको सींच रहे थे। किसानों का सीधा संबंध जमींदारों से था किंतु सरकारी सलाहकार भी प्रायः किसानों के पास आया ही करते थे और तरह-तरह से इन्हें परेशान करते थे। इनकी हड्डियों से पैसे निचोड़ते थे।"[100]

जमींदार अपने स्वार्थ के लिए कृषकों का शोषण करते हैं। इसी शोषण को 'मैला आँचल' उपन्यास में लेखक ने दर्शाया है। "अनाज के ऊँचे दर से गाँव के तीन ही व्यक्तियों ने फायदा उठाया है- तहसीलदार साहब ने सिंघ जी ने और खेलावनसिंह यादव ने। छोटे-छोटे किसानों की जमीनें कौड़ी के मोल बिक रही हैं। मजदूरों को सेवा रुपए रोज मजदूरी मिलती हैं, लेकिन एक आदमी का भी पेट नहीं भरता।"[101] जमींदार वर्ग किसानों को शोषण करने के नये-नये मार्ग खोजते हैं। मजदूरों को रोजगार में कोई बढ़ोत्तरी नहीं जितना कमाते हैं उससे अपने और अपने परिवार का पालन-पोषण तक नहीं कर पाते थे ऊपर से जमींदार और महाजनों के शोषण से किसानों के जीवन में अंधकार छा जाता है। जिसका उल्लेख रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास में किया है। "डी.डी.टी और मसहरी की बात तो बहुत बड़ी हुई, देह में कड़वा तेल लगाना भी स्वर्गीय भोग-विलास में गण्य है। तेल-फुलेल तो जमींदार लोग लगाते हैं। स्वर्ग की परियाँ तेल-फुलेल लेकर पुष्प करने वालों की सेवा करती हैं।"[102] रेणु ने साक्षात मेरीगंज क्षेत्र में व्याप्त किसानों की दशा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। सुख, भोग-विलास शब्द केवल जमींदारों के लिए ही बना है। किसान जो दिन-रात मेहनत-मजदूरी करता है उनके नसीब में कड़वा तेल तक नहीं और जो किसानों का शोषण करता है उसके नसीब में सेवकों की कमी नहीं। किसानों की हालत दिन-प्रतिदिन और ख़राब होती जा रही है –"खम्हार ! सालभर की कमाई का लेखा-जोखा तो खम्हार ! में ही होता है। दो महीने की कटनी, एक महीना मड़नी, फिर साल भर की खटनी। दबनी- मड़नी करके जमा करो, साल भर खाए हुए कर्ज का हिसाब करके चुकाओ। बाकी यदि रह जाए तो फिर सादा कागज पर अंगूठा की टीप लगाओ। सफाई करनी है तो बैल-गाय भरना रखो या हलवाहा-चरवाहा दो। फिर कर्ज खाओ। खम्हार का चक्र चलता रहता है। खम्हार में बैलों के झुंड से दबनी- मड़नी होती है। बैलों के मुँह में जाली का 'जाब' लगा दिया जाता है। गरीब और बेजमीन लोगों की हालत भी खम्हार के बैलों जैसी है। मुँह में जाली का जाब।"[103] भूस्वामी अपने घर भरने के लिए किसानों का उपयोग गाय बैल की तरह कर रहे हैं। पूरा साल खटनी करने वाला किसान-मजदूर अंत में पशु बनता है।

गाँव में तीन शक्तिशाली भूस्वामी गरीब किसानों का शोषण कर रहे थे उसका उल्लेख रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास में किया है – "गाँव के सभी बड़े-बड़े किसानों का अपना-अपना मजदूर टोला, तहसीलदार साहब का पोलियाटोला, धानुकटोला, कुर्मीतोला और कियोटटोला, खेलावन यादव का गुआरटोला और कोयरीटोली।"[104] जमींदार अपने स्वार्थ के लिए गाँव को बाँट रखा है। यह केवल मेरीगंज की स्थिति ही नहीं पूरे देश की स्थिति है। भारतीय किसान और मजदूरों की स्थिति यहीं है।

'मैला आँचल' में जब जनता को यह पता चलता है कि मेरीगंज में जमींदारी प्रथा खत्म होने वाली है तो वह नाच-गाने में मस्त हो जाते हैं। लगता है सारी जमीन पर इन्हीं का अधिकार हो गया हो – "जमींदारी प्रथा खत्म हो गई। जमींदार जमीन से बेदखल नहीं कर सकता। हमने उन्हें जमीन से बेदखल कर दिया। जो जोतेगा, जमीन उसकी है। जो जितना जोत सको, जिसकी जमीन मिले जोतो, बोओ-काटो। अब बाँटने का भी झंझट नहीं। धरती माता का प्यार झूठा नहीं फिर खेत में जिंदगी झूमेगी। आषाढ़ के बादल बजा रहे हैं मादल, बिजली नाच रही हैं। तुम भी नाचो।"[105] किसान, साधारण ग्रामीण जन, मजदूर खुशियाँ मना रहे थे कि उनको उनकी जमीन मिल गई है, परंतु कुछ हासिल नहीं हुआ। "खेतों में फैली हुई काली मिट्टी की संजीवनी इन्हें जिलाए रखती है। शस्य श्यामला, सुजला, सुफला....इनकी माँ नहीं ? अब तो शायद धरती पर पैर रखने का भी अधिकार नहीं रहेगा। कानून बनने के पहले ही कानून को बेकार करने के तरीके गढ़ लिए जाते हैं।"[106]

रेणु समाजवाद के प्रबल समर्थक थे। 'मैला आँचल' उपन्यास में सैनिक जी के कथन के माध्यम से अपना ही विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं – "जिस तरह सूरज का डूबना एक महान सच है, पूँजीवाद का नाश होना भी उतना ही सच है। मिलों की चिमनियाँ आग उगलेगी और उन पर मजदूरों का कब्ज़ा होगा। जमीनों पर किसानों का कब्ज़ा होगा। चारों ओर लाल धुआँ मंडरा रहा है। उट्ठो, किसानों के सच्चे सपूतों ! धरती के सच्चे मालिकों, उट्ठो ! क्रांति का मशाल लेकर आगे बढ़ो !"[107] रेणु अपने उपन्यास में आनेवाले दिनों की भविष्यवाणी करते हैं। निरंतर संघर्ष के माध्यम से एक दिन किसानों-मजदूरों को मुक्ति मिलेगी।

भारतीय समाज में जमींदारों की जो स्थिति है वही महाजनों की भी है। इस संदर्भ में रामदरश मिश्र अपना मत प्रस्तुत करते हैं – "महाजनी सभ्यता का वृहद रूप शहरों में था, मगर छोटे-छोटे साहूकारों और ऋणदाताओं

के रूप में देहातों में भी वह कुछ छटा दिख रहा था। ये छोटे-छोटे बनिये और सूदखोर महाजन किसानों को ऋण के जाल में उलझाते थे, उनके घर-द्वार नीलाम करते थे, उनके अनाज खलियान से तैलावा लेते थे।"[108]

'मैला आँचल' उपन्यास में लेखक ने गाँव की आर्थिक दुर्दशा का चित्रण मार्मिक ढंग से किया है। ग्रामीण जनता किसी पर्व त्योहार में महाजन के घर से उधार लेने जाते समय की स्थिति को इस प्रकार दर्शाया है- "पुआ पकवान के इस छोटे से आयोजन के लिए मालिकों के दरवाजे पर पाँच दिन पहले से भीड़ लग जाती है। बखार के मुँह खोल दिये जाते हैं। मालिक वहीं खाता लेकर बैठ जाते हैं, पास में कजरौटी खुली हुई रहती है। धान नापनेवाला धान की ढेरी से धान नापता जाता है। बादरदास को एक मन। सोनाय ततमा को तीन पसेरी। सादा कागज पर अंगूठे का निशान देते जाओ। भादों महीनें में यदि भदै धान चूका देगे तो ड्योढ़ा, यानी एक मन डेढ़मन। यदि अगहनी फसल में चुकाओगे तो डेढ़ मन का तीन मन सीधा हिसाब है।"[109] इसी प्रकार ग्रामीण जन महाजनों के कुचक्र में पड़ते हैं। आर्थिक स्थिति के कारण किसानों को महाजनों के पास जाना ही पड़ता है और महाजन अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए ग्रामीण आर्थिक रूप से दुर्बल लोगों का शोषण करते हैं।

हिंदी के 'मैला आँचल' की तुलना में असमिया के 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में जमींदारी प्रथा ना के बराबर है। कोई-कोई, असमिया उपन्यास थोड़ा बहुत जमींदारी प्रथा का वर्णन है जैसे – 'दताल हांतीर ऊँये खुवा हाउदा'। 'मैला आँचल' की तरह महाजनों का कुचक्र 'नोई बोई जाय' उपन्यास में देखने को मिलता है। सेंदुरीपाम गाँव में जब घटि महाजन आया था तो खाली हाथ था। यहाँ आने के पश्चात् जनता का शोषण करते-करते बहुत संपत्ति इकट्ठा कर लिया। "घटि महाजन जब आया था तो दोनों हाथ खाली था। अब महाजन के पास लगभग 40 बीघा जमीन हैं। बर्तन, अलंकार आदि से महाजन का संदूक भरा पड़ा है। एक बार जो संपत्ति महाजन के पास जाता है तो, उसको वापस ले आना कठीन है।"[110] इस प्रकार महाजन अपने कुचक्र में ग्रामीण जनता को फँसाते हैं। एक बार महाजन के चुंगल में फँस गया तो उससे निकल पाना संभव नहीं। आर्थिक स्थिति इतनी खराब होती है कि ग्रामीण जन महाजन के पास जाने के अलावा और कोई उपाय नहीं बचता है। "घटि महाजन के पास जाने के सिवा और कोई उपाय नहीं है।"[111]

दिन-प्रतिदिन बिगड़ते आर्थिक स्थिति का फायदा उठाकर महाजन साधारण जनता का शोषण करते हैं। किसान चाहकर भी महाजन के कुचक्र से नहीं बच पाता है। खेती लगाने का समय हो या जमीन की खाजना के

समय हो महाजन के पास जाना स्वाभाविक है । ग्रामीण जनता की ऋण की समस्या के संबंध में डॉ. ओंकारानाथ अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं- "गाँवों की कर्जदारी की समस्या हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्व का विषय है, क्योंकि इसने सामुदायिक अंत संबंधों पर सबसे अधिक असर डाला है। आधुनिक आर्थिक प्रगति के ऋण उत्पादन के लिए लिया जाए। इस तरह सामुदायिक धन को बेहत्तर उपयोग होता है और उत्पादन बढ़ता है । मगर भीषण गरीबी ने जनता को 'उपभोग' के लिए ऋण लेने पर बाध्य कर दिया, इसके कारण उत्पादन के क्षेत्रों में धन के प्रवाह की संभावनाएँ बंद बंद हो गई और समाज में सूदखोरी की अनार्जित आय का दौर-दौरा हो गया।"[112]

आजादी से पूर्व हमारे समाज व्यवस्था में जमींदार लगान लेकर और महाजन सूद लेकर किसानों का शोषण करते थे। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में मौजादार को जमीन की लगान देने के लिए भगीरथ फुकन के पास पैसे नहीं होते हैं वह महाजन के पास पैसा उधार लेने जाता है। अपनी पत्नी सुवागी के गहने गिरवी रखकर पैसे लेने जाता है। "घटि महाजन के पास जा कर बीस रुपायाँ उधार माँगा। बदले में गहना गिरवी रख रहा हूँ नहीं तो धान के समय धान देकर चुका दूँगा । घटि महाजन कहने लगा 'कौन व्यक्ति कितनी उधारी लेकर नहीं दिया है।"[113] महाजन ग्रामीण जनता को फुसलाकर उनका जमीन हड़पना चाहता है। इसी प्रकार उपन्यास में आर्थिक स्थिति के चलते सुवागी के पिता महाजन के पास अपनी जमीन गिरवी रखते हैं। इतना ही नहीं वह अपने घर चलाने के लिए उधार भी लेते हैं। दिन-प्रतिदिन यह उधार का सूद बढ़ता ही जाता है अंत में सारी जमीन महाजन को सौंप देनी पड़ती है। इसी जमीन के कारण गरीब किसान को मजदूर बनता है।

'मैला आँचल' की तुलना में 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में जमींदारी प्रथा का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है परंतु महाजनों का शोषण दोनों उपन्यास में स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। ग्रामीण अर्थनीति व्यवस्था अवरुद्ध करने में महाजनों का अह्म भूमिका रहता है। जमींदारों की तरह ही ग्रामीण जनों को शोषण करने वाला और एक वर्ग है महाजन। आर्थिक स्थिति के चलते ग्रामीण जन, किसान आदि महाजन से पैसा कर्ज में लेते हैं, उस कर्ज का सूद का सूद भी लेते हैं। साधारण लोगों को इस प्रकार शोषण करते हैं जिसके कुचक्र से जिंदगी भर निकल पाना संभव नहीं। हिंदी के 'मैला आँचल' में तहसीलदार गरीब जनता से सादा कागज पर अंगूठा लेता है। कर्ज का सूद देते-देते जनता बूढ़े हो जाते हैं परंतु कर्ज कभी खत्म नहीं होता है। ठीक उसी प्रकार 'नोई बोई

जाय' उपन्यास में महाजन के कुचक्र को दिखाया गया है। सेंदुरीपाम गाँव में जब आया था तो महाजन के हाथ खाली थे। परंतु अब बहुत से संपत्ति का मालिक बन गया। वह किस प्रकार अधिक दर पर जनता का शोषण करता है इसका चित्रण उपन्यास में किया गया है। निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' उपन्यास में महाजन के कुचक्र का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पहले कर्ज देकर ग्रामीण जनता को फसाते हैं उसके पश्चात् महाजनों का शोषण आरंभ हो जाता है। इसी का चित्रण दोनों उपन्यासों में मिलता है।

3. ख.iii. नगरोन्मुखता :

भारतवर्ष गाँव का देश है। देश की अधिकांश जनता अब भी गाँव में बसता है। गाँव का सादा सहज-सरल जीवन शहरी जीवन से अलग है। समय परिवर्तनशील है। समय के साथ समाज में प्रचलित रीति-नीति, परंपरा बदलती है। पीढ़ी दर पीढ़ी नई रीति-नीति, परंपरा, मान्यताएँ जन्म लेती है। पुराने परंपरा के साथ-साथ नई परंपराओं का विकास होती रहती है। परंतु गाँव में जिस प्रकार की भौतिक सुख, शिक्षा, रोजी-रोटी की सुविधा कम है इसी कारण ग्रामीण जन शहर की ओर पलायन कर रहे हैं।

बदलते समय के साथ मनुष्य की जरूरत भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। जनसंख्या बुद्धि के कारण पहले की तरह गाँवों में रोजगार नहीं मिलती है। परिवार की संख्या ज्यादा होने के कारण खेती करने के लिए जमीन प्रयाप्त नहीं है। अपने आपको तथा अपने परिवार का पालन-पोषण करने हेतु ग्रामीण जन रोजगार की तलाश में शहर की ओर जा रहे हैं। गाँव की तुलना में शहर में सुख-सुविधा अधिक है। गाँव से जो व्यक्ति काम की तलाश में हो या पढ़ाई करने शहर जाता है और वहीं का हो कर रहा जाता है।

उच्च शिक्षा, रोजगार के चलते गाँव से लोग बाहर निकल रहे हैं। जिसके चलते गाँवों में दिन प्रतिदिन बेकारी, उत्पादन का कम होना, मजदूरों का अभाव हो रहा है। "गाँवों की नगरोंमुखता के कारण ही गरीबी, बेकारी, कृषि की कम आय तथा गाँवों में मजदूरी का अभाव, संक्षेप में नगरोंमुखता के मूल में आर्थिक परिस्थिति जिम्मेदार है। स्वतंत्रता के बाद राजनीति के प्रवेश से गाँव में बदलाव आया है। राजनीति ने ग्राम्य जीवन को जहरीला बना दिया है। परिणाम यह हुआ कि गाँव चोरी, निंदा, चुगली, बैर, अपराधी आदि से भर गया है।"[114]

बढ़ते महँगाई के कारण लोग शहर की ओर पलायन कर रहे हैं। जिसके चलते ग्रामीण जीवन बदलता जा रहा है। पुरानी परंपरा टूटती जा रही है।

'मैला आँचल' उपन्यास में रेणु बदलते ग्रामीण परिवेश को चित्रण किया है। मेरीगंज गाँव में दिन-प्रतिदिन मजदूरी कम हो रही है। जिस कारण साधारण जन काम की तलाश में शहर की ओर जा रहे हैं। गाँव में खेती के लिए आधुनिक तकनीक का प्रयोग हो रहा है। जिस कारण खेती के लिए मजदूर कम लगने लगे है। "तहसीलदार साहब इस बार ट्रेक्टर खरीद रहे हैं। बेतार कहता था 'उसी में सबकुछ होगा- हल, चौंगी विधा, कोड़कमान, कादी गोरा और धन कटनी भी ! आदमी की क्या जरूरत ? पानी का पंपू आवेगा। इंद्र भगवान की खुशामद की जरूरत नहीं। कमला नदी में पम्पू लगा दिया, मिसिन इसटाट कर दिया हथिया सूँड़ की तरह सब पानी सोखकर खेत में पटा देगा।"[115] बदलते समय के साथ गाँव में आधुनिक तकनीक का प्रयोग होने लगा है जिसके फलस्वरूप लोग काम की तलाश में शहर की ओर जा रहे हैं। "कटिहार में एक जूट मिल और खुला है। तीन जूट मिल.....चलो, चलो, दो रुपैया रोज मजदूरी मिलती है। गाँव में अब क्या रखा है।"[116] अपने घर परिवार को पालने के लिए गाँव में रोजगार बचा नहीं है।

'नोई बोई जाय' आंचलिक उपन्यास में भी 'मैला आँचल' की तरह नगरोंमुखता दिखायी देती है। बदलते समय के साथ लोग भी बदल रहे हैं। उनकी मानसिकता में परिवर्तन आ रहा है। "लोग जितने शिक्षित हो रहे हैं उतने ही गाँव को छोड़कर शहर की ओर जा बसे हैं।"[117] भगीरथ फुकन ने अपने समस्त जीवन बच्चों को पालन-पोषण में बिता दिया। भगीरथ फुकन ने अपने बेटे विजन को डॉक्टर बनाने के लिए धन-संपत्ति बेच दिया परंतु भगीरथ फुकन खुश थे क्योंकि वह यह सोचते थे कि जब विजन डॉक्टर बनकर आयेगा तो गाँव में रहकर लोगों की सेवा करेगा। बदलते समय ने विजन को भी परिवर्तित कर दिया। शहर के सुख-सुविधा, आर्थिक सुदृढ़ता आदि ने विजन को बाँध लिया था। "पाँच साल बाद विजन डॉक्टर हो गया परंतु साल दो साल में उसका घर आना कम होता गया।"[118] साधारण ग्रामीण जन अपने संतान को महान बनाने की चेष्टा में लगे रहते हैं। वे जब सफल होते हैं तो अपने माता-पिता, जन्मस्थान को भूलकर नई शहरी दुनियाँ में बस जाते हैं। "इस संदर्भ में भगीरथ फुकन अपनी वेदना इस प्रकार व्यक्त करते हैं – "गाँव के केंचुआ अपने गड्ढे से निकलकर नगर के खुले मैदान में पहुँच गया।"[119]

आधुनिक समय में ग्रामीण जीवन को शहर से काट कर नहीं देखा जा सकता क्योंकि आर्थिक स्थिति के चलते ग्रामीण जन शहर की ओर जा रहे हैं। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में भगीरथ फुकन का पोता रूपम को आर्थिक तंगी के कारण शहर में जाना पड़ा। शहर जाकर जीवन व्यतीत करने के लिए नौकरी करनी पड़ी। "रूपम ने नगर में रहकर बी.ए. की पढाई की। एम.ए. पढ़ने के लिए पैसों की कमी थी। घर की ऐसी हालत देखकर उसने आगे न पढ़ने का फैसला किया और शहर के सरकारी विभाग में नौकरी करने लगा।"[120] समय के साथ गाँव में नगरोंमुखता बढ़ता जा रहा है। नगरोंमुखता का असर गाँवों में बुरा पड़ रहा है। इसका प्रभाव सामाजिक जीवन पर भी पड़ रहा है। यही कारण है कि आज गाँवों में अजनबीपन और व्यक्ति केंद्रिक बनता जा रहा है। व्यक्ति मानवीय गुणों को भूलाकर स्वार्थी बनता जा रहा है।

हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में आर्थिक जीवन विशेषतः कृषि पर निर्भर है। दोनों उपन्यास में ग्रामीण जन दिन-प्रतिदिन नगरीय जीवन के मोह में पड़े रहे हैं। शिक्षाग्रहण, रोजगार प्राप्त करने हेतु ग्राम से जो व्यक्ति शहर जाता है वह वहीं का बन जाता है। नई शिक्षा प्राप्त पीढ़ी की बदलते मानसिकता के फलस्वरूप वे गाँव में नहीं रहना चाहते । शहर के परिवेश में अपने आपको ढालकर ग्रामीण परिवेश में रहने में उन्हें शर्म आती है। अपने माता-पिता, जन्मभूमि को त्यागकर शहर की दुनिया में ज्यादा सुखी है। 'मैला आँचल' उपन्यास में खेती-बाड़ी में आधुनिक तकनीक के प्रयोग के फलस्वरूप गाँव से रोजगार कमती जा रही है। पहले जो काम दस व्यक्ति मिलकर करते थे वहीं काम तकनीक के माध्यम से दो व्यक्ति कर रहे हैं। जिस कारण लोग रोजगार की तलाश में शहर की ओर जा रहे हैं। ठीक उसी प्रकार 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में भी नगरोंमुखता दिखायी देती हैं। भगीरथ फुकन के माध्यम से लेखक ने बदलते परिस्थिति की मानसिकता का चित्रण किया है। भगीरथ फुकन ने अपनी समस्त संपत्ति अपने बेटे विजन की पढाई में खर्च कर दिया ताकि वह डॉक्टर बन के गाँव में आकर लोगों की सेवा कर सके परंतु विजन डॉक्टर बनने के साथ अपने गाँव में आना कम कर दिया और शहर का बनकर रह गया। दोनों उपन्यासों में नगरोंमुखता की प्रवृत्ति देखने को मिलता है।

हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में दिखाया गया है कि दोनों में आर्थिक स्थिति कृषि पर निर्भर है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की आर्थिक स्थिति अधिकांश गाँवों

पर निर्भर है। ग्रामीण क्षेत्र में कृषि ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण व्यवसाय है। ग्राम्य जन कृषि पर निर्भर है और उनको रोजगार कृषि के माध्यम से ही मिलता है। ज्यादातर ग्रामीण किसान खेती के लिए पुराने साधनों का ही उपयोग करते हैं परंतु आर्थिक रूप से सबल जमींदार खेती करने के लिए आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर रहे हैं जिसका उल्लेख 'मैला आँचल' उपन्यास में मिलता है। जिस कारण खेती में पहले की तुलना में कम लोगों की जरूरत होने लगी है। धीरे-धीरे लोग नगर की ओर जा रहे हैं। उसी प्रकार 'नोई बोई जाय' उपन्यास में भगीरथ फुकन के माध्यम से दिखाया गया है कि उनके परिवार के ही लोग शिक्षित होकर गाँव को छोड़कर नगर की ओर जा रहे हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण पहले की तरह खेती के लिए जमीन बचा नहीं है। लोग खेती के जमीन में भी घर बनाने लगे हैं। जिस कारण खेती करने के लिए जमीन कम पड़ रही है। बढ़ते आर्थिक तंगी के कारण भगीरथ फुकन दूध बेचने का काम और जंगली हाथी पकड़कर बेचने का काम करता है। 'मैला आँचल' उपन्यास में आर्थिक संकट के कारण फुलिया जैसी स्त्री देह व्यापार का काम करती है। रामपिरिया रामदास महंत की दासी बनती हैं। 'मैला आँचल' की तुलना में 'नोई बोई जाय' उपन्यास में स्त्री में देह व्यापार नहीं है।

'मैला आँचल' उपन्यास में जमींदार और महाजनों का कुचक्र का वर्णन लेखक ने किया है। मेरीगंज में किसानों की हालत दिन-प्रतिदिन और ख़राब होती जा रही है। पूंजीपति वर्ग समाज के किसान वर्गों को सदैव शोषण करते आ रहे हैं। जमींदार और महाजन के चक्र में एक बार फँस गये तो वहाँ से निकल पाना संभव नहीं है। असमिया उपन्यास 'नोई बोई जाय' में जमींदारी प्रथा ना के बराबर है, परंतु महाजन के कुचक्र से असमिया समाज भी प्रभावित है। आर्थिक तंगी के कारण महाजन के पास साधारण जन को जाना ही पड़ता है। महाजन से ऋण लिया जाता है उसके सूद का सूद देते-देते व्यक्ति का जीवन चला जाता है परंतु वह मूल ज्यों का त्यों रहता है। अंत में ग्रामीण जन को विवश होकर अपना जमीन त्यागना पड़ता है। अतः देखा जा सकता है कि दोनों उपन्यासों के ग्रामीण जीवन में सबसे बड़ी समानता यह है कि दोनों गाँवों की आर्थिक स्थिति का प्रधान केंद्र खेती ही है और अधिकांश लोगों का जीवन खेती पर ही निर्भर है।

संदर्भ :

1. आधुनिक परिदृश्य : आँचलिक और हिंदी उपन्यास, विद्या सिंहा, पृ.-30
2. वही, पृ.सं.- 35
3. महाकवि जायसी और उनका काव्य : एक अनुशीलन, डॉ. इकबाल अहमद, पृ.सं.- 225
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृ.सं.- 23
5. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, भूमिका
6. वहीं,
7. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 11
8. वही, पृ.सं.- 102
9. वही, पृ.सं.- 10
10. वही, पृ.सं.- 17
11. वही, पृ.सं.- 17
12. वही, पृ.सं.- 39
13. वही, पृ.सं.- 104
14. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 04
15. वही, पृ.सं.- 27
16. वही, पृ.सं.- 06
17. वही, पृ.सं.- 177
18. वही, पृ.सं.- 177
19. वही, पृ.सं.- 12
20. रामचरितमानस, तुलसीदास, पृ.सं.-20
21. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 12
22. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 97
23. वही, पृ.सं.- 239

24. वही, पृ.सं.- 289
25. वही, पृ.सं.- 223
26. वही, पृ.सं.- 286
27. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 12
28. वही, पृ.सं.- 101
29. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 143
30. वही, पृ.सं.- 126
31. वही, पृ.सं.- 261
32. वही, पृ.सं.- 261
33. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 11
34. वही, पृ.सं.- 13
35. वही, पृ.सं.- 11
36. वही, पृ.सं.- 18
37. वही, पृ.सं.- 36
38. वही, पृ.सं.- 20
39. वही, पृ.सं.- 20
40. वही, पृ.सं.- 36
41. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 168
42. वही, पृ.सं.- 168
43. वही, पृ.सं.- 167
44. वही, पृ.सं.- 87-88
45. जाति में पितृसत्ता, उमा चक्रवर्ती, पृ.सं.- 23
46. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 19
47. वही, पृ.सं.- 85

48. वही, पृ.सं.- 44

49. वही, पृ.सं.- 44

50. वही, पृ.सं.- 43

51. वही, पृ.सं.- 123

52. वही, पृ.सं.- 114

53. वही, पृ.सं.- 115

54. वही, पृ.सं.- 226

55. वही, पृ.सं.- 84

56. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 168

57. वही, पृ.सं.- 111

58. वही, पृ.सं.- 111

59. वही, पृ.सं.- 201

60. समिधा-बसंत, फरवरी, 1965

61. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 19

62. वही, पृ.सं.- 19

63. वही, पृ.सं.- 20

64. वही, पृ.सं.- 24

65. वही, पृ.सं.- 11

66. वही, पृ.सं.- 20

67. वही, पृ.सं.- 217

68. वही, पृ.सं.- 37

69. वही, पृ.सं.- 43

70. वही, पृ.सं.- 114

71. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 276

72. वही, पृ.सं.- 275

73. वही, पृ.सं.- 260

74. वही, पृ.सं.- 291

75. वही, पृ.सं.- 308

76. वही, पृ.सं.- 167

77. जर्मन आइदियोले, काल मार्क्स, पृ.सं.- 84

78. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.- 440

79. समकालीन हिंदी उपन्यास की भूमिका, डॉ. रणवीर रांग्रा, पृ.सं.- 11

80. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 218

81. मैला आँचल का महत्त्व, सं. मधुरेश, पृ.सं.- 96

82. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 104

83. वही, पृ.सं.- 86-87

84. वही, पृ.सं.- 86

85. वही, पृ.सं.- 54

86. बिहार का सच, उर्मिलेश, पृ.सं.- 55

87. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 102

88. वही, पृ.सं.- 87

89. वही, पृ.सं.- 43

90. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 149

91. वही, पृ.सं.- 149

92. वही, पृ.सं.- 151

93. वही, पृ.सं.- 144

94. वही, पृ.सं.- 163

95. वही, पृ.सं.- 187

96. वही, पृ.सं.- 256

97. वही, पृ.सं.- 257

98. छत्तीसगढ़ का इतिहास, भगवान सिंह वर्मा, पृ.सं.- 129

99. ऐ. मेमायर्स ऑफ़ सेंट्रल इंडिया, मेलकम ग्रंथर, पृ.सं.- 7

100. हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ.सं.- 33

101. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 86-87

102. वही, पृ.सं.- 129

103. वही, पृ.सं.- 54

104. वही, पृ.सं.- 90

105. वही, पृ.सं.- 128

106. वही, पृ.सं.- 129

107. वही, पृ.सं.- 76

108. हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ.सं.- 33

109. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 90

110. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 153

111. वही, पृ.सं.- 152

112. हिंदी साहित्य : परिवर्तन के सौ वर्ष, ओंकारानाथ श्रीवास्तव, पृ.- 112

113. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 153

114. धरती धन न अपना, जगदीश चंद्र, पृ.सं.- 30

115. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 118

116. वही, पृ.सं.- 118

117. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 241

118. वही, पृ.सं.- 260

119. वही, पृ.सं.- 261

120. वही, पृ.सं.- 289

चतुर्थ अध्याय

'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यास में सांस्कृतिक-धार्मिक जीवन

4.क. सांस्कृतिक जीवन :

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की 'कृ' धातु से बना है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं - प्रकृति, संस्कृति और विकृति। जब प्रकृत वस्तु परिष्कृत हो जाता है तो यह संस्कृत बन जाता है और जब बिगड़ जाता है तो विकृत बन जाता है। अंग्रेजी में इसे कल्चर कहा जाता है जो लैटिन भाषा के कल्ट से लिया गया है। जिसका अर्थ है विकसित करना या परिष्कृत करना। संस्कृति का शब्दार्थ है उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। समय परिवर्तनशील है और मनुष्य प्रगतिशील प्राणी। मनुष्य अपने आस-पास के परिवेश को निरंतर विकसित एवं उन्नत बनाता जा रहा है। मनुष्य द्वारा निर्माण की गई इसी परिवेश को 'संस्कृति' कहा जाता है। संस्कृति जीवन का अभिन्न अंग है। मनुष्य अपनी चारों और के परिवेश, जीवन पद्धति, रीति-नीति, रहन-सहन, आचार व्यवहार, विश्वास, परंपरा, नवीन अनुसंधान आदि के द्वारा पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है, वह सभ्यता और संस्कृति का अंग है। संस्कृति वह विधि है जिसके द्वारा हम सोचते हैं और कार्य करते हैं। समाज में रहनेवाले हर व्यक्ति के लिए सभ्यता और संस्कृति महत्त्वपूर्ण रहती है।

समाज के सदस्य होने के नाते संस्कृति हमें उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त है। मनुष्य की सभी उपलब्धियाँ उसे संस्कृति से ही मिलती है। कला, संगीत, साहित्य, व्यवहार, चिंतन, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म विज्ञान सभी संस्कृति के अंग हैं। जिन आदर्शों, व्यवहारों, आचरणों, शिल्पकलाओं को मानव उन्नति के क्रम में निर्मित करता है, उसे वह निरंतर आगेवाली पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। आगे आने वाली पीढ़ी अपने ढंग से इसका विकास एवं एक नये सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण करती है। श्यामचरण दुबे के अनुसार "संस्कृति सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा जनित मानव अधिकार है। मनुष्य संस्कृति में जन्म लेता है, संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता। शारीरिक विशेषताओं की भांति संस्कृति प्रजनन के माध्यम से व्यक्ति को नहीं मिलती ....। समाज की परंपरा संस्कृति को जीवित रखती है।"[1]

संस्कृति का निर्माण मनुष्य करता है और समाज का यह आवश्यक अंग है। बदलते समय के साथ यह सेतुबंध का कार्य करती है। हरिदत्त वेदालंकार संस्कृति को मानसिक विकास का अंग मानते हुए अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हैं, "भौतिक उन्नति से शरीर की भूख मिट सकती है परंतु इसके बावजूद मन और आत्मा तो

अतृप्त ही बने रहते हैं। उन्हें संतुष्ट करने के लिए मनुष्य अपना जो विकास करता है उसे संस्कृति कहते हैं।"[2] मनुष्य के विकास के लिए संस्कृति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। विकसित संस्कृति में ही मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। इस संदर्भ में पूरनचंद जोशी अपना मत इस प्रकार रखते हैं- "मानव मस्तिष्क के लिए विज्ञान और कला का एक दूसरे की पूरक और अवियोज्य गतिविधियाँ हैं। दोनों का मकसद मनुष्य की समझ को विकसित करना और प्रकृति तथा मनुष्य पर नियंत्रण रखना है। विज्ञान प्रत्यक्ष रूप से बाह्य जगत में परिवर्तन करके ऐसा करता है लेकिन कला भावनाओं को प्रभावित कर अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य को अंजाम देती है।"[3] मनुष्य के विकास में कला और विज्ञान दोनों की अह्म भूमिका रहती है।

संस्कृति मनुष्य के जीवन से जुड़ी होती है। संस्कृति सीखी जाती है जो मनुष्य जन्म से या अनुवांशिकता के रूप में प्राप्त करता है। प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी निर्दिष्ट संस्कृति होती है। जिसकी सहायता से हम उस समाज को जान सकते हैं। संस्कृति समाज की विरासत है जो प्रत्येक अंचल में व्याप्त है। किसी भी अंचल में व्याप्त परंपरा, रीति-नीति, विश्वास, आदर्श, संस्कार, रूढ़ियाँ, प्रथा, जीवन, रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान आदि का सलिश्ष्ट रूप संस्कृति है। भारतीय संस्कृति बहुआयामी है जिसका वास्तव चित्रण ग्रामीण जीवन में मिलता है। ग्राम्य समाज में प्रचलित कला, रीति-नीति, पर्व-त्योहार, रूढ़ियाँ, परंपरा आदि के माध्यम से संस्कृति की झाँकियाँ मिलती है। यह सभी तत्व मिलकर ग्रामीण संस्कृति को परिपूर्ण बनाती है। भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान है जिसका प्रधान स्रोत कृषि है। डॉ. झानचंद गुप्त का इस संदर्भ में अपना मत इस प्रकार रखा है- "मनुष्य के रूप में एक सामाजिक सदस्य के नाते जो वह करता है, सोचता है, सब जटिल सांस्कृतिक चक्र से बना है। संस्कृति ही वह आधार है, जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान, कला, नैतिकता, प्रथाएँ एवं परंपराएँ सीखता है।"[4] साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में घटित घटनाओं का उल्लेख साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। ग्रामीण अंचल में व्याप्त संस्कृति को आँचलिक उपन्यास के माध्यम से अभियक्त करने की चेष्टा की गई है। परिवर्तित समय के साथ भारतीय आँचलिक समाज में प्राचीन एवं नवीन संस्कृति का संघातपूर्ण स्थिति दिखाई देती है। नई शिक्षा, नया भावबोध, नई सामाजिक व्यवस्था, विज्ञान एवं तकनीक के फलस्वरूप संस्कृति में परिवर्तन आने लगी है। शहर में यह परिवर्तन गाँव की तुलना में अधिक है। भारतीय संस्कृति का मूल रूप केवल गाँवों में बचा है।

4.क.i. मेला-उत्सव :

विश्वभर में भारतवर्ष को पारंपरिक और सांस्कृतिक मेला-उत्सवों का देश माना जाता है। भारत बहुधर्मी और बहु सांस्कृतिक देश है। धर्म, भाषा, संस्कृति में विविधता के कारण मेले और उत्सवों की संख्या भी अधिक है। भारतवर्ष में हर महीने व्यक्ति कोई न कोई उत्सव या त्यौहार का आनंद ले सकता है। प्रत्येक धर्म से जुड़े लोगों का अपना ही परंपरा और संस्कृति है। जो भी मेला या त्यौहार है उसके पालन करने के पीछे महत्त्वपूर्ण रीति-रिवाज, इतिहास, आस्था और विश्वास जुड़ा रहता है। भारतवर्ष विविधता का देश है क्योंकि यहाँ पर अनेक धर्म के लोग रहते हैं और सभी अपने-अपने मान्यता के अनुसार उत्सव मनाते हैं। मेले और त्यौहार भारतवर्ष का बहुत बड़ा आकर्षक का केंद्र है। यहाँ पर प्रत्येक त्यौहार फसल कटाई के समय, कुछ पूर्णिमा, कुछ सींचाई के समय मनाया जाता है।

मेले और उत्सव के माध्यम से हमारी कोमल भावनाओं को जागृत करने के साथ-साथ जीवन में आनंद-उमंग और उत्साह का संचार होता है। पूरे संसार में मनाये जानेवाले उत्सव और मेलों का अभिप्राय यह है कि वह हमारे जीवन में सामूहिक रूप से उल्लास लाने का काम करता है। मेले और उत्सव व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि समूह में मनाया जाता है। जिसके द्वारा लोगों में प्रेम, एकता, विश्वास, मित्रता बढ़ता है। मनुष्य को एक-दूसरे के निकट लाने का कार्य मेला-उत्सव करता है। मेले और उत्सव के माध्यम से सामाजिक परंपराएँ जीवित रहती है तथा यह हमारे जीवन का अंग बनकर जीवन को और अधिक जीवंत बनाती है। किसी भी देश के विकास में उसकी संस्कृति का योगदान महत्त्वपूर्ण रहता है। देश में व्याप्त मूल्य, उत्सव, पर्व, मेला, प्रथा, परंपरा, लक्ष्य आदि संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। संस्कृति के अंतर्गत मेले एवं त्यौहार न केवल धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आग्रह की अभिव्यक्ति करती है बल्कि लोक संस्कृति को बनाये रखने में अह्म भूमिका निभाती है। हमारी भारतीय सांस्कृतिक तत्व में उत्सव-मेले, तीज-त्योहार का अपना अलग महत्त्व है। भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास किताबों में नहीं जीवंत उत्सवों में देखा जाता है। जिसका यथार्थ उल्लेख आँचलिक उपन्यास में किया जाता है। इस संबंध में डॉ. शशिभूषण सिंहल का कहना है – "आँचलिक उपन्यास, समाज के क्षेत्र-विशेष के सांस्कृतिक परिवेश को प्रस्तुत करता है। सामाजिक उपन्यास में देश के सामान्य सांस्कृतिक जीवन की झाँकी मिली हैं किंतु आँचलिक उपन्यास प्रमुख सांस्कृतिक धारा में स्थिति द्वीप सरीखे स्थिर प्राय स्वतपूर्ण अंचलों की लोक-संस्कृति को अपना कथ्य बनाता है।"[5]

ग्रामीण समाज का पर्व, त्यौहार, मेला आदि अभिन्न अंग है। ग्रामीण जीवन में मेला-उत्सव आदि सांस्कृतिक प्रथा है। इसका संबंध ग्रामीण समाज से अटूट है। उत्सव प्रत्येक जन समुदाय की संस्कृति और परंपरा का द्योतित करने वाली इकाई है। हमारी संस्कृति मूलतः कृषि पर निर्भर है अतः कृषि को केंद्र में रखकर ग्रामीण मेला-उत्सव का आयोजन किया जाता है। ग्रामीण अंचल में व्याप्त इसी मेला-उत्सव को आँचलिक उपन्यास में चित्रित किया जाता है।

भारतीय ग्रामीण जीवन कृषि प्रधान है। ग्रामीण जीवन में अधिकतर पर्व-त्योहार कृषि से संबंधित है। कृषक का जीवन चाहे जितना भी दुखों से भरा हो परंतु वे पर्व-त्योहार बड़े ही आनंद के साथ मनाने की चेष्टा करते हैं। कृषक जीवन से संबंधित कुछ विशेष पर्व होता है जिसे मनाये बिना ग्रामीण जीवन अपूर्ण है। 'मैला आँचल' उपन्यास के माध्यम से फणीश्वरनाथ रेणु ने मेरीगंज क्षेत्र में मनाने वाले कई उत्सव-पर्व का उल्लेख किया है। मिथिला अंचल में मनाए जाने वाले खम्हार पर्व का उल्लेख किया है। "खम्हार यानि खलिहान, जिसमें धान की लेखा-जोखा होता है। साधारण किसान तो घाटे में रहते हैं, लेकिन जमींदार की मौज होती है, सो उसके लिए जश्न का दिन होता है। उसके घर होता है मिथिला अंचल का प्रसिद्ध लोकनृत्य बिदायत नाच।"[6] कृषि से संबंधित यह महत्वपूर्ण पर्व है परंतु गरीब किसान को इस पर्व में नुकसान ही भुगतना पड़ता है। महाजन जमींदार लोग इस पर्व को बड़े धूम-धाम से मनाते हैं। क्योंकि उनको धान की लेखा-जोखा में फायदा होता है। जो लोग जमींदार से धान उधारी लेते हैं वह भी इसी समय उधारी चुकाते हैं। रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास के माध्यम से मेरीगंज क्षेत्र में मनाने वाले पर्वों का उल्लेख बड़ी मनोरम ढंग से किया है। होली पर्व का उल्लेख बड़े विशदता के साथ किया है। "महँगी पड़े या अकाल हो, पर्व-त्योहार तो मनाना ही होगा। और होली ? फागुन महीने की हवा ही बावरी होती है। आसिन-कार्तिक के मैलेरिया और कालाजार से टूटे हुए शरीर में फागुन की हवा संजीवनी फूँक देती है। रोने-कहराने के लिए बाकी ग्यारह महीने तो है ही, फागुन भर तो हँस लो, गा लो। जो जीयै सो खेलै फाग। दूसरे पर्व-त्योहार को टाल भी दिया जा सकता है। दीपावली में एक-दो दीप जला दिए, बस छुट्टी। लेकिन होली तो मुर्दा दिलों को भी गुदगुदी लगाकर जिलाती है। बैर हुए आम के बाग से हवा आकर बच्चे-बूढों को मतवाला बना जाती है।"[7] मेरीगंज क्षेत्र में होली पर्व स्थानीय जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भले ही आर्थिक स्थिति कमजोर हो जमींदार-महाजन से उधारी लेकर त्योहार मनाना ही है। अन्य पर्व-त्योहार को टाला भी जा सकता है परंतु होली सांस्कृतिक और पारंपरिक उत्सव है जो मनुष्य के जीवन में संजीवनी फूँकने

का काम करती है। कुछ समय के लिए ही सही होली पर्व ग्रामीण संघर्षमय जीवन को थोड़ी देर के लिए उल्लास से भर देती है।

रेणु अपने उपन्यास में पर्व-त्योहार का वर्णन करने के साथ-साथ उस समय गानेवाले लोक गीतों का भी चित्रण मनोरम रूप से किया है। "फागुआ का हर एक गीत देह में सिहरन पैदा करती है फुलिया का चुमौना खलासी जी से हो गया है। खलासी जी विदाई कराने के लिए आए थे। लेकिन फुलिया इस होली में जाने को तैयार नहीं हुई। खलासी जी बहुत बिगड़े, धरना देकर चार दिन बैठे रहे। आखिर में रूठकर जानेलगे। फुलिया ने रमजू की स्त्री के आँगन में खलासी जी से भेट करके कहा था – "इस साल होली नैहर में ही मनाने दो अगले साल तो' नयना मिलानी करी ले रे सैयाँ, नयना मिलानी करी ले ! अबकी बेर हम नैहर रहबै, जे दिल चाहय से करि ले !"[8] होली रंगों का पर्व है। होली के दिन एक-दूसरे को रंग लगाते हैं। इस दिन का इंतजार सब लोग बड़े उत्सुकता के साथ करते हैं। इस दिन सब बैर भूलाकर एक दूसरे को रंग लगता है। जिसका उल्लेख उपन्यास में मिलता है। होली के दिन गानेवाले गीतों में का भरमार 'मैला आँचल' उपन्यास में मिलता है –"

"अरे बंहियाँ पकड़ि झाकझोरे श्याम रे
फुटल रेसम जोड़ी चूड़ी
मसकि गई चोली, भींगावल साड़ी
आँचल उड़ि जाए हो
ऐसो होरी मचायो श्याम रे।"[9]

मेरीगंज क्षेत्र में मनाने वाले 'सिरवा पर्व' का उल्लेख उपन्यास में है। सिरवा पर्व के साथ ही सतुआनी पर्व भी मनाया जाता है। सिरवा पर्व में अमीर-गरीब का भेद-भाव त्याग कर ग्रामीण जन मछली पकड़ते हैं। "कल 'सिरवा पर्व' है। कल पड़मान में 'मछमरी' होगी मछमरी अर्थात् मछली का शिकार। आज चैत संक्राति है। कल पहली वैशाख, साल का पहला दिन। कल सभी गाँव के लोग सामूहिक रूप से मछली का शिकार करेंगे। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी टापी और जाल लेकर सुबह ही निकलेंगे। आज दोपहर को सत्तू खाएँगे। सतुआनी पर्व है आज। आज रात की बनी हुई चीजें कल खाएँगे कल चूल्हा नहीं जलेगा। बारहों मास चूल्हा जालाने के लिए यह आवश्यक है कि वर्ष के प्रथम दिन में भूमिदाह नहीं किया जाए। इस वर्ष की पकी हुई चीज उस वर्ष में खाएँगे।"[10]

इसके अलावा मेरीगंज क्षेत्र में 'जाट-जट्टिन' का खेल भी एक पर्व की तरह ही मनाया जाता है। खेती के समय जब वर्षा नहीं होती है तो स्त्रियाँ इंद्र देवता को रिझाने के लिए 'जाट-जट्टिन' का खेल खेलती हैं। ताकी इंद भगवान प्रसन्न होकर वर्षा कर दे। "ततमाटोला, पासवानटोला, धानुक, कुर्मीटोला तथा कोयरीटोला की औरतें हर साल ऐसे समय में इंद्र महाराज को रिझाने के लिए बादल को सरसाने के लिए 'जाट-जट्टिन' खेलती हैं।"[11]

इसके अलावा 'मैला आँचल' उपन्यास में रामनगर मेला, रातेहट मेला, लाल बाग मेला आदि का उल्लेख मिलता है। "खलासी जी इस बार लालबाग मेला से उसके लिए असली गिलट का कंगना ले आए हैं। चाँदी की तरह चमक है।"[12]

त्योहार एक ऐसी परंपरा है जिसके माध्यम से सभी एक भावनात्मक सूत्र में बंधते हैं। पर्व-त्योहार, मेला भारतीय जीवन की मूल भावना है। 'मैला आँचल' की तरह 'नोई बोई जाय' उपन्यास में भी असमिया लोक संस्कृति, पर्व-त्योहार का मनोहर चित्र अंकित किया गया है। असमिया समाज में बिहू त्योहार महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिसका विस्तृत उल्लेख उपन्यास में किया गया है। यह उत्सव वर्ष में तीन बार मनाया जाता है। मौसमों का महत्व इन बिहूओं में देखा जा सकता है। बिहू तीन प्रकार के हैं – बहाग बिहू, काति बिहू और माघ बिहू। बहाग बिहू को रंगाली, कांति बिहू को कंगाली और माघ बिहू को भुगाली बिहू के नाम से भी जाना जाता है। "माघ बिहू के पहले दिन को उरुका कहते हैं। नदी किनारे मेजी बनाया गया। सब लोग पहले दिन पदुमनि पोखरा में जाकर मछली पकड़ते गए। सामूहिक भोजन का आयोजन किया गया है। मेजी में सुपारी-पान देकर पारंपरिक रूप से प्रणाम करके आशीर्वाद लिया जाता है। आधी रात्रि को भोजन खा कर वयस्क लोग घर चले गये। जवान लोग सामूहिक रूप से ढोल बजाकर बिहू नृत्य करने लगे। ढोल पेपा-गगना बजाकर आज ही ज्ञात कर दिया गया कि माघ-फागुन और चैत तीनों आनंद का मास है।"[13]

बसंत ऋतु में बहाग बिहू या रंगाली बिहू मनाया जाता है। रंगाली बिहू आनंद और उल्लास का बिहू है। बसंत का समय होने के कारण इस बिहू के समय प्रकृति भी अपना नया रूप धारण करती है। पेड़, लताओं, रंग-बिरंगे फूलों से भरा प्राकृतिक सौंदर्य मनुष्य का मन ओर अधिक प्रफुल्लित कर देता है। इस बिहू का पहला दिन गोरु बिहू के नाम से जाना जाता है। "गोरु बिहू के दिन सबसे पहले गाय-बैलों को हल्दी और उड़द दाल का लेप लगाया जाता है। इसके बाद उन्हें नदी में ले जाकर नहलाया जाता है और उनके दीर्घ आयु और अच्छे स्वास्थ्य के लिए कामना की जाती है। फिर खाने के लिए उन्हें चावल के आटा से बने खाद्य पदार्थ दिया जाता है।"[14]

असमिया ग्रामीण समाज में केवल मनुष्य के लिए ही पर्व-त्योहार नहीं होते हैं बल्कि पशु-पक्षी के लिए भी पर्व होता है। किसान जीवन में बैलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बैल किसानों के सुख-दुःख का साथी है। जिस कारण बैलों की दीर्घ आयु के लिए प्रार्थना करने की परंपरा बहाग बिहू में दिखायी देती है। गोरु बिहू के बाद 'मानूह बिहू' मनाया जाता है। इसी दिन से असमिया समाज में नये वर्ष का आरंभ होता है, और सुबह घर की स्त्रियाँ एक सौ तरह के मिश्रित साँग और सब्जियाँ तैयार करती है। जिसका सेवन करना असमिया समाज में शुभ माना गया है। ग्रामीण व्यक्तियों में यह मान्यता है कि- "बिहू का आगमन लोगों के मन का मैल शत्रुता को धो देता है। नया साल नये आशा-उमंग के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।..... युवक-युवती ग्रामीण जन के घर जाकर 'हुसोरी' गाकर आशीर्वाद देते हैं। साथ ही यह आशा की जाती है कि नये साल में महामारी, सूखे-बाढ़, आंधी तूफान न हो तथा खेत-खलिहान में धान, तलाब में मछली, बगीचा में सुपारी-पान की भरपूर पैदावार हो।"[15] बिहू में ग्रामीण जन कुछ समय के लिए अपना दुःख-दर्द भूलकर आनंद के साथ बिहू मनाते हैं। बहाग बिहू में जवान युवक युवती मिलकर हुसरी गाते हैं। गीत इस प्रकार से है-

"देउतार पदुलित गुधाई माधुरी
केतेकी मेलमलाई औ गोविंदाई राम।
शंकरदेऊ रजारे पुतेक मणिकोंवर
खेलात खति-खने नाई,एबेल दोलाते एबेला घुँराते
एबेला केलि खेलाय।"[16]

नोई बोई उपन्यास में इंद्र देवता को रिझाने के लिए 'भेकूलीर बिया'(मेंढक की शादी) नामक पर्व मनाया जाता है। गर्मी बढ़ने के साथ साथ खेत में पानी की कमी होने के कारण वर्षा होने के लिए इस प्रकार का पर्व मनाया जाता है। इस पर्व में गाने वाले लोक गीतों में –

"मेघे करे एगा-गुमा
भेकूलीरे बिया,
आजि प्रभु रख्या करा
सुरुज मूखे बाका।"[17]

असमिया समाज में मनाने वाले अन्य एक बिहू है काति बिहू या कंगाली बिहू। काति बिहू प्रकाश का उत्सव है। इस बिहू में लक्ष्मी जी को स्वागत करने के लिए दीपक से घर, आँगन और खेत-खलिहान को सजाते हैं। "इस दिन तुलसी का पौधा लगाया जाता है और उसके नीचे दीपक जलाया जाता है। इसके अलावा भंडार, घर, खेत, रसोई घर में दीपक जालाया जाता है और आनेवाले दिनों की मंगल की कामना की जाती है।"[18] असमिया समाज के अधिकांश लोग कृषि पर निर्भर है। 'नोई बोई जाय' में लेखक ने उल्लेख किया है कि – "हमारे गाँव में चार बड़े उत्सव मनाए जाते हैं। वैशाख में हुसोरी सभा, आषाढ़ में लखिमी सभा, अगहन में नखोआ, फाल्गुन में भाउना सभा।"[19]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' उपन्यास में ग्रामीण जनों के जीवन में मेला, पर्व, त्योहार का विशिष्ट स्थान है। 'मैला आँचल' की तरह 'नोई बोई जाय' उपन्यास में पर्व-त्योहार ग्रामीण लोगों के जीवन में संजीवनी का काम करता है। 'मैला आँचल' में जिस प्रकार इंद्र भगवान को प्रसन्न करने के लिए 'जाट-जट्टिन का खेल खेला जाता है उसी प्रकार 'नोई बोई जाय' उपन्यास में 'भेकूलीर बिया'(मेढक की शादी) का आयोजन किया जाता है। दोनों उपन्यासों में दिखाया गया है कि उत्सव जीवन में उमंग लाने का काम करता है। थोड़े समय के लिए दु:ख-दर्द भुलाकर एक साथ मिलकर झूमते हैं। असमिया समाज में जिस प्रकार माघ बिहू में एक साथ सामूहिक रूप से मछली पकड़ने का उल्लेख किया गया है उसी प्रकार 'मैला आँचल' उपन्यास में मेरीगंज क्षेत्र में 'सिरवा पर्व' में अमीर-गरीब का भेद-भाव भूलाकर तालाब में सामूहिक रूप से मछली पकड़ते हैं। ग्रामीण जीवन में सामाजिक भेदभाव मिटाकर सामाजिक बोध पैदा करने में उत्सव और त्योहारों का विशिष्ट स्थान रहता है। त्योहार ग्रामीण समाज में एक विश्वास की परंपरा है, जिसका उल्लेख दोनों उपन्यास में देखने को मिलता है। दोनों उपन्यासों में त्योहारों में गाये जानेवाले गीतों का भरमार है। जो अपनी-अपनी संस्कृति को उजागर करते हैं।

4.क.ii. लोकगीत एवं नृत्य :

मनुष्य सामाजिक-सांस्कृतिक प्राणी है। मानव की प्रकृत संस्कृति उसकी प्रथा-परंपरा, लोकगीत-नृत्य, विश्वास, आस्था, रहन-सहन में निहित होती है। विश्व में जितने मानव समुदाय है सबके अलग-अलग संस्कृति है। मनुष्य को एक-दूसरे के साथ बाँधे रखने में यह संस्कृति अह्म भूमिका निभाती है। किसी भी समुदाय के सांस्कृतिक इतिहास उसके प्रथा, परंपरा, विश्वास, आस्था, रीति-नीति आदि के माध्यम से जाना जा सकता है।

मनुष्य के जीवन में संस्कृति महत्त्वपूर्ण संपदा है, जिसकी झाँकी उनके पर्व-त्योहार, अनुष्ठान, विवाह, धर्मीय अनुष्ठान में दिखाई देती है। भारत एक बहुभाषीय विशाल देश है। जिस कारण यहाँ पर लोकगीतों के भरमार है। ये लोकगीत और लोकनृत्य अपने-अपने क्षेत्र या अंचल को प्रतिनिधि करते हैं। भारतीय लोकगीत एवं लोकनृत्य के साथ आस्था और मान्याताएँ जुड़ी हुई है। लोकगीत एवं लोकनृत्य हमें पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत में मिली है। लोकगीत के साथ सामान्य जन प्रत्यक्ष रूप से जुड़े होते हैं। जिन्हें एक व्यक्ति नहीं पूरा लोक समाज स्वीकारता है। वस्तुतः लोक समाज में प्रचलित जन द्वारा रचित एवं लोक के लिए रचित गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है।

लोकगीत के माध्यम से सुख, दुःख इतिहास से संबंधित घटना, पौराणिक कथा, आस्था, परंपरा को दर्शाया जाता है। लोकगीत मानव जीवन की अनुभूति है जिसके माध्यम से अपने अनुभूति को गीतों के सहारे अभिव्यक्त करते हैं। लोकगीत एवं लोकनृत्य के माध्यम से न केवल व्यक्ति बल्कि समाज भी प्रतिबिंबित होता है। लोकगीतों के साथ सामान्य जन के भावनात्मक आधार जुड़ा रहता है। लोक गीत ही वास्तव में लोक जीवन की भावनाओं को प्रस्तुत करता है। लोकगीत सरलता और स्वभाविकता के कारण सुंदर होता है। साहित्य जैसे समाज का दर्पण है वैसे ही लोकगीत लोकजीवन का दर्पण है। लोकगीत की सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इसके लय में अद्भूत मिठास, संवेदना और मर्म भरा होता है। जिसे सुनने और पढ़ने के पश्चात् व्यक्ति तादात्म्य स्थापन करके आनंद प्राप्त करते हैं। लोकगीत विविध प्रकार के होते हैं - संस्कार गीत, ऋतु गीत, व्यवसाय गीत, पर्व-त्यौहार के गीत, धार्मिक गीत, लीला गीत, लोरी, बाल क्रीड़ा गीत आदि। "लोकगीत मात्र लोक-कंठ की ही पुकार नहीं होते, उनमें जातीय अस्मिता और सामूहिक अवचेतना का सच्चा बिम्ब भी होता है।"[20] लोकगीतों के माध्यम से लोक की भावना व्यक्त होने के साथ उसमें जातीय भावना की भी अभिव्यक्ति होती है। डॉ. गोपाल के शब्दों में – "हर काम के लिए अलग-अलग गीत और नृत्य ही ग्रामीणों के शोषण-जर्जर दुःख पूरित जीवन को संतुलन प्रदान करते हैं। हिंदी उपन्यास में 'रेणु' ने पहली बार इस यथार्थ को प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है।"[21]

फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास के माध्यम से मेरीगंज क्षेत्र में गाये जाने वाले लोकगीतों की पंक्तियों का उपयोग कहीं वातावरण सृष्टि के लिए तो कहीं पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के लिए बड़े सटीक ढंग में किया है। ऐसा करके वे वर्णन में अतिरक्तता करने से बच गए हैं तथा कथारस वृद्धि हुई वह अतिरिक्त। कमला-प्रशांत, फुलिया-सहदेव मिश्र, लक्ष्मी-बालदेव तीनों मैला आँचल, ताजमनी –जित्तन (परती : परिकथा)

की प्रेमकथाओं में इस प्रकार की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।"[22] रेणु के 'मैला आँचल' में विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों का भरमार है। वर्षा ऋतु के समय खेत सूखा पड़ जाता है तो ग्रामीण महिलाएँ इंद्र देव को प्रसन्न करने के लिए 'जट-जट्टिन' का खेल खेलती हैं। जट्- जट्टिन पति-पत्नी है। जट से रूठ कर जट्टिन नैहर चली जाती है। जट्टिन बड़ी सुंदर थी उसकी चर्चा चारों ओर थी। इस संदर्भ में 'मैला आँचल' उपन्यास में यह गीत प्रचलित है-

"सुनरी हमर जटिनियाँ हो बाबूजी,
पातरि बाँस के छौंकिनियाँ हो बाबूजी,
गोरी हमर जटिनियाँ हो बाबूजी,
चाननी रात के इँजोरिया हो बाबूजी !
नान्हीं-नान्हीं देंवता, पातर ठोरवा...
छटके जैसन बिजलिया.....।"[23]

लोकगीत सामान्य जन का गीत है। इन गीतों के माध्यम से अपने जीवन को दर्शाने के साथ-साथ आस पास के परिवेश को भी अभिव्यक्त करता है। उपन्यास में लोकगीतों के माध्यम से मेरीगंज अंचल की लोक संस्कृति को दर्शाया गया है। मेरीगंज अंचल में होली त्योहार बड़े ही हर्षो उल्लास के साथ मनाया जाता है। ग्रामीण जनों के जीवन में यह उत्सव संजीवनी का काम करता है। रंगों के साथ खेलने के अलावा ग्रामीण जन ढोल-ढाक, झाँझ-डम्फ लेकर गीत कर नाचते हैं। होली के समय मेरीगंज में 'जोगीड़ा गीत' बहुत प्रचलित है। इसके कुछ पंक्तियाँ –

जोगीड़ा सर.....र र.....
जोगीड़ा सर.....र र.....
जोगी जी ताल न टूटे
तीन ताल पर ढोलक बाजे।
टाक धिना धिन, धिलक तिलक
जोगी जी।"[24]

केवल इतना ही नहीं होली के गीतों में समकालीन युग-बोध भी झलकती है-

"होली है ! कोई बुरा न मानो होली है !

बरसा में गड्ढे जब जाते है भर बेंग हजारों उसमें करते टर्र

वैसे ही राज आज कांग्रेस का है

लीडर बने हैं सभी कल के गीदड़....।"[25]

होली का पर्व मेरीगंज में बड़े ही आनंद के साथ मनाया जाता है । गरीब जन भी कुछ समय तक अपने दुःख-दर्द भूलाकर आनंद के साथ होली मनाते हैं । 'जोगीड़ा' लोकगीत की तरह 'भड़ैवा' गीत द्वारा तत्कालीन मेरीगंज की सामाजिक स्थिति को दर्शाने की चेष्टा की है। जो निम्नलिखित है-

"अरे हो बुड़बक बभना, अरे हो बुड़बक बभना,

चुम्मा लेवे में जात नहीं रे जाए।

सुपति-मउनियाँ लाए डोमनियाँ,

माँगे पियास से पनियाँ कुआँ के पानी न पाए बेचारी,

दौड़ल कमला के किनरियाँ सोही डोमनिया जब बनली नटनियाँ,

आँखी के मारे पिपनियों दिन भर पूजा पर आसन लगाके पोथी-पुरान बंचनियाँ

रात के तटमाटोली के गलियन में जोतखी जी पतरा गननियाँ भकुआ बभना,

चुम्मा लेवे में जात नहीं रे जाए।"[26]

उपरोक्त पंक्ति के लोकगीत के माध्यम से दिखाया गया है कि उच्च वर्ग के पुरुष ब्राह्मण दिन में तो मंत्र पाठ करते हैं और रात में निम्न वर्ग की स्त्री के साथ यौन संबंध स्थापन करते हैं । 'भउजिया का गीत' मिथिला अंचल की प्रचलित लोक गीत है । फणीश्वरनाथ रेणु ने सड़क पर जा रहे गाड़ीवानों के माध्यम से उपन्यास में भउजिया गीत को व्यक्त किया है –

"चढली जवानी मोरा अंग अंग फड़के से

कब होइ रे गवना हमार रे भउजिया।"[27]

लोकगीत एवं लोकनृत्य लोक जीवन का प्रमुख अंग है। लोक जीवन के इन प्रमुख अंग को फणीश्वरनाथ रेणु 'मैला आँचल' उपन्यास में बड़े सजीव रूप से चित्रण किया है। लोक गीत के माध्यम से किसी भी अंचल को बड़े

सुंदर रूप से चित्रित किया जा सकता है। उपन्यास में तंत्रिमाटोली में सुरंग सदाब्रिज की कथा को इस प्रकार लोकगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

"...सासू मोरा मरे हो, मरे मोरा बहिनी से
मरे ननद जेठ मोर जी
मरे हमर सबकुछ पलिबरवा से
फसी गइली परेम के डोर जी...।"[28]

इतना ही नहीं 'मैला आँचल' के माध्यम से बारहमासा लोकगीत को भी दर्शाया है। उपन्यास में सोनाये यादव अपनी झोपड़ी से बारहमासा गीत इस प्रकार गाता है-

"एहि प्रीति कारन सेत बाँधल,
सिया उदेस सिरी राम हे।
सावन हे सखी, सबद सुहावन
रिमिझिमि बरसत मेघ हे।"[29]

इसके पश्चात् सोनाय ने झूमर बारहमासा शुरू किया –

"अरे फागुन मास रे गवना मोरा होइल
कि पहिरू बसंती रंग हे,
बाट चलैत-आ के शिया सँभारि बांहू,
अंचरा हे पवन झेरे हे ए ए ए।"[30]

'मैला आँचल' उपन्यास में लोकगीतों के माध्यम से सामान्य जन के जीवन को दर्शाने के साथ ही स्वतंत्रता प्राप्ति के समय गाये जाने वाले लोकगीत भी देखने को मिलता है-

"कहीं पे छापो गंधी महतमा
चर्खा मस्त चलाते हैं
कहीं पे छापो वीर जमाहिर
जेल के भीतर जाते हैं।
बाँका लहरदार रे रँगरेजबा।"[31]

लोकगीतों के माध्यम से रेणु ने मिथिला अंचल को दर्शाया है। जब डॉ. प्रशांत कमला को देखने आते हैं तो उस वक्त रेडियो में सविता देवी द्वारा गाया हुआ गीत प्रस्तुत होता है, जो इस प्रकार है-

"माइगे, हम न बियाहेब अपना गौरा के
जौ बुढ़वा होइल जमाय गए माई।"[32]

'मैला आँचल' उपन्यास में न केवल लोकगीतों का उल्लेख हुआ है बल्कि लोकनृत्य का भी रेणु ने मनोरम रूप से चित्रित किया है। "भारतीय कृषक-समाज में लोक-नृत्यों की परंपरा वर्षों के बाद भी बनी हुई है। गाँव विशेष में खास त्योहारों पर नृत्य होते हैं। गाँव में ये वहाँ की सामाजिक एवं सामूहिकता की भावना को और भी बलवती बनाने की भूमिका निभाते हैं। गाँव में नृत्य हर्ष एवं विषाद दोनों अवसरों पर होते हैं।"[33]

'मैला आँचल' में विदापत नाच का उल्लेख इस प्रकार किया है- "कल खम्हार खुलेगा, पिछले साल तो खम्हार खुलने के दिन जालिम सिंह का नाच हुआ था। जालिम सिंह सिपैहिया ने एक डोमिन से शादी कर दी थी। लेकिन इस बार कीर्तन होने चाहिए। सुराजी कीर्तन बेतार कहता है- इस बार बिदापत नाच होगा।"[34] विदापत नाँच मिथिली ग्राम-संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। ग्रामीण किसान जब फुरसत पाते हैं तो विदापत नाच से मनोरंजन करते हैं। यह ग्रामीण जन के जीवन में बहुत महत्त्व रखता है।

'मैला आँचल' में डॉ.प्रशांत विदापत नाच के बारे में सोचता है - "विद्यापति की चर्चा होते ही कविवर 'दिनकर' का एक प्रश्न बरबस सामने आकर खड़ा हो जाता था – "विद्यापति कवि के गान कहाँ ? बहुत दिनों बाद मन में उलझे हुए उस प्रश्न का जवाब दिया – जिंदगी भर बेगारी खटनेवाले, अनपढ़, गवार और अर्धनग्नों में कवि! तुम्हारे विद्यापति के गान हमारी टूटी झोंपड़िया में जिंदगी के मधुरस बरसा रहे हैं। अरे कवि ! तुम्हारी कविता ने मचलकर एक दिन कहा था – चलो कवि, बनफुलों की ओर।"[35]

'मैला आँचल' उपन्यास में मेरीगंज गाँव में होने वाले नृत्यों का सजीव चित्रण प्रस्तुत हुआ है। उपन्यास में शामियाना तान दिया जाता है –

"धिनागि धिन्न, तिरनागि तिला
धिनक धिनता तिटकत ग-ड-ध।
आहे चलहु सखि सुखधाम, चलहू
आहे कन्हैया जहाँ सुखधाम, चलहू

राम रचाओ हे ! चलहू हे चलहू

धिन्ना तिन्ना ना धि धिन्ना ।"[36]

इसी प्रकार असमिया उपन्यास 'नोई बोई जाय' में भी लोकगीत और लोकनृत्य का भरमार है । असमिया समाज में बिहू बड़े धूमधाम से मानाया जाता है । बिहू तीन प्रकार के होते हैं – बहाग बिहू, कार्तिक बिहू और माघ बिहू । बिहू असम का गौरव है । बहाग बिहू बड़े धूमधाम से मानाया जाता है । विषुव संक्रांति के समय बहाग बिहू भव्यता से मनाया जाता है । असमिया वर्ष के आरंभ अर्थात् वर्ष के प्रथम महीने बैशाख में बहाग बिहू का आयोजन किया जाता है । बसंत ऋतु के कारण इस उत्सव में प्रकृति अपने नये रूप में आती है । बहाग बिहू के आगमन का संकेत बिहू पक्षी कूली, केतेकी को माना जाता है । बहाग बिहू सात दिनों तक अलग-अलग रीति रिवाजों के साथ मनाया जाता है । असम के कुछ प्रांतों में बहाग बिहू एक महीने तक मनाया जाता है । बिहू के प्रथम दिन को गरु बिहू कहा जाता है । बैलों को इस दिन नदी में नहाने के लिए ले जाया जाता है । कलई दाल और कच्ची हल्दी का लेप लगाकर सालभर की कुशलता के लिए प्रार्थना करते हैं, उसके पश्चात् 'मानूह बिहू' अर्थात् आदमी का बिहू मनाया जाता है । मानूह बिहू में लोग दल बनाकर ग्रामीण जनों के घर नृत्य-गीत करने जाते हैं जिसे 'हुसोरी' कहा जाता है । हुसोरी गानेवाले दल गृहस्थ को आशीर्वाद देकर घर की मंगल कामना करते हैं । गृहस्थ प्रत्येक हुसोरी दल को सुपारी-पान और कुछ रुपये देकर सम्मान भाव प्रदर्शन करता है । उपन्यास में हुसोरी दल द्वारा गाये जाने वाले लोकगीतों का भरमार है –

"देऊतार पदूलित गुंधाई से माधुरी

केतेकी मेलमलाई औ गोविन्दाई राम ।"[37]

हुसोरी समाप्त होने के पश्चात् बिहू नाम गाते हैं । जैसे-

"एटा बाटित नहरू एटा बाटित पनरू

एटा बाटित खूतरा शाक,

मुरर चुलि सिगी आशीर्वाद करिसों

गृहस्थ कुशले थाक ।"[38]

इसके पश्चात् नाहर गीत का आरंभ किया जाता है –

"आईनो आई बुलि नाहरे मातिले

बूढीमाकर मुखलोई साईं,

बूढीमा के बुलिले नाहर

सेनामुवा सरुतु पंईता नाई ।”[39]

बहाग बिहू आनंद और उल्लास का बिहू है । बूढ़े भी इस आनंद में गीत गाने और नाचने के लिए खुद को नहीं रोक सकते हैं बहाग बिहू में युवक-युवतियाँ आनंद से झूम उठते हैं और ढोलक के आवाज सुनते ही शरीर अपने आप नाच उठता है –

“चते गई गई बहागे पालेहि

फुलिले भेबलि लता ;

कोईनो के थाकिले उरके नपरे

बंगाली बिहूरे कथा ।”[40]

चैत्र का महीना जैसे ही आता है युवक-युवतियाँ अपने अपने में मग्न हो जाते हैं । मन की बात अपने प्रियतम को गीतों के माध्यम से सुनाते थे –

“बरधरर मूधते भँरालर टूपते

सराई फुटकल खाय;

मूर जानु मनते परे घने घने

तूर जानु मनते नाई ।”[41]

भगीरथ फुकन अपनी प्रेमिका सुवागी से अब तक बात नहीं कह पाये हैं परंतु गीतों के माध्यम से सुवागी के प्रति अपना प्रेम-समर्पण आदि को दर्शाते हैं । भगीरथ फुकन जब भी सुवागी को नदी किनारे देखते हैं व्याकुल होकर अपनी मन की भावना गीतों के माध्यम से बोल देते थे –

“चुलिये आऊली चुलिये वाऊली

चुलि पारि थांकू खुई ।

तामोल हुआ हले फालि जेन देखू वाम

खरीरत एकुरा जुई ।”[42]

किसी भी समाज विशेष की संस्कृति में जन्म, मृत्यु, विवाह आदि से संबंधित अनुष्ठानों को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। असमिया समाज में इसकी प्रचुरता की कमी नहीं है। भगीरथ फुकन के बेटे सोन के शादी में जब उसे दुल्हे के पोषाक पहनाकर तैयार करते समय गाँव के बूढी महिलायें इस प्रकार गीत गाती हैं –

"जुकारि पिंधिले पाटरे सुरिया
माके आसिल साई,
एईनु ठाने-गढ़े मूर बूपाई बरने
असमर देशते नाई।
हातीके सजाले हातिशाल बरुवाई
घुँराके सजाले हाँही
रामचंद्रक सजाले लगर समनियाई
मूहरी सुणके सालि।"[43]

जब बारात लड़की के घर पहुँच जाती है तो बारात के युवकों को लड़की के घर की युवतियाँ इस प्रकार गाने के माध्यम से छेड़ती है –

"ओ' पका भेकूली
दराघरीया मानुहबूर
जेन बूंदा मेकुरी
बारीरे ढायरे केसा तामोल थुकि
खसराई पारिब पारुं।"[44]

असमिया समाज में विवाह एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है। पुरुष जिस प्रकार विवाह के कार्यों में भाग-दौड़ करता है महिलायें भी सक्रिय रूप से कार्य करती है। असमिया समाज में विवाह सात दिन का होता है। पारंपरिक रीति-रिवाज के साथ यह सात दिन का विवाह संपन्न होता है। दुल्हे को नहाने के लिए नदी से कलश में पानी लाया जाता है। गाँवों की महिलायें और दुल्हे की माँ जब पानी लेने के लिए नदी जाती है तो इस प्रकार गीत गाते हैं-

"पानी तुलिबलों

उलाई दोयकी

रुपते धूपे लगाई

आगे पासे भरि

गायन-वायन करि

दुलायाई दूल बजाई ।"[45]

विवाह, उत्सव-त्योहार के अलावा भी दैनंदिन जीवन में कुछ विशेष प्रकार के गीत का महत्त्व असमिया समाज में प्रचलित है। लोरी गीतों का महत्त्व असमिया समाज में अत्यंत है। माँ या दादी अपने बच्चों को जल्दी सूलाने के लिए या उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए, या रोना बंद कराने के लिए लोरी गा कर सुनाती है। गाँव- से लेकर देश-विदेश तक में किसी न किसी रूप में लोरी की परंपरा रही है। भाषा, शब्द और उनका अर्थ भले ही भिन्न हो परंतु माँ के दिल से निकले भाव सभी में एक समान है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में भगीरथ फुकन की माँ अपने पोती को सुलाने के लिए इस प्रकार लोरी गाती है-

"मूर बूपाई सरो बाखे बरे गरु

एसारि हेरुबाई कांदे,

एसारि हेरुबाई घरलोई रिगियाई

दियकहि एसारि सरु;

लूकर धाने खाव कुवाई किलाब

लरुवाई आनिव गरु ।"[46]

इसी प्रकार रात को चाँद देखकर दादी अपने पोतों को गोदी में लेकर इस प्रकार लोरी गाती है –

"जुनवाई ए, एटि तरा दिया

एटि तरा नालागे दूटि तरा दिया

पात नाई सूत नाई

किहतको दिम ।"[47]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास में लोक गीतों की भरमार है। 'मैला आँचल' उपन्यास में होली के अवसर पर आपसी भेद-भाव को

त्यागकर लोग आनंद के साथ नाच-गान करते हैं। होली के गीतों के माध्यम से ग्रामीण जनों में उत्सव का माहौल पैदा होता है। गरीब ग्रामीण जन भी कुछ समय के लिए इस माहौल में अपने दुःख दर्द भूलकर आनंद मनाते हैं। दूसरी ओर 'नोई बोई जाय' उपन्यास में असमिया समाज में मनाने वाले बिहू का विस्तृत उल्लेख किया गया है। रचनाकार बिहू में गाने वाले लोकगीत एवं लोकनृत्य के माध्यम से असमिया संस्कृति की झलक प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ ही विवाह में गाने वाले पारंपरिक गीतों के साथ लोरी गीतों का भी उल्लेख मिलता है। बिहू में जिस प्रकार लोकनृत्य का उल्लेख 'नोई बोई जाय' उपन्यास में किया गया है उसी प्रकार 'मैला आँचल' में विदापत नाच का उल्लेख किया गया है। यौवन के गीतों का उल्लेख भी दोनों उपन्यासों में हुआ है।

4.क.iii. लोक उपकरण और खान-पान :

मनुष्य की संस्कृति की झलक लोक उपकरण और खान-पान के माध्यम से भी होती है। लोक उपकरण और खान-पान सांस्कृतिक मूल्यों का वाहक है। संस्कृति जीवन की विभिन्न अंग के साथ जुड़ा हुआ है। जन्म के साथ मनुष्य लोक से जुड़ा होता है और संस्कृति लोक से ही ग्रहण करता है। मनुष्य की संस्कृति का विकास लोक पर निर्भर करता है। मनुष्य की संस्कृति बहुत से तत्व को लेकर निर्मित होता है उन्हीं में लोक उपकरण और खान-पान अंन्यतम तत्व है। ग्रामीण परिवेश में अपने संस्कृति के साथ जुड़े लोक उपकरण और खान-पान का अलग ही महत्त्व रहता है। क्षेत्र विशेष अपने-अपने लोकउपकरण और खान-पान में विविधता पायी जाती है जिसे कारण उस प्रांत या क्षेत्र को अन्य से पृथक माना जाता। यह उस प्रांत की संस्कृति है जो उसकी पहचान है। 'मैला आँचल' उपन्यास बिहार के मेरीगंज प्रांत को लेकर और 'नोई बोई जाय' असम के सेंदुरीपाम गाँव को लेकर लिखा गया है। दोनों प्रांत एक दूसरे से अलग है परंतु उपन्यासों में उल्लेखित लोक उपकरण और खान-पान दोनों संस्कृति के विविधता को प्रस्तुत करता है।

'मैला आँचल' की तुलना में 'नोई बोई जाय' उपन्यास में लोक उपकरण के प्रयोग को अधिक दर्शाया गया है। 'मैला आँचल' उपन्यास में जगह-जगह चूल्हे का वर्णन मिलता है। चूल्हे का प्रयोग विशेष रूप से खाना-पकाने के लिए किया जाता है। सिरवा पर्व बड़े ही उल्लास के साथ मेरीगंज में मनाया जाता है। लोग सामूहिक रूप से मछली पकड़ते हैं। मछली पकड़ते समय व्यवहार किए जाने वाले लोक उपकरण का उल्लेख उपन्यास में किया गया। "आज चैत्र संक्रांति है, कल पहला वैशाख, साल का पहला दिन। कल सभी गाँव के लोग सामूहिक रूप से मछली का शिकार करेंगे। छोटे-बड़े अमीर-गरीब सभी टापी और जाल लेकर सुबह ही निकलेंगे।"[48] इसके साथ

ही खेती करने के लिए उपयोग किए जाने वाले लोक उपकरणों का भी उल्लेख किया गया है। "मालिक लोगों से कहिए हल-फाल, कोड़े-कमान बंद रखें।"[49] दूसरी ओर 'नोई बोई जाय' उपन्यास में लोक उपकरण का प्रयोग अधिक दिखाई देती है। असमिया समाज में ढेकी एक विशेष उपकरण है। इससे धान कूटने का काम किया जाता है। इसके अलावा धान से आटा भी निकालने के लिए बिहू के समय ढेकी का प्रयोग किया जाता है। "पौष महीने के अंतिम दिनों में हर घर से ढेकी के खट्-खट् शब्द सुनाई देती है। चारो ओर वातावरण में पकवानों के गंध फैलती है।"[50] असमिया समाज में सामूहिक रूप से भोज का आयोजन किया जाता है। भोज के पहले दिन सामूहिक रूप से मछली पकड़ते हैं। मछली पकड़ने के लिए जो लोक उपकरण का प्रयोग किया जाता है जिसका उल्लेख 'नोई बोई जाय' उपन्यास में किया गया है।'भोज के पहले दिन पदूमनि तालाब में मछली पकड़ने जाता है। सात गाँवों के लोग इकट्ठा हुए हैं। जाकोई, जुलूकी, पल लेकर मछली पकड़ने आये हैं।"[51]

असमिया ग्रामीण समाज में 'ताँतखाल' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह वह लोक उपकरण है जिसके माध्यम से असमिया घरों में व्यवहार करनेवाले परिधानों को तैयार किया जाता है। असम में तैयार होनेवाले यह पौषाक विश्वभर में प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि ताँतखाल में बैठकर खिपिनि कपड़ों में सपने बुनती है जो अत्यंत मनोमोहक और मनोरम होता है। "जितना जल्दी माको चला सकते है उतना ही जल्द ताँत से कपड़ा बनकर तैयार होती है।"[52] असमिया समाज में ढोल महत्त्वपूर्ण लोक उपकरण है, ढोल को गर्दन में लटका कर एक छड़ी और हथेली के माध्यम से बजाते हैं। बिहू, विवाह, उत्सव आदि में बिहू नृत्य करते समय ढोल को बजाकर गाना गाते हैं। असमिया समाज के इस महत्त्वपूर्ण लोक उपकरण का उल्लेख 'नोई बोई जाय' उपन्यास में किया गया है। 'शरीर नाँचने लगता है। ढोल बजने के साथ-साथ शरीर में नाँच उठना स्वाभाविक है।"[53]

इसी प्रकार दोनों उपन्यासों में आँचलिक खान-पान का उल्लेख मिलता है। खान-पान से भी किसी समाज का लोक जीवन, संस्कृति और परंपरा का पता चलता है। इसके साथ लोगों की वैभवता एवं निर्धनता का भी पता चलता है। हर क्षेत्र के खान-पान को देखा जाए तो प्रत्येक क्षेत्र में विविधता देखी जाती है। बिहार के पूर्णिया जिले के अंतगर्त मेरीगंज पर आधारित उपन्यास 'मैला आँचल' और असम राज्य के अंतर्गत सेंदुरीपाम गाँव पर आधारित उपन्यास 'नोई बोई जाय' में खान-पान के भिन्नता को दर्शाया गया है।

'मैला आँचल' उपन्यास में दिखाया गया है कि विभिन्न अवसरों पर पुरी-जिलेबी दही-चुड़ा खिलाया जाता था। "तहसीलदार ने अपने के श्राद्ध में जाति-बिरादरीवालों को भात और गैर जाति के लोगों को दही-चुड़ा

खिलाया था ।"[54] इतना ही नहीं होली के समय आनंद के साथ-साथ घर में विविध पकवान बनाते हैं । अपनी निर्धनता को भूलकर यह दिन आनंद से मनाते हैं । "चावल का आटा, गुड़ और तेल ! पूआ-पकवान के इस छोटे से आयोजन के लिए मालिकों के दरवाजें पर पाँच दिन पहले से ही भीड़ लग जाती है ।"[55] गाँव के लोगों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है । वे चाहकर भी अच्छा खा नहीं सकते जिसका उल्लेख 'मैला आँचल' में किया गया है । व्यक्ति के खान-पान में आर्थिक स्थिति का प्रभाव रहता है । 'सात महीने के बच्चे को बथुआ और पाट के साग पर पलते देखा है ।"[56]

मेरीगंज में सत्तू प्रिय खाद्य सामग्री है । इसको लोग प्रायः खाते हैं परंतु सतुआनी पर्व में सत्तू का महत्त्व और बढ़ जाता है । "आज दोपहर को सत्तू खाएँगे । सतुआनी पर्व है आज । आज रात बनी हुई चीजें कल खाएँगे ।"[57] मेरीगंज क्षेत्र के खान-पान का जिक्र उपन्यास में इस प्रकार से हुआ है- "बैशाख और जेठ महीने में शाम को तड़बन्न में जिंदगी का आनंद सिर्फ तीन आने लबनी बिकता है । चने की घुघनी, मुड़ी और प्याज और सुफेद झाग से भरी लबनी....खट्-मिट्ठी, शंकर-चिनियाँ और बैर-चिनियाँ ताड़ी के स्वाद अलग-अलग होते हैं । बसंती पीकर बिरले पियक्कड़ ही होश दुरुस्त रख सकते हैं ।"[58]

मैला आँचल की तरह असमिया उपन्यास 'नोई बोई जाय' में असमिया समाज में प्रचलित खाद्य सामग्री का विस्तृत वर्णन मिलता है । "न-खोआ उत्सव में गाँव के सभी लोग मिलकर भोज का आयोजन करते हैं । विविध पकवानों से थाली को सजाया जाता है । मछली, माँस, हरा सब्जी जिसको जो मन करता है उसे बनाकर मिलजूल कर खाते हैं ।"[59] असमिया समाज में सुपारी-पान का बहुत महत्त्व है । घर आये अतिथि को सम्मान देना हो या मंगलमय काम करना हो तो सुपारी-पान का प्रयोग सबसे पहले किया जाता है । बिहू उत्सव में ग्रामीण लोग अपने घर में अनेक पकवान बनाते हैं । जिसका विस्तृत वर्णन उपन्यास में किया गया है । "नारियल, तिल, चावल से तैयार किए गये भूरूकीया पिठा, खामूसीया पिठा, उखूबा पिठा, भात पिठा का स्वाद ही अलग है ।"[60] इसके अलावा कोमल चावल का जलपान असमिया समाज में विशेष प्रसिद्ध है । बहाग बिहू के दिन माँ साँग बगान में जा कर एक सौ प्रकार के साँग ढूंढने में लग गयी ।"[61] यह असमिया समाज में बरसों से चली आयी परंपरा है कि बहाग बिहू के दिन एक सौ प्रकार के सागों को एक साथ मिलाकर विशेष प्रकार के व्यंजन तैयार करते हैं ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दोनों उपन्यासों में लोक उपकरण और खान-पान का विस्तृत वर्णन है । दोनों ग्रामीण अंचल के उपन्यास है । यह स्वाभाविक है कि दोनों में खेती के लोक उपकरण मौजूद है । इसके

अलावा असमिया समाज में प्रयोग करने वाला ताँतखाल जो उस क्षेत्र का प्रमुख लोक उपकरण है जिसका विस्तृत वर्णन 'नोई बोई जाय' उपन्यास में मिलता है। खान-पान के क्षेत्र में देखा जाए तो 'मैला आँचल' की तुलना में 'नोई बोई जाय' उपन्यास में मांसाहारी को अधिक महत्त्व दिया गया है। इतना ही नहीं खान-पान का संबंध मनुष्य की आर्थिक स्थिति पर बहुत हद तक निर्भर करता है, इस बात की पुष्टि 'मैला आँचल' उपन्यास में मिलती है।

6.क.iv. रीति-रिवाज :

भारतीय संस्कृति में अनादिकाल से रीति-रिवाज तथा परंपराओं का विशेष महत्त्व है। रीति-रिवाज सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी समाज में चली आ रही है। रीति-रिवाज का संबंध मनुष्य के जीवन के साथ बहुत ही गहरा है। भारतीय संस्कृति और रीति-रिवाजों से प्रभावित होकर विदेशी भी मन की शांति के लिए यहाँ आते हैं। भारतीय संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज को जिंदा रखने का कार्य गाँव करता है। ग्रामीण समाज अपने विशिष्ट रीति-रिवाज, परंपरा तथा आचार-विचार के कारण ही नगरीय संस्कृति से अलग प्रतीत होती है। यह ग्रामीण समाज की नींव है। ग्रामीण संस्कृति तथा लोगों को व्यक्तित्व प्रदान करने में रीति-रिवाज अह्म भूमिका निभाती है।

'मैला आँचल' उपन्यास में कई प्रकार के रीति-रिवाजों का उल्लेख मिलता है। अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के रिवाज से पूरे मेरीगंज क्षेत्र विद्यामान है। 'ऊँच-नीच का भेद-भाव ने पूरे मेरीगंज क्षेत्र को जकड़ के रखा है "इसी समय लक्ष्मी दासिन ने आकर खबर दी, 'सिपैहिया टोला के लोग भी नहीं खाएँगे। हिबरनसिंघ का बेटा आकर कह गया है, ग्वाला लोगों के साथ एक पत्तल में नहीं खाएँगे। हम लोगों के गाँव का आटा-घी चीनी अलग दे दिया जाए, हम लोग अलग बनवा लेंगे।"[62] मेरीगंज के लोग रिवाज को जात के साथ जोड़ते हैं। यह रिवाज बन गया है कि अपने से छोटे जात के साथ सांग बैठकर खाना नहीं खा सकते।

मेरीगंज में सतुआनी पर्व रीति-रिवाज के साथ मनाया जाता है। जिसका उल्लेख रेणु ने मैला आँचल उपन्यास में किया है। "सतुआनी पर्व है आज। आज रात की बनी हुई चीजें कल खाएँगे। कल चूल्हा नहीं जलेगा। बारहों मास चूल्हा जलाने के लिए यह आवश्यक है कि वर्ष के प्रथम दिन में भूमिदाह नहीं किया जाए। इस वर्ष की पकी हुई चीज उस वर्ष में खाएँगे।"[63] मेरीगंज गाँव में हर साल खेती के समय इंद्र महाराज को रिझाने के लिए, बादल को सरसाने के लिए 'जाट-जट्टिन' खेलते हैं यह रिवाज गाँव की औरतों के साथ मिलकर संपन्न करते हैं। गाँव में जितनी भी टोलियाँ है उनके सभी स्त्री इसमें भाग लेती है और गीत गाती हैं –

"सुनरी हमर जटिनियाँ हो बाबूजी,

पातरि बाँस के छौंकिनियाँ हो बाबूजी,

गोरी हमर जटिनियाँ हो बाबूजी,

चाननी रात के इँजोरिया हो बाबूजी,

नान्हीं-नान्हीं देवता, पातर ठोरवा

छटके जैसन बिजलिया.....।"[64]

'मैला आँचल' उपन्यास में धार्मिक रीति-रिवाजों का भरमार है। मेरीगंज अंचल में धर्म का प्रधान केन्द्र है मठ। प्रत्येक दिन मठ में धार्मिक रीति-रिवाज के साथ सत्संग होता है। 'रोज इसी बेला सत्संग होता है। प्रातकी सुनते ही मठ के अन्य साधु-सन्यासी, अतिथि-अभ्यागत तथा अधिकारी-भंडारी वगैरह जग जाते हैं। प्रातकी और बीजक में कोई सम्मिलित हो या नहीं सत्संग में भाग लेना अनिवार्य है।"[65] जब कमला का पुत्र हुआ था तो उसकी लंबी आयु के लिए रीति-रिवाज के साथ पूजा-पाठ कराया था। "सौर-गृह में, बारह दिन के शिशु की लंबी उम्र, सुंदर स्वास्थ्य, विद्याबुद्धि और धन-संपत्ति के लिए मंगलगीत गाए जा रहे हैं।"[66] मेरीगंज गाँव में जब बच्चा पैदा होता है तो स्त्रियाँ ढोलक बचाकर सोहर गीत गाती है। यह सदियों से चली आ रही रिवाज है, कमला ने जब बच्चे को जन्म दिया तो सोहर गीत बड़े उल्लास के साथ गाया गया।

असमिया उपन्यास 'नोई बोई जाय' में रीति-रिवाज का भरमार है। रीति-रिवाज के माध्यम से अपनी प्राचीन परंपरा-संस्कृति को दर्शाता है। बहुत से रीति-रिवाज दैनिक जीवन के साथ जुड़े है तो कुछ धार्मिक जीवन के साथ। अंचल विशेष को एक दूसरे से अलग या पृथक दिखाने के लिए रीति-रिवाज महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। असमिया समाज में विवाह महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है। रीति-रिवाजों के साथ दुलहन को ले आते हैं। भगीरथ फूकन का बड़े बेटे का विवाह सात दिनों तक चला था। सात दिन के विवाह में प्रत्येक दिन सुबह-शाम नदी से पानी ला कर दूल्हे को स्नान कराते थे। गाँव स्त्रियाँ उल्लास के साथ गीत गाती है जिसे 'नाम' कहा जाता है-

"उलाई आहाँ शाशी प्रभा

राज्यर महादई

खूभक्षणें यात्रा करि

पानी तूलाँगई

काखे घंटा लूवा राधा,

मूरे लूवा माला

यमुनालोईं जाव लागे

नकरिवा हेला ।"[67]

असमिया समाज में व्यक्ति के मृत्यु के पश्चात् भोज आयोजन करने का नियम है । जब भगीरथ फूकन के दादा गुजर गए थे तब बड़ाभोज का आयोजन किया गया था । बड़ा भोज को बरसभा कहते हैं । जब परिवार के सौ पुरुष मर जाते हैं तो बरसभा का आयोजन किया जाता है । बरसभा बड़े ही सुंदर ढंग से रीति-रिवाज के साथ आयोजन किया जाता है । एक सौ एक दीया जलाकर नियम के साथ नाम-कीर्तन किया जाता है । "चैत माह में पूर्णिमा के दिन सात नामघर के पूजारियों, संगे-संबंधी, आत्मीय-कुटुम् के साथ मिलकर गायन-बाजन के साथ बरसभा का आयोजन किया गया ।"[68] बरसभा में सबसे पहले बत्ती जलाकर नाम गाते हैं –

"हरि भक्ति आहि घृत होईल भोईला

गुरु कृपात आगनि ज्वले

देहा हेल गसा सिते हेल शला

वृद्धिये साकिखन भोईला ।"[69]

ज्येष्ठ महीना में हर साल नामघर (मंदिर) में बरसभा का आयोजन किया जाता है । यह असमिया समाज में सदियों से चला आ रहा है । बरसभा में गाँव के सभी लोग भाग लेते हैं । नामघर में कीर्तन करते हैं । आस-पास के सात गाँवों के पूजारियों को बरसभा में निमंत्रण किया जाता है । बरसभा का आयोजन असमिया रीति-रिवाजों के साथ किया जाता है । दिन में प्रसाद के साथ जलपान ग्रहण करते हैं और रात को सामूहिक तौर पर भोज का आयोजन किया जाता है । परम् सत्ता के आगे अपने द्वारा किए गए अपराध की क्षमा इस प्रकार कीर्तन के माध्यम से वहाँ इकट्ठे लोग माँगते हैं –

"अपराध विनाशन तजू नाम नारायण,

जानि नामे पशिलो शरणे,

अपराध क्षमा करि तुमि दयाशील हरि

मोक रक्षा करियो चरणे ।"[70]

असमिया समाज कृषि पर निर्भर है एवं उनके समाज में कृषि के साथ जुड़े रीति-रिवाज है । कृषि के लिए वर्षा अत्यंत आवश्यक है । जब भी समय पर वर्षा नहीं होती है या सुखा पड़ जाता है तो ग्रामीण जन इंद्र देव को प्रसन्न करने के लिए 'मेढ़क की शादी' का आयोजन करते हैं । यह रिवाज असमिया समाज में सदियों से चली आ रही है । इस रिवाज के अनुसार मनुष्य की तरह मेढ़क की शादी की जाती है । इस विवाह में इंद्र देव और मेढ़क को आधार बनाकर लोक गीत गाया जातो है-

"भेकुलीर वियालोई आहे इन्द्र्देवे
वताह वरषूणत तिति
स्वर्ग अपेसरी नामि आहिसे
भेकुलीर विया सूनि
भेकुलीर मुररे जलंगा पागूरि
भेकुलीर हातरे खारु
भेकुलीर विसारि इंद्र आहिले
देखूवाई निदिवा केवे ।"[71]

असमिया समाज में रीति-रिवाजों की भरमार है । यह मनुष्य के जीवन के निकट है । रीति-रिवाजों से ही मनुष्य का जीवन संपूर्ण होता है । भगीरथ फूकन की पत्नी जब गर्भवती रहती है तो पांचवे महीने में अपने माँ के घर 'पंचामृत' खाने जाती है । पंचामृत के समय गर्भवती महिला को उसके मन पसंद खाना खिलाने के साथ ही वस्त्र देते हैं । "नये वस्त्र पहनकर पंचामृत खाया जाता है ।"[72]

'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यासों के माध्यम से दोनों क्षेत्र में प्रचलित रीति-रिवाज को विस्तृत ढंग से दिखाया गया है । ग्रामीण समाज में रीति-रिवाजों का विशेष महत्त्व है । यह उनके जीवन के साथ जुड़ा हुआ है । ग्रामीण समाज में रीति-रिवाज संबंधी अनेक छोटी-बड़ी बात प्रचलित है । अलग-अलग क्षेत्र होने के नाते दोनों संस्कृति के रीति रिवाजों में समानता और असमानता देखी जा सकती है । इंद्र देव को प्रसन्न करने के लिए जहाँ 'मैला आँचल' में 'जाट-जट्टिन का खेल खेला जाता है वहीं दूसरी ओर 'नोई बोई जय' उपन्यास में मेढ़क की शादी का आयोजन किया जाता है । जन्म, मृत्यु, विवाह आदि से संबंधित रीति-रिवाज

दोनों उपन्यासों में दिखाई देता है। जहाँ धार्मिक अनुष्ठान के लिए 'मैला आँचल' में मठ है उसी प्रकार 'नोई बोई जाय' उपन्यास में नामघर(मंदिर) है।

4.ख. धार्मिक जीवन :

धर्म एक शक्ति और विश्वास है। जीवन के हर क्षेत्र में मनुष्य इसको उच्च स्थान देता है। एक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक धर्म के दायरे में बंधा रहता है। इससे हट कर कोई कार्य करना संभव नहीं है। धर्म के संबंध में डॉ. राधाकृष्ण ने अपना मत इस प्रकार दिया है – "धर्म वह अनुशासन है जो अंतरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई से संघर्ष करने में सहायता देता है। काम क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है। संसार को बचाने का महान कार्य के लिए साहस प्रदान करता है।"[73]

भारतीय ग्रामीण अंचलों में धार्मिक तत्व के प्रति अटूट आस्था विद्यामान है। मालिननोवस्की के अनुसार – "धर्म के अंतर्गत व्यवहार के वे सभी प्रतिभा आ जाते हैं जिनमें मनुष्य दैनिक जीवन की अनिश्चिताओं को न्यूनतम करने का एवं भविष्यवाणी न किए जा सकने वाले संकटों की क्षतिपूर्ति का प्रयत्न करते हैं।"[74] ग्रामीण समाज में मनुष्य के जीवन के हर क्षेत्र धर्म पर निर्भर है। उनका संपूर्ण जीवन धार्मिक विचारों से परिचालित होता है। ग्रामीण समाज में पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि पर अटूट आस्था है। सभी कार्य धार्मिक मान्यताओं के आधार पर होता है। इसी कारण देवी-देवताओं, भूत-प्रेत, जादू-टोना, अंधविश्वास, भाग्य, न्याय-अन्याय आदि पर विश्वास है। इन्हीं बिंदुओं को उपन्यासकार ने उपन्यास में सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया है। डॉ. राजकुमारी सिंह के शब्दों में – "भारतीय ग्रामीण अंचलों में अनेक प्राचीन आस्थाएँ अब भी प्राचीन रूपों में विद्यामान है। आँचलिक उपन्यासकारों ने प्रत्येक अंचल को अपने नैसर्गिक अवस्था में चित्रित किया है। वस्तुत यह धर्म व संस्कृति के आधार पर वास्तविक आस्था व अंधविश्वास पूर्ण जीवन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।"[75] जड़ परंपरा अंधविश्वास आदि अर्थहीन है परंतु ग्रामीण जन इसके ऊपर अटूट आस्था रखते हैं। संस्कार, विचार और व्यवहार के लिए धर्म जरुरी है परंतु अंधविश्वास, जड़ परंपराओं को धर्म के साथ जोड़ना असंगत है।

धर्म शब्द की उत्पत्ति 'धृ' धातु से हुआ है, जिसका अभिप्राय है धारण करना। धर्म का मुख्य अर्थ नैतिक और मानवता है। परंतु ग्रामीण अंचलों में मानवता और नैतिकता की जगह धर्म ने अनैतिकता का स्थान प्राप्त किया है। अब मानवता के स्थान पर जहर का काम कर रहा है। वर्तमान समय में धर्म लोगों को बाँटने का काम कर रहा है। ग्रामीण अंचल के इन्हीं धार्मिक तत्व को उपन्यासकारों ने उपन्यास में चित्रित किया है।

फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास के माध्यम से मेरीगंज में व्याप्त अंधविश्वास को दिखाया है। ग्रामीण अंचलों में मूलतः अशिक्षा और अज्ञानता के कारण अंधविश्वास बढ़ रहा है। कुछ प्राकृतिक कारणों या रोग के कारण मनुष्य के साथ हादसे होते हैं। जिसे अंधविश्वास के कारण लोग भूत-प्रेत का नाम देते हैं। एक समय में मेरीगंज गाँव में मार्टिन साहब ने सिंदूर कोठी बनाई थी। उनकी पत्नी मेरी और मार्टिन रहते थे परंतु मेरी के मृत्यु के पश्चात् वह बंगला खण्डहर में बदल गया। गाँव वाले सोचने लगे की वहाँ पर प्रेत निकलते हैं। बंगला के आस-पास जो भी घटना घटित होती थी वह भूत-प्रेत का कार्य मानने लगे थे। "कोठी के जंगल में तो दिन में भी सियार बोलता है। लोग उसे भुतहा जंगल कहते हैं। ततमाटोले का नंदलाल एक बार ईंट लाने गया, ईंट के हाथ लगाते ही खत्म हो गया था। जंगल से एक प्रेतनी निकली और नंदलाल को कोड़े से पीटने लगी-साँप के कोड़े से। नंदलाल वहीं ढेर हो गया। बगुले की तरह उजली प्रेतनी।"[76] नंदलाल के साथ क्या हुआ था लोग अपने हिसाब से बातें बनाकर कहते हैं। नंदलाला ने किसी के आगे कुछ नहीं कहा परंतु लोग पहले से ही मानते थे कि उस जंगल में भूत-प्रेत रहते हैं। मेरीगंज अंचल में अस्पताल खुलने वाला था। अस्पताल को लेकर तरह-तरह की बात हो रही थी। डॉक्टर और दवा के खिलाफ लोगों में कहानियाँ बन रही थी। लोगों के बीच यह विश्वास थी कि हैजा और मलेरिया का मूल कारण डॉक्टर और दवा है "जोतखी जी का विश्वास है कि डॉक्टर लोग ही रोग फैलाते हैं, सूई भोंककर देह में जहर दे देते हैं, आदमी हमेशा के लिए कमजोर हो जाता है, हैजा के समय कूपों में दवा डाल देते हैं, गाँव का गाँव हैजा से समाप्त हो जाता है। कालाबुखार का नाम पहले लोगों ने कभी सुना था ? पूरब मुलुक कामरू कमिच्छा हासाम (असम) से कालाबुखार वालों का लहू शीशा में बंद करके यही लोग ले आए थे। आजकल घर-घर कालाबुखार फैल गया है।...इसके अलावा, बिलैती दवा में गाय का खून मिला रहता है।"[77] चाहे इंसान मर जाए फिर भी डॉक्टर की बात न सुनने की ठान 'मैला आँचल' में कई जगह रेणु ने उल्लेख किया है। जोतखी की पत्नी जब गर्भवती हुई थी तो तब पेट काटकर बच्चा निकालने की बात डॉक्टर ने कहा था परंतु वह न माने। वे समझते रहे कि इससे पाप चढ़ेगा जिस कारण जोतखी की पत्नी मर गई। "स्त्री की मृत्यु के बाद जोतखी जी बहुत गुमसुम रहते हैं।....डॉक्टर को कितना कहा की कोई दवा देकर रापनारायण की माँ को उबारिए, लेकिन कौन सुनता है ! बस एक ही जवाब। बच्चा को पेट काटकर निकालना होगा। शिव हो! पराई स्त्री को बेपर्दा करने की बात कैसे उसके मुँह से निकली....?"[78] अशिक्षा और अज्ञानता के कारण हर छोटे-छोटे घटना के साथ अंधविश्वास जुड़ा हुआ है। मठ के महंत द्वारा एक दिन बीजक जल पड़ा। चिलम की

आग गिरने के कारण यह घटना घटित हुई। इसके पश्चात् महंथ डरने लगे इस अपराध के लिए उन्हें दंड भूगतनी पड़ेगी। "महंथ साहेब ने रोते हुए कहा था 'रामचरन, साहबे करोध किहिन है, दंड भोगना पड़ेगा। अमंगल होगा।"[79] तद्पश्चात मठ में जो भी घटना घटने लगे इसका कारण बीजक जलने को मानने लगे। महंथ जी का स्वर्गवास हो जाता है। अंधविश्वासी ग्रामीण जन मानने लगे यह सब बीजक जलने के कारण हुआ।

अंधविश्वास के चलते कभी-कभी अंचलवासियों को अपने प्राणों की बलि देनी पड़ती है। विधवा पारबती की माँ को गाँववाले डाइन समझते हैं। व्यक्ति अनेक कार्य और घटनाओं के कारण को नहीं जान पाते और समझने की चेष्टा भी नहीं करते। अंधविश्वास के साथ अज्ञानता जुड़ी हुई है, अज्ञानता कभी-कभी लोगों के प्राण तक ले लेती है। पारबती की माँ बूढी है। इस दुनिया में उनका केवल एक नाती ही है। परिवार के सभी लोग मर गए। इसका कारण गाँववाले उसी बूढी को मानते हैं। "पारबती की माँ थी। डाइन है ! तीन कुल में एक भी नहीं छोड़ा। सबको खा गई। पहले भतार को, इसके बाद देबर-देबरानी, बेटा-बेटी, सबको खा गई। अब एक नाती है, उसे भी चबा रही है।"[80] मेरीगंज अंचल में आए डॉक्टर प्रशांत बूढी मौसी के प्रति दया भाव रखते हैं। मौसी के घर भी कभी कभार उनका आना जाना लगा रहता था। एक दिन रात को डॉक्टर गेहूँअन साँप से बाल-बाल बाच गए। सुबह जिसने भी सुना इसका दोष मौसी को देने लगे। "डॉक्टर बाबू को इतना समझाया-बुझाया कि पारबती की माँ से इतना हेल-मेल नहीं बढ़ावें। नहीं माने, अब समझें। वह राच्छसनी किसी को छोड़ेगी ? जिसको प्यार किया उसको जरुर खाएगी।"[81]

भारतीय ग्रामीण समाज में लोगों के दिमाग में अंधविश्वास हावी है। इसे वे एक आस्था के रूप में मानते हैं। जहाँ मानव समाज एक ओर विज्ञान और तकनीक की दिशा में आगे बढ़ चूका है वहीं दूसरी ओर आज भी ग्रामीण समाज में अंधविश्वास अपनी जड़े मजबूत बनाने में सक्षम है। मेरीगंज में रहनेवाले बालदेव भूत-प्रेत पर विश्वास ही नहीं बल्कि उन्हें अपने आखों से देखने का दावा करते हैं – "बालदेव जी तो बहुत बार भूत को अपनी आखों देखा है। भैंस के पीछे-पीछे खैनी-तंबाकू माँगता है भूत ! डाकिन का पाँव उलटा होता है और वह पेड़ की डाल से लटककर झूलती है।"[82] तहसीलदार की बेटी कमली और डॉक्टर प्रशांत एक दूसरे से प्रेम करते हैं। डॉक्टर प्रशांत भूत-प्रेत या जिन पर विश्वास नहीं करते। परंतु कमली प्रशांत से कहती है – "जिन्न एक पीर का नाम है। वह कभी-कभी मन मोहनेवाला रूप धरकर कुमारी और बेवा लड़कियों को भरमाता है। गरीब से गरीब

को धनी बना देना उसकी चुटकी बजाने भर की बात है। जिस पर बिगड़े, बरबाद कर दे, जिस पर ढेर उसे निहाल कर दे।"[83]

ग्रामीण अंचल के लोग यह मानते हैं कि जादू-टोना के माध्यम से एक बीमारी दूसरें पर लाया जा सकता है। बालदेव की मौसी यह मानने लगी थी कि डॉक्टर प्रशांत ने कमला के रोग को बालदेव को चढ़ा दिया। "बालदेव की बुढियां मौसी अब नहीं मानती। वह गा-गाकर रोती है,- 'डागडर ने तहसीलदार की बेटी कमला की बेमारी को उतारकर बालदेव पर चढ़ा दिया है। यह भले आदमी का काम नहीं। तहसीलदार के बेटी अभी तक कुमारी है। हे भगवान! अब बलदेव का बिहा नहीं होगा।"[84]

ग्रामीण अंचलों में अंधविश्वास इतना पक्का है कि एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को यह विरासत में मिलता है। हिंदी के 'मैला आँचल' उपन्यास में जिस प्रकार रेणु ने ग्रामीण अंचलों में व्याप्त अंधविश्वास, कु-संस्कार, रूढ़ियों को दिखाया है उसी प्रकार असमिया उपन्यास 'नोई बोई जाय' में डॉ. लीला गोगोई ने दिखाया है कि किस प्रकार ग्रामीण जन अंधविश्वास के शिकार है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास के माध्यम से सेंदुरीपाम गाँव में प्रचलित अंधविश्वास को बड़े व्यापक रूप में लेखक ने प्रस्तुत किया है। सुवागी गर्भवती होने के बाद जब पहली बार माँ के घर जाती है तो उसकी सास उसे हाथ में लोहे का चाकू लेकर जाने के लिए कहती है। गाँवों में यह माना जाता है कि लोहे के वस्तु से भूत-प्रेत डरते हैं। इससे प्रेत मनुष्य के नजदीक नहीं आ सकता है। "माँ के घर जाते समय हाथ में चाकू या छूरी लेकर जाना।"[85] सेंदुरीपाम गाँव में विहमना नामक जंगल है। लोगों में विश्वास है कि वहाँ पर भूत-प्रेत, चुड़ेल रहते हैं। शनिवार और मंगलवार को तो लोग दिन में भी उस जगह जाने से कतराते हैं। "विहमना में तो दिन में ही भूत निकलते हैं। घर जा रहे इंसान को आगे निकल कर रास्ता रोक लेता है। किसी को अगर भूत पकड़ ले तो आवाज़ चली जाती है।"[86] इतना ही नहीं यह भी माना जाता है कि उस जंगल के लंबे साम पेड़ में देवता रहते हैं। "लंबे साम पेड़ में देवता रहते हैं। केवल पेड़ के छाँ को कुचल ने से भी देवता पकड़ लेते हैं। सामोन देवता के पकड़ने के पश्चात् आदमी किसी से बात तक नहीं करता। एकबार माऊत गाँव के मुखिया को सामोन देवता ने पकड़ा था। वे खून की उल्टी कर के मर गए।"[87]

ग्रामीण अंचलों में तांत्रिक के प्रति परम् आस्था है। डॉक्टर से ज्यादा वे लोग तांत्रिक पर विश्वास रखते हैं। "रंगाय तांत्रिक के बिना गाँव का जीवन असंभव है। उसके जैसा दूसरा तांत्रिक मिलना तो मुश्किल ही है। उन्हें ज्ञात है कि कौन सा भूत क्या चाहता है, वह कहाँ रहता है, कौन से भूत के क्या लक्षण है। ग्रामीण लोग उनके

पास अपनी समस्या का समाधान करने जाते हैं। लोग सोचते हैं कि वे अपने जादू-टोना से हर समस्या का समाधान कर देतें हैं, इतना ही नहीं बाँझ औरत को अपनी तांत्रिक शक्तियों से गर्भवती बना देते हैं। अपनी तंत्र विद्या से किसी भी घर को प्रेतों के छाँया से सुरक्षित कर सकते हैं।"[88] भगीरथ फूकन के शादी के तीन साल बीत चुके थे परंतु अब तक उनका कोई बच्चा नहीं हुआ था। इसी चिंता में भगीरथ की माँ तांत्रिक के पास पहुँच गई। उसकी सास सोचती थी कि सुवागी को किसी ने जादू कर दिया है जिस कारण वह माँ नहीं बन रही है। इसका समाधान केवल तांत्रिक के पास है सोचकर उनके पास पहुँच जाती है। "सुवागी को किसी ने जादू-टोना कर दिया होगा। नदी के सात घाट से पानी लाकर स्नान करना पड़ेगा। रंगाई तांत्रिक के पास जाना ही होगा।"[89]

'नोई बोई जाय' उपन्यास के माध्यम से असमिया समाज में प्राचीन कालों से चली आ रही अनेक परंपरा और विश्वास को चित्रित किया गया है। 'माघ बिहू के दिन सुबह-सुबह अग्नि दाह करते हैं। उस दिन अग्नि देव के सामने इच्छा पूर्ति की प्रार्थना की जाती है। भगीरथ फूकन भी माघ बिहू के दिन अग्नि देव के सामने अपनी इच्छा प्रकट करता है। "माघ बिहू के सुअवसर पर भगीरथ फुकन अग्नि देव के समक्ष सुपारी-पान अर्पित करते हुए यह माँगता है कि उसका विवाह सुवागी के संग कोई समस्या के बिना हो जाए।"[90] ग्रामीण जनों में अपनी-अपनी धार्मिक मान्यताएँ हैं और इसके प्रति उनका दृढ़ विश्वास है। प्राकृतिक विपदा कब कैसे आती है कोई नहीं जनता। इससे बचना मुश्किल है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में से सेंदुरीपाम गाँव की आस्था इस प्रकार दिखाया गया है – "ग्रामीण जन नाहर के पत्तों में मंत्र लिखकर घर के दीवारों के किसी कोने पर टांग देते हैं। ऐसा करने से आँधी, तूफान बिजली, वज्रपात आदि से खेतों को कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा।"[91] सेंदुरीपाम गाँव के लोग यह मानते हैं कि गुरूवार लक्ष्मी माँ का दिन है। इस दिन पैसा किसी को उधारी के लिए दे दिया जाए तो लक्ष्मी माँ नाराज हो जाती है। उनकी कृपा बनाये रखने के लिए ग्रामीण जन इस दिन लेन-देन नहीं करते हैं। "गुरूवार को जब बाखर भगीरथ के घर पैसे माँगने-जाता हैं तो उसकी माँ देने से मना करती है और उसे कल आने के लिए कहती।"[92]

हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यासों में धार्मिक चेतना का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों अंचल में अंधविश्वास की प्रबल भावना है। इसके पीछे मूलतः कारण अज्ञानता तथा अशिक्षा है। दोनों उपन्यासकार यह दिखाने की चेष्टा कर रहे हैं कि अंचलों में अंधविश्वास के प्रति गंभीर आस्था है। वे समझते हैं कि यह सदियों से हमारे समाज में प्रचलित है

जिसका पालन न करना पाप है। मनुष्य इतने अज्ञानी है कि यह समझते हैं कि डॉक्टर ही रोग फैलाने का मूल कारण है। जिसे रेणु ने 'मैला आँचल' में दिखाया है। 'नोई बोई जाय' में दिखाया गया है कि बाँझ स्त्री तांत्रिक के मदद से माँ बन सकती है। भूत-प्रेत, जादू-टोना के प्रति लोगों का विश्वास दोनों उपन्यास में उल्लेखित है। 'मैला आँचल' उपन्यास में 'डाइन' के नाम पर मनुष्य के ऊपर जो अत्याचार होते हैं उसका जिक्र असमिया उपन्यास में नहीं मिलता है।

हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' उपन्यासों का सांस्कृतिक-धार्मिक जीवन अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि भले ही दोनों अलग-अलग क्षेत्र हो परंतु दोनों अंचलों के जीवन में बहुत सी समानताएँ है। ग्रामीण समाज में प्रचलित उत्सव, मेला, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकउपकरण, रीति-रिवाज, धार्मिक चेतना आदि जन-जीवन का आधार है। दोनों उपन्यासों में उल्लेखित पर्व त्योहार जन-जीवन के निकट है और जोड़ने का कार्य करती है। अंचलों में विराजमान संस्कृति उनकी पहचान है। एक ओर मेरीगंज में इंद्र देव को प्रसन्न करने के लिए जाट-जट्टिन का खेल खेला जाता है वहीं दूसरी ओर असमिया उपन्यास में इंद्र देव को प्रसन्न करने के लिए मेढ़क केविवाह का आयोजन किया जाता है। होली, विवाह, जन्म, के अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों को भरमार दोनों उपन्यासों में देखने को मिलता है। दोनों क्षेत्र कृषि प्रधान है जिस कारण दोनों उपन्यासों में प्रयोग करने वाले लोक उपकरणों में समानता पायी जाती है। परंतु असमिया समाज में प्रयोग करने वाले कुछ उपकरण जैसे- ताँतखाल, माकू आदि का उल्लेख मैला आँचल में नहीं मिलता।

धार्मिक जीवन के अंतर्गत दोनों उपन्यासों में दिखाया गया है कि धर्म के प्रति ग्रामीण जनों की आस्था अटूट है। सामाजिक जीवन पर धर्म का गहन प्रभाव है। मेरीगंज क्षेत्र में ईश्वर की उपसना करने के लिए मठ का तथा सेंदुरीपाम में नामघर (मंदिर) का उल्लेख मिलता है। जन्म, मृत्यु, विवाह आदि अवसरों पर रीति-रिवाजों के साथ धार्मिक कार्य किया जाता है। दोनों उपन्यासों में अंधविश्वास प्रबल मात्रा में है। भूत-प्रेत, जादू-टोना, चत्मकार, जीन, तांत्रिक के प्रति इसका विश्वास अटूट दिखायी देती है। ग्रामीण जन मानते है कि डॉक्टर से भी बड़ा तांत्रिक होता है। 'मैला आँचल' में जिस तरह डाइन मानकर मौसी के साथ अमानवीय शोषण करते है इस प्रकार की धारणा असमिया उपन्यास 'नोई बोई जाय' में देखने को नहीं मिलता। धर्म के नाम पर जो बलि विधान चलती है उसका जिक्र कम रूप में 'नोई बोई जाय' उपन्यास में मिलता है परंतु बलि प्रथा का कोई उल्लेख मैला आँचल उपन्यास में नहीं है।

संदर्भ :

1. मानव और संस्कृति, श्यामाचरण दुबे, पृ.सं.- 17-18
2. रेणु के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, जोगेंद्र सिंह वर्मा, पृ.सं.- 2
3. संस्कृति विकास और संचार क्रांति, पूरनचंद जोशी, पृ.सं.- 218
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम्य जीवन, पृ.सं.- 208
5. हिंदी उपन्यास की प्रवृत्तियों, डॉ. शशिभूषण सिंहल, पृ.सं.- 119
6. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.-76
7. वही, पृ.सं.- 90
8. वही, पृ.सं.- 91
9. वही, पृ.सं.- 91
10. वही, पृ.सं.- 108
11. वही, पृ.सं.- 133
12. वही, पृ.सं.- 43
13. नोई बोई जाय, डॉ.लीला गोगोई, पृ.सं.-32-33
14. वही, पृ.सं.- 67
15. वही, पृ.सं.- 71
16. वही, पृ.सं.- 71
17. वही, पृ.सं.- 158
18. वही, पृ.सं.- 114
19. वही, पृ.सं.- 28
20. जनसत्ता रविवार अक्टूबर, 1989, लेख- भूले बिसरे रामनरेश त्रिपाठी, कृष्णदत्त पालीवाल, पृ.सं.-06

21. समीक्षा, अंक- 3, अक्टूबर दिसंबर 1988, लेख-मैला आँचल चंदन भी कीचड़ भी, पृ.सं.-29
22. फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य, डॉ. वीरेंद्र नारायण सिंह, पृ.सं.-161
23. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.- 133
24. वही, पृ.सं.- 92
25. वही, पृ.सं.- 92-93
26. वही, पृ.सं.- 93-94
27. वही, पृ.सं.- 50
28. वही, पृ.सं.- 42
29. वही, पृ.सं.- 136
30. वही, पृ.सं.- 137
31. वही, पृ.सं.- 166
32. वही, पृ.सं.- 41
33. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में कृषक जीवन, डॉ.उत्तमभाई पटेल, पृ.सं.-158
34. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.-55
35. वही, पृ.सं.- 61-62
36. वही, पृ.सं.- 58-59
37. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 71
38. वही, पृ.सं.- 73
39. वही, पृ.सं.- 72
40. वही, पृ.सं.- 72
41. वही, पृ.सं.- 06
42. वही, पृ.सं.- 12
43. वही, पृ.सं.- 232-233
44. वही, पृ.सं.- 235

45. वही, पृ.सं.- 230-231

46. वही, पृ.सं.- 143

47. वही, पृ.सं.- 144

48. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.-108

49. वही, पृ.सं.- 13

50. नोई बोई जाय, डॉ. लीला गोगोई, पृ.सं.- 44

51. वही, पृ.सं.- 32

52. वही, पृ.सं.- 40

53. वही, पृ.सं.- 229

54. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.-20

55. वही, पृ.सं.- 90

56. वही, पृ.सं.- 106

57. वही, पृ.सं.- 108

58. वही, पृ.सं.- 117

59. नोई बोई जाय, डॉ.लीला गोगोई, पृ.सं.-28

60. वही, पृ.सं.- 44-45

61. वही, पृ.सं.- 69

62. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.-20

63. वही, पृ.सं.- 108

64. वही, पृ.सं.- 133

65. वही, पृ.सं.- 17

66. वही, पृ.सं.- 226

67. नोई बोई जाय, डॉ.लीला गोगोई, पृ.सं.-226

68. वही, पृ.सं.- 210

69. वही, पृ.सं.- 210

70. वही, पृ.सं.- 179

71. वही, पृ.सं.- 158

72. वही, पृ.सं.- 131

73. समाजवादी उपन्यास भैरव प्रसाद गुप्त, डॉ. सुनंदा पालकर, पृ.सं.-127

74. वही, पृ.सं.- 117

75. हिंदी-अंग्रेजी के आँचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, राजकुमारी सिंह, पृ.सं.-245

76. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.-10-11

77. नोई बोई जाय, डॉ.लीला गोगोई, पृ.सं.-13

78. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.-109

79. वही, पृ.सं.- 32

80. वही, पृ.सं.- 171

81. वही, पृ.सं.- 177

82. वही, पृ.सं.- 78

83. वही, पृ.सं.- 177

84. नोई बोई जाय, डॉ.लीला गोगोई, पृ.सं.-154

85. वही, पृ.सं.- 131

86. वही, पृ.सं.- 136

87. वही, पृ.सं.- 136

88. वही, पृ.सं.- 163-164

89. वही, पृ.सं.- 118

90. वही, पृ.सं.- 132

91. वही, पृ.सं.- 66

92. वही, पृ.सं.- 169

उपसंहार

संस्कृति समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। मनुष्य, समाज और संस्कृति एक दूसरे से इतने निकट है कि उन्हें पृथक करना मुश्किल कार्य है। मनुष्य के आचार-विचार, व्यवहार, रहन-सहन में उसकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परिचय मिलता है। भारतीय समाज आरंभिक समय से ही सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत रहा है। भारतीय संस्कृति की यह विविधता विश्व में अपनी अलग पहचान बनायी हुई है। भारतीय संस्कृति सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को प्रकट करता है। इसी समाज और संस्कृति के अन्तःस्थ प्रकृति की अभिव्यक्ति होती है। मनुष्य के विकास का आधार समाज और संस्कृति को माना जाता है।

भारतवर्ष में साठ-सत्तर प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं। भारत गाँवों का देश है। भारतीय समाज और संस्कृति का सजीव चित्रण गाँवों में मौजूद है। गाँवों में भारत की सदियों से चली आ रही परंपराएँ आज भी विद्यमान है। भारतवर्ष के महत्त्व का वास्तविक मूल्यांकन गाँवों से ही संभव है। भारतवर्ष जैसे विशाल भूखंड में निवास करने वाले ग्रामीण जनों के माध्यम से देश की समाज और संस्कृति की झलक दिखाई पड़ती है। महात्मा गाँधी भी मानते थे वास्तविक भारत का दर्शन गाँवों में ही संभव हैं, जहाँ भारत की आत्मा बसी हुई है। भारत एक ऐसा देश हैं जहाँ पर 'चार कोस में पानी बदले तो आठ कोस में वाणी'। अतः यह स्पष्ट है कि भारत विभिन्न संस्कृति का रंगमंच है। भारत में जितने भी राज्य है सबकी अलग-अलग संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज है। यह विविधता सहनशीलता का प्रतीक है। प्रत्येक राज्य की संस्कृति अलग-अलग होने के बावजूद कई बिंदु पर इसमें समानताएँ भी है।

समाज में जो भी घटना-घटित होती है वह साहित्य के माध्यम से चित्रित होती है। साहित्य और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं। साहित्य समाज के मानसिक तथा संस्कृति उन्नति और सभ्यता का प्रतीक है। साहित्य एक ओर जहाँ समाज को प्रभावित करता है वहीं दूसरी ओर वह समाज से प्रभावित भी होता है। साहित्य के माध्यम से किसी भी राष्ट्र का इतिहास, गरिमा, संस्कृति और सभ्यता को जान सकते हैं। साहित्य हमारी कौतूहल, जिज्ञासा वृत्तियों और ज्ञान की पिपासा को तृप्त करने के साथ क्षुधापूर्ति करता है। समय-समय पर हिंदी साहित्य में विविध विषयों का आगमन हुआ है। साहित्य के सभी विधाओं में कहानी और उपन्यास ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। हिंदी साहित्य के विविध विषयों में आँचलिक कथा- साहित्य ने कम समय में

जनप्रियता अर्जन करने में सफलता प्राप्ति की है। आँचलिक कथा-साहित्य के अंतर्गत उपन्यासों ने विभिन्न अंचलों में बिखरी हुई संस्कृति को सजाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आँचलिक उपन्यासों के द्वारा एक निर्माणोंमुखी साहित्य का जन्म हुआ। इनके जनवादी दृष्टि ने लोक की भावना को यथार्थ से जोड़ दिया। जिसके फलस्वरूप उपन्यास को नई गतिशीलता मिली। आंचलिक उपन्यासों के आगमन के पश्चात् हिंदी उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा मिली। हिंदी उपन्यास साहित्य में आँचलिकता के तत्व पहले से ही मौजूद थे परंतु इसके स्वतंत्र अस्तित्व का समूचित विकास स्वातंत्र्योत्तर काल से ही हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् साहित्य में आँचलिक कथा साहित्य ने एक अलग ही पहचान बनायी। लोगों का ध्यान गाँव की ओर जाने लगा। गाँव को केंद्र में रखकर साहित्य लिखा जाने लगा। अतः जो कथा-साहित्य किसी विशेष ग्राम, प्रांत या भूखंड से संबंधित होता है उसे आँचलिक साहित्य कहा जाता है। हिंदी उपन्यास में आँचलिक उपन्यास का आगमन व्यक्तिवादी उपन्यासों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ है। आँचलिक उपन्यास विशिष्ट अंचल या पिछड़े क्षेत्रों के जन-जीवन को चित्रित करने में सफल हुआ है। हिंदी में व्यक्तिवादी साहित्य में आनेवाली जड़ता और स्थिरता को तोड़ने में आँचलिक उपन्यास ने अह्म भूमिका निभाई है। आँचलिक उपन्यास के माध्यम से अंचल विशेष की संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, तीज-त्यौहार, वेश-भूषा, धार्मिक अनुष्ठान, मेला, गीत, नृत्य, भाषा, बोली आदि का सजीव चित्रण मिलता है। आँचलिकता की इन्हीं तत्वों के आधार पर दो भिन्न भाषी परिवेश में लिखे गए उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। "हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन" विषय के चारों अध्यायों का अध्ययन करने के पश्चात् अनके तथ्य समाने आये हैं जिसका सार निम्नलिखित है-

प्रथम अध्याय 'शोध परिचय' का अध्ययन करने से शोध कार्य में काफी सहायता मिली। शोध का परिचय', 'शोध समस्या', 'शोध कार्य का उद्देश्य', 'संबधित विषय में हुए कार्यों का विवरण', 'शोध प्रविधि', 'शोध कार्य का औचित्य', 'शोध की सीमा', 'शोध कार्य का प्रयोजन', 'शोध कार्य का ढाँचा' आदि विषयों का पूर्व निधार्रण करना शोध कार्य के लिए सहायक सिद्ध हुआ।

द्वितीय अध्याय "फणीश्वरनाथ रेणु और डॉ. लीला गोगोई : एक परिचय एवं आँचलिक उपन्यास का स्वरूप" को अध्ययन करने से मिला कि दोनों ही साहित्यकार के जीवन का प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ा है।

उनके साहित्य को समझने के लिए उनके वास्तविक जीवन को समझना आवश्यक है। प्रेमचंद के पश्चात् भारतीय ग्रामीण जीवन के यथार्थ को अपनी कथा का मूल विषय बनाने वाले हिंदी साहित्यकारों में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गाँव की समकालीन जीवन पर लिखा गया रेणु का 'मैला आँचल' पहला उपन्यास है जिसमें परिवर्तित ग्राम्य जीवन, ग्रामीण परिवेश और ग्राम्य मानसिकता का व्यापकता से चित्रण है। फणीश्वरनाथ रेणु एक अच्छे शिल्पी की तरह अपनी रचनाओं का ताना-बाना अपनी विशिष्ट शैली में किया है। रेणु एक विचारक, समाज सुधारक और राजनैतिक सरोकार वाले साहित्यकार है। अगर देखा जाए तो रेणु का जीवन और साहित्य विविधता से भरा हुआ है। वे अपने जीवन में भोगा और देखा हुआ यथार्थ को ही साहित्य में व्यक्त किया है। रेणु की प्रतिभा तथा चिंतन उनके साहित्य में दिखाई देता है। फणीश्वरनाथ रेणु बहुआयामी प्रतिभा संपन्न रचानाकार है। उनकी प्रतिभा रचनाओं के माध्यम से दिखायी पड़ती है। सृजनात्मक, मेधा एवं ज्ञान का परिचय उनके प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, यंग्यकार, निबंधकार, रिपोतार्ज, संस्मरण, स्केच पत्र, डायरी, अनुवाद, पटकथा, साक्षात्कार, टिप्पणी, गद्य गीति आदि विधाओं की रचनाओं से मिलता है।

असमिया साहित्य साधना में डॉ. लीला गोगोई का जीवन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सन् 1954 से साहित्य जगत में उनका आगमन हुआ। इतिहास, लोकसाहित्य, प्रबंध के अतरिक्त भी उपन्यास, गीत तथा गीति-कविता, हास्य-व्यंग्य, बाल साहित्य पर अपना जादू उन्होंने बिखेरा। इसके उपरांत बहुत ग्रंथों का संकलन और संपादन भी किया। गोगोई द्वारा किया गया अनुवाद भी साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान है। असमिया साहित्य के विकास में गोगोई ने अतुलनीय योगदान दिया। गोगोई ने कविता के माध्यम से साहित्य जगत में अपना कदम रखा था। आगे चलकर वे गद्य रचनाकार बने। इतना ही नहीं गीतों के प्रति अपार श्रद्धा और रुचि रखने के कारण एक गीतिकार के रूप में भी उन्हें जाना जाता है। उनके द्वारा रचित साहित्य में असमिया समाज के लोक साहित्य, सांस्कृति, धर्म, परंपरा और जातीय प्रेम का सुगंध मिलता है। उनके व्यक्तित्व का एक आकर्षणीय पहलू यह था कि अपने देश तथा उसमें व्याप्त संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम। इसी व्यक्तित्व का आभास उनके साहित्य में मिलता है। साहित्यकार का परिवेश तथा उनका आचार उनके साहित्य के माध्यम से व्यक्त होना स्वभाविक है और इसी का प्रभाव गोगोई के साहित्य में मिलता है।

डॉ. लीला गोगोई का साहित्य का क्षेत्र अत्यंत विशाल है । साहित्य के विभिन्न क्षेत्र में अपना छाप छोड़नेवाले गोगोई असमिया जनमानस में सृजनात्मक लेखक के रुप में अपना एक अलग परिचय बनाने में सफल रहे हैं । उनके द्वारा रचित सृजनात्मक साहित्य ने सदा जनता के मन-मस्तिष्क को प्रभावित किया । जीवन के भिन्न-भिन्न पक्ष को मनोग्राही रूप में अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है । गोगोई वे आधुनिक असमिया साहित्य के प्रायः सभी विधाओं में अपना जादू बिखेरा है और साथ ही उन्हें सफलता की प्राप्ति भी हुई। गवेषणामूलक ग्रंथ ने जिस प्रकार समाज के एक वर्ग को प्रभावित किया ठीक उसी प्रकार उपन्यास, गीत, हास्य-व्यंग्य ने दूसरे वर्ग को प्रभावित किया । उनका जीवन एक प्रकार से समाज, देश एवं साहित्य और संस्कृति के प्रति समर्पित था । असमिया साहित्य की प्रतिष्ठा एवं विकसित करने वाले अग्रणी व्यक्तियों में उनका नाम आदर से लिया जाता है । सृजनशील रचना के माध्यम से लीला गोगोई का मन सूक्ष्म अनुभूति, सामाजिक चेतना, परिवर्तनशील मूल्यबोध के प्रति आस्था और अपनी भाषा-संस्कृति के प्रति लगाव की भावना आदि का प्रतिफलन मिलता है । विशेष रूप से असमिया भाषा-साहित्य का सौंदर्य एवं स्वरुप उनके साहित्य का केंद्र बिंदु था ।

आँचलिक उपन्यास में विशेष रूप से एक क्षेत्र, भूखंड या मंडल विशेष के सामान्य जन-जीवन का वैविध्यपूर्ण चित्रण होता है । आँचलिक उपन्यास में न केवल अंचल-विशेष का जीवन द्रष्टा है बल्कि इनका शिल्प विधान, भाषा-बोली भी अन्य उपन्यासों से भिन्न है । विशिष्ट क्षेत्र की संस्कृति, वहाँ के व्यक्ति, रहन-सहन, खान-पान, उत्सव-मेला, वेश-भूषा, बोली आदि का चित्रण करना ही आँचलिक उपन्यास के उद्देश्य है । इन उपन्यासों में अंचल को केंद्र में रखकर या नायक के रूप में अन्य पात्रों की रचना की जाती है । साहित्य में आँचलिक उपन्यास वह विधा है जिसका विकास निरंतर हो रहा है । आँचलिक उपन्यास सांस्कृतिक धरोहर भी है जिसके माध्यम से उपन्यासकार उस क्षेत्र में व्याप्त सांस्कृतिक विविधता को रचना में चित्रण करता है । विशेष रूप से आँचलिक उपन्यास ग्राम्य जीवन के साथ जुड़ा हुआ है । उपन्यासकार छोटे-छोटे अपरिचित अज्ञात क्षेत्र में रहनवाले सामान्य जन-जीवन को दर्शाने का प्रयास करता है । साथ-साथ उस क्षेत्र के लोकगीत, लोकनृत्य, लोक उपकरण, जीवन-दर्शन को दिखाने की चेष्ठा करता है ।

आँचलिकता के तत्व हल्के रूप में प्रेमचंद युग से ही मिलता है। नामकरण में भले ही नवीनता हो परंतु इसके आभास पहले की रचनाओं में भी मिलती है। इस परम्परा को आगे ले जाने में जिन उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उनकी कृतियाँ हिंदी साहित्य में अक्षय भंडार है। आज आँचलिक उपन्यासों की एक लंबी परम्परा है, जिसमें भारत के विभिन्न अंचलों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। जिस कारण हम उस अंचल के न होते हुए भी उसके बारे में इन उपन्यासों के माध्यम से प्राथमिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हिंदी साहित्य में 'मैला आँचल' उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात् आँचलिक उपन्यास की परंपरा की शुरुआत हुई है। इसके पहले के उपन्यासों में भी आँचलिकता के तत्व तो मिलते थे लेकिन 'मैला आँचल' आँचलिकता की दृष्टि से पूर्ण आँचलिक उपन्यास है। रेणु के आँचलिक उपन्यास लिखने के बाद हिंदी साहित्य में इस परंपरा का श्री गणेश हो गया। अनेक साहित्यकार ने नए-नए विषयों को लेकर आँचलिक उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। जिनमें राही मासूम राज़ा कृत 'आधा गाँव' रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ, शिवप्रसाद सिंह कृत- 'अलग-अलग वैतरणी', नागार्जुन कृत 'बलचनमा' उदय शंकर भट्ट कृत 'सागर लहरें और मनुष्य', देवेंद्र सत्यार्थी कृत 'ब्रह्मपुत्र' राजेंद्र अवस्थी कृत- "जंगल के फूल', रामदरश मिश्र कृत 'सूखता हुआ तालाब' आदि प्रमुख है। असमिया साहित्य में भी आँचलिक उपन्यास की एक लंबी परंपरा पायी जाती है। जिनमें रंगवंग तेंराग कृत 'रंग मिलीर हाँही' नवकांत बरुआ कृत 'कपिली परीया साधु, डॉ. लीला गोगोई कृत 'नोई बोई जाय' लूम्मेई दाई कृत 'मिरि जियरी' वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य कृत 'ईयारुईगम' आदि प्रमुख हैं।

तृतीय अध्याय "'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यास में सामाजिक आर्थिक जीवन" में दोनों अंचल के जुड़ाव और अलगाव को दिखाया गया है। ग्रामीण अंचलों में व्याप्त असंगति, शिक्षा के प्रति लापरवाही, जात-पात का भेद-भाव, नैतिक मूल्यों का बदलता स्वरूप, नारी-पुरुष संबंध, परिवार, ग्रामीण जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। ग्रामीण अंचलों का सदा जीवन आज भी बहुत हद तक पिछड़ा हुआ है। दोनों उपन्यासकारों ने प्रयास किया है कि आधुनिकता आँचलिक परिवेश के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट कर सके। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी एक विशेष जीवन शैली है जिस कारण वे पृथक है परंतु उनमें समानता भी पायी जाती है। संकीर्ण दृष्टिकोण को त्यागकर दोनों उपन्यासकारों ने यह चेष्टा की है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म बिंदु को उपन्यास में चित्रित कर सकें। गाँव का परिवेश अत्यंत मनोरम है। जहाँ एक ओर ग्रामीण जीवन के सहज-सरल रूप, वातावरण, प्रकृति सौंदर्य चित्रित है तो दूसरी ओर समाज में प्रचलित अंधविश्वास, भांग पीना , गाजा पीना आदि

के प्रभाव को दिखाया गया है। असमिया समाज में परिवार के महत्त्व को भगीरथ फुकन के माध्यम से दिखाया गया है परंतु तीव्र गति से परिवर्तन के कारण पारिवारिक संबंध के महत्त्व खो रहे हैं। गाँव का जो आनंदपूर्ण माहौल है वह तनाव से ग्रस्त होने लगा है। बढ़ते नये पीढ़ी के युवा शहरी जीवन को महत्त्व दे रहे हैं। आज के युवा संयुक्त परिवार में रहना पसंद नहीं करते। परिवार में सदस्यों के जो संबंध हैं उसमें परिवर्तन आने लगी है। शहरी संस्कृति के कुप्रभाव के कारण भगीरथ फुकन और उनके बेटे विजन के बीच संबंध में विच्छेद की स्थिति आती है। समाज के विघटन के फलस्वरूप संयुक्त परिवार टूट रहें हैं परंतु घर के वरिष्ठ होने के नाते भगीरथ फुकन ने अपने घर-परिवार की एकता और अखंडता बनाए रखने की चेष्टा सदैव की है। भगीरथ फुकन जानते थे कि जीवन में सुख-समृद्धि एवं ऐश्वर्य बनाए रखने के लिए परिवार की पारस्पारिक सहयोग अनिवार्य है। शिक्षा के क्षेत्र में दोनों उपन्यासों में अलगाव दिखाई देती है। 'मैला आँचल' की तुलना में 'नोई बोई जाय' उपन्यास में शिक्षा के प्रति जागरूकता अधिक है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में भगीरथ फुकन पढ़े-लिखे नहीं होते हैं परंतु वे शिक्षा की उपयोगिता से परिचित है और यह मानते हैं कि गाँव की उन्नति के लिए शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। जिस कारण वे अपने बच्चों को शिक्षित कराने के लिए अपनी संपत्ति बेच देते हैं। दूसरी ओर 'मैला आँचल' में मेरीगंज जैसे बड़े क्षेत्र में शिक्षा की अज्ञानता साफ झलकती है। दोनों उपन्यासों में ग्रामीण अंचलों में व्याप्त जात-पात की कठोर व्यवस्था को दिखाया गया है। ग्रामीण जीवन का पूरा सामाजिक ढाँचा जातिगत व्यवस्था पर निर्भर है। इससे कटकर ग्रामीण समाज की कल्पना असंभव है। वर्ण व्यवस्था के फलस्वरूप मनुष्य को मनुष्य का दर्जा नहीं मिलता। यह एक समाजिक विकृति है परंतु ग्रामीण जन इसे एक परंपरा के रूप में पालन करते हैं। 'नोई बोई जाय' की तुलना में 'मैला आँचल' उपन्यास में अनैतिक संबंधों की व्यापकता है। यहाँ नारी केवल भोग की वस्तु है। रामपिरिया, लक्ष्मी, फुलिया, मंगलादेवी के माध्यम से स्त्री के यौन शोषण को दिखाया गया है। इतना ही नहीं घर के भीतर और बाहर स्त्री की दयनीय स्थिति को रेणु ने 'मैला आँचल' के माध्यम से दिखाया है। दूसरी ओर 'नोई बोई जाय' उपन्यास में स्त्री-पुरुष के आदर्श संबंधों को दिखाया गया है। नारी-पुरुष के संबंधों में प्रेम, मिठास, अपनापन को 'नोई बोई जाय' उपन्यास में विस्तृत रूप से दिखाया गया है। असमिया समाज में स्त्री की स्थिति पुरुष के समान ही सबल है। परिवार चलाने में दोनों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। सुंदर परिवार और समाज का निर्माण स्त्री-पुरुष के द्वारा ही संभव है। इस बात को असमिया समाज भलि-भांति

जानता है। असमिया समाज में नारी को पुरुष के समान समझा जाता है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में सुवागी के माध्यम से संघर्षशील स्त्री को दिखाने की चेष्टा की गई है।

नैतिक मूल्य मनुष्य का आधार है, जो मानवता को जीवित रखता है। मनुष्य के जीवन में नैतिक मूल्यों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान समाज व्यवस्था तीव्र गति से बदलता जा रहा है। यह बदलाव गाँव में भी होना स्वभाविक है। नयी पीढ़ी इस परिवर्तन के साथ अपने संस्कार भूलते जा रहे हैं। आज हर कोई अपने हिसाब से नैतिकता को परिभाषित कर रहा है। दोनों भाषाओं के उपन्यासकार समसामायिक स्वरूप को यथार्थ रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। दोंनों उपन्यास में यह संकेत मिलता है कि शहरी परिवेश में मनुष्य आगे निकलने की होड़ में अपने नैतिक आदर्शों को सुरक्षित रखने में असक्षम है। जिससे मानवीय संबंधों में टकराहट पैदा हो गई है। 'मैला आँचल' में दिखाया गया है कि किस प्रकार साधु-संत भ्रष्ट हो रहे हैं। अपने दायित्व और कर्त्तव्य से भागकर भोग विलास में मग्न है। दोनों उपन्यासों में दिखाया गया है कि आधुनिक जीवन की जटिलता का प्रभाव ग्रामीण अंचलों में पड़ रही है, जिसके चलते गाँवों में अब पहले जैसी नैतिकता नहीं रह गयी है।

समाज या देश के विकास में आर्थिक स्थिति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। दोनों उपन्यास के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि अंचलों की आर्थिक जीवन अधिकतर कृषि पर निर्भर है। भारतीय अर्थ व्यवस्था का प्रतिनिधित्व गाँव है। भारत जैसे देश में अर्थव्यवस्था की बुनियादी परंपरा ग्रामीण क्षेत्र, किसान और कृषि द्वारा किया जाता है। दोनों उपन्यासों में ही ग्रामीण जनों का आर्थिक जीवन पूर्ण रूप से कृषि पर ही निर्भर है। मौसम पर निर्भर होने के कारण दोनों अंचलों के किसान तथा ग्रामीण जनों की आर्थिक स्थिति में उतार-चढ़ाव है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में खेती के अलावा ग्रामीण जन दूध बेचना, जंगली हाथी पकड़कर बेचना, रेशम सूता की खेती भी करते हैं। 'मैला आँचल' उपन्यास में देह व्यापार की घटना जगह-जगह उल्लेखित है। 'मैला आँचल' उपन्यास में उल्लेखित जमींदारी प्रथा के फलस्वरूप सामान्य जन की स्थिति में कभी सुधार नहीं हो पाती। जमींदारी प्रथा सामंती सभ्यता का एक अंग है। जमींदार अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए कृषकों का शोषण करते हैं। छोटे-छोटे किसानों की जमीनें कौड़ी के भाव बिक जाती है। जमींदारी प्रथा के कुप्रभाव को 'मैला आँचल' में विस्तृत से वर्णन किया गया है। जमींदारों की तरह ही गाँव में शोषण करने वाला और एक वर्ग महाजन

है। आर्थिक कमजोरी के कारण ग्रामीण जन महाजन से कर्ज लेते हैं जो की जिंदगी भर चुकाने से भी अदा नहीं हो पाती। 'मैला आँचल' उपन्यास में जमींदार विश्वनाथ का उल्लेख जिस तरह मिलता है 'नोई बोई जाय' उपन्यास में घटि महाजन का उल्लेख उसी रूप में मिलता है।

भारतवर्ष गाँव का देश है। अधिकतर जन गांवों में निवास करते हैं। गाँव का सहज-सरल जीवन शहरी जीवन से अलग है। बदलते समय के साथ गाँव में जनसंख्या बढ़ रही है जिस कारण गाँवों में रोजगार नहीं मिल पाती है। जिस कारण लोग नगर की ओर जा रहे हैं। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में भगीरथ फुकन का बेटा उच्च शिक्षा के लिए शहर जाता है परंतु उसे शहर का परिवेश इतना अधिक प्रभावित करता है कि वह वहीं का बन जाता है। 'मैला आँचल' उपन्यास में दिखाया गया है कि आधुनिक तकनीक के आगमन के पश्चात् अब गाँवों में पहले जैसी रोजगार नहीं मिल पाती है। जिस कारण ग्रामीण जन शहर की ओर चले जा रहे हैं। दोनों उपन्यासों में बदलते मानसिकता का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय "'मैला आँचल और 'नोई बोई जाय' उपन्यासों में सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन" का अध्ययन करने से मिला कि सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन का सजीव स्वरूप गाँवों में मिलता है। संस्कृति और धर्म का निर्माण मनुष्य करता है, जो समाज का आवश्यक अंग है। यह मनुष्य के जीवन के साथ जुड़ा होता है। यह मनुष्य को अनुवांशिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त होती है। किसी भी अंचल में व्याप्त परंपरा, रीति-नीति, विश्वास, आदर्श, दर्शन, संस्कार, रूढ़ियाँ, प्रथा, जीवन, भाषा, गीत, नृत्य, रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान का सामूहिक रूप धर्म संस्कृति के अंतर्गत आती हैं। भारतीय संस्कृति बहुआयामी है जिसका वास्तव चित्रण ग्रामीण जीवन में मिलता है परंतु साथ ही आधुनिक आँचलिक परिवेश में प्राचीन और नवीन मान्यताओं के बीच संघर्ष से नई संस्कृति का उदय हो रहा है। जिसके चलते आँचलिक जीवन नवीन सांस्कृतिक तत्वों की नई-नई भंगिमाएँ प्राप्त कर रहा है। दोनों उपन्यासों में ग्रामीण जनों के जीवन में मेला पर्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह पर्व-त्योहार ग्रामीण जनों के जीवन में आनंद भरने का कार्य करता है।

'मैला आँचल' उपन्यास में जिस तरह इंद्र भगवान को प्रसन्न करने के लिए 'जाट जट्टिन' खेल खेला जाता है उसी प्रकार 'नोई बोई जाय' उपन्यास में भेकूलीर बिया (मेढ़क की शादी) का आयोजन किया जाता है। दोनों क्षेत्रों में पालन करने वाले पर्व-त्योहारों का उल्लेख उपन्यासकारों ने बहुत सुंदर रूप से किया है। प्रत्येक धर्म से

जुड़े लोग अपनी परंपरा और संस्कृति को मानते हैं। भारतवर्ष विविधता का देश है और सभी को अपनी परंपरा-संस्कृति को अपनाने की स्वाधीनता है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में असम राज्य का प्रधान पर्व बिहू का विस्तृत वर्णन है। उसी प्रकार 'मैला आँचल' उपन्यास में बिहार राज्य में मनाने वाले पर्व होली का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। पर्व-त्योहार हमारी कोमल भावनाओं को जागृत करने के साथ-साथ जीवन में उत्साह का संचार करती है, 'मैला आँचल' उपन्यास में जिस प्रकार रामनगर मेला, रातेहट मेला, लाल बाग मेला आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है, इसके विपरीत 'नोई बोई जाय' उपन्यास में मेले का कोई वर्णन नहीं मिलता। दोनों उपन्यासों में लोकगीत एवं नृत्य के माध्यम से इतिहास से संबंधित घटना, पौराणिक कथा, आस्था, परंपरा को दर्शाया गया है। लोकगीतों के माध्यम से ग्रामीण जन अपने अनुभूतियों को गीतों के सहारे अभिव्यक्त करते हैं। इन गीतों के माध्यम से न केवल व्यक्ति बल्कि समाज भी प्रतिबिंबित होता है। लोकगीत एवं नृत्य के साथ मनुष्य का भावनात्मक आधार जुड़ा रहता है। फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास के माध्यम से मेरीगंज क्षेत्र में गाये जाने वाले लोकगीत एवं नृत्यों से केवल पंक्तियों का उपयोग ही नहीं किया बल्कि वातावरण सृष्टि के लिए कहीं कहीं पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के लिए उचित माहौल बनाया। दूसरी ओर 'नोई बोई जाय' उपन्यास के माध्यम से गोगोई ने बिहू में गाने वाले लोकगीत एवं लोकनृत्य के द्वारा असमिया संस्कृति की झलक को दिखाया है। इसके साथ ही दोनों उपन्यासों में प्रयोग किये गये लोक उपकरण और खान-पान के सहारे वहाँ की संस्कृति को दिखाया गया है। क्योंकि मनुष्य की संस्कृति के साथ जुड़े लोक उपकरण और खान-पान का अलग ही महत्त्व रहता है। असमिया समाज में सुपारी और पान को संस्कृति का अभिन्न अंग माना जाता है। जिसका उल्लेख 'मैला आँचल' उपन्यास में कहीं नहीं मिलता।

'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' दोनों उपन्यासों में रीति-रिवाज का विस्तृत वर्णन है। अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के रिवाजों का उल्लेख मिलता है। दोनों अंचलों में रीति-रिवाज का विशेष महत्त्व है। जन्म, मृत्यु, विवाह आदि से संबंधित अनेक रीति-रिवाज है जो ग्रामीण जन श्रद्धा से पालन करते हैं। इन रीति-रिवाजों के माध्यम से प्राचीन संस्कृति की झलक मिलती है। मेरीगंज क्षेत्र में प्रधान केंद्र है मठ। यहाँ प्रत्येक दिन धार्मिक रीति-रिवाजों के साथ सत्संग होता है। दूसरी ओर सेंदुरीपाम गाँव में नामघर (मंदिर) का उल्लेख मिलता है। भारतीय ग्रामीण समाज में धार्मिक तत्व के प्रति अटूट आस्था विद्यमान है। इसी आस्था, परंपरा को दोनों उपन्यास में लेखकों ने चित्रित किया है। रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास के माध्यम से मेरीगंज में व्याप्त

अंधविश्वास को दिखाया है। इसका मूल कारण है गाँव में व्याप्त अंधविश्वास जिसे भूत-प्रेत के नाम देते हैं। डॉ. प्रशांत मेरीगंज अंचल के लोगों का इलाज करने आता है परंतु लोग उनको ही बीमार फैलाने का मूल कारण मानते हैं। डाइन के नाम पर मौसी पर अत्याचार आदि अमानवीय घटना का उल्लेख लेखक ने 'मैला आँचल' उपन्यास में किया है। असमिया उपन्यास 'नोई बोई जाय' में भी लेखक ग्रामीण अंचलों में प्रचलित अंधविश्वास को दिखाया है। रंगाय तांत्रिक के प्रति गाँव वालों की परम आस्था है। ग्रामीण जन मानते हैं कि डॉक्टर जी ठीक नहीं कर सकता वह रंगाय तांत्रिक अपने तंत्र-मंत्र से ठीक कर सकता है। दोनों उपन्यासकारों ने धर्म की आड़ में चल रही आडम्बरों, जातिगत व्यवस्था, परंपरा, रूढ़ियाँ, भूत-प्रेत, अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र आदि विसंगतियों का कटू आलोचना किया है।

हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' उपन्यास दो भिन्न अंचल को प्रतिनिधित्व करते हैं। दोनों में जुड़ाव और अलगाव समान रूप में पायी जाती है। अलग क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हुए भी दोनों उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश में समानता है। क्योंकि दोनों का संबंध अंचल से है। दोनों उपन्यासकारों की यही चेष्टा रही कि यथार्थ रूप से अंचल को पाठकों के सामने रख सके। जिससे दोनों क्षेत्रों के लोग एक दूसरे के जीवन और संस्कृति से प्रभावित एवं लाभांवित हो सके। भले ही दोनों भाषाओं के उपन्यासकार अलग-अलग प्रांतों के हैं परंतु दोनों की संवेदना एक है। 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन से दोनों क्षेत्रों के समाज-संस्कृति और लोक जीवन के विविध पक्षों तथा जीवन मूल्यों को समझने में सहायक सिद्ध हुआ। भौगालिक दृष्टि से दूर के क्षेत्र में लिखित उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन करने से असमानताएँ पायी जाती है यह स्वाभाविक है परंतु इसे एक विशेषता के रूप देखना ही हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

आधार ग्रंथ

हिंदी

1. रेणु, फणीश्वरनाथ, वर्ष - 2014, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

असमिया

1. गोगोई, डॉ लीला, वर्ष -2017, नोई बोई जाय, वनलता प्रकाशन, डिब्रुगड़(असम)

सहायक ग्रंथ

हिंदी

1. अस्थाना, ज्ञान, वर्ष -1979, हिंदी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ, जवाहर प्रकाशन, मथुरा

2. उपाध्यय, मृत्युजंय, वर्ष -1989, हिंदी के आंचलिक उपन्यास, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद

3. एल.पटेल, उत्तमभाई, वर्ष -1999, आंचलिक उपन्यास में ग्राम्य जीवन, क्वालिटी बुक्स पब्लिशस एंव डिस्ट्रीव्यूटस

4. गुप्ता, कमला, वर्ष -1979, हिंदी उपन्यासों में सामंतवाद, अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली

5. गुप्त, मन्मथनाथ, वर्ष -1967, समसामयिक हिंदी साहित्य : उपलब्धियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

6. गुप्त, ज्ञानचंद, वर्ष -1970, आंचलिक उपन्यास: संवेदना और शिल्प, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली

7. गुप्त, ज्ञानचंद, वर्ष- 1978, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली

8. जैन, नगीना, वर्ष -1976, आंचलिकता और हिंदी उपन्यास, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली

9. टंडन, प्रतापनारायण, वर्ष -1974, हिंदी उपन्यास उद्भव और विकास, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ

10. त्यागी, सुमित्रा, वर्ष -1978, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

11. नागर, डॉ. विमल शंकर, वर्ष -1985, हिंदी के आँचलिक उपन्यास सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद

12. पाण्डेय, डॉ. इंद्र प्रकाश, वर्ष -1979, हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

13. पूर्णदेव, वर्ष -1982, रेणु का आँचलिक कथा-साहित्य, आशा प्रकाशन गृह करौबाग, नई दिल्ली

14. मदान, इंद्रनाथ, वर्ष- 1966, आज का हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

15. मिश्र, रामदरश, वर्ष -1982, हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

16. यादव, डॉ. सरोज, वर्ष -1996, हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर

17. वाजपेय, नंददुलारे, वर्ष -2013, आधुनिक साहित्य, भारतीय भंडार, दिल्ली

18. वर्मा, रागिनी, वर्ष -2011, फणीश्वरनाथ रेणु और उनका कथा साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

19. विश्वमित्र, जलादि, वर्ष -1962, उपन्यास कला : एक विवेचन, सरस्वती मंदिर, वाराणसी

20. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, वर्ष -2016, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली

21. शर्मा, रामविलास, वर्ष -1967, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

22. सक्सेना, डॉ. आदर्श, वर्ष -1971, हिंदी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर

23. सिंह, जवाहर, वर्ष -1986, हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

24. सिंह, मंजुल, वर्ष -1976, हिंदी उपन्यासों मध्यवर्ग, आर्य बुक डिपो, कोरलबाग, नई दिल्ली

25. सिंह, महीप, वर्ष -1977, हिंदी उपन्यास समकालीन परिदृश्य, लिपि प्रकाशन, दरियागंज

26. सिन्हा, विद्या, वर्ष -2001, आंचलिक परिदृश्य: आंचलिकता और हिंदी उपन्यास, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली

असमिया

1. कटकी, डॉ प्रफुल्ल, वर्ष -2012, तुलनात्मक साहित्य आरू अनुवाद विचार, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी

2. कटकी, डॉ प्रफुल्ल, वर्ष -1979, स्वराजोत्तर असमिया उपन्यास समीक्षा, वाणी लाइब्रेरी

3. गोगोई, लीला, वर्ष -1998, असमर संस्कृति, वनलता, डिब्रुगड़

4. गोहाई, हीरेन, वर्ष -1993, साहित्य आरू चेतना, गुवाहाटी बुक स्टॉल, गुवाहाटी

5. चेतिया, उमेश, वर्ष -1994, डॉ. लीला गोगोई व्यक्तित्व आरू प्रतिभा, सुमफ्रा प्रकाशन, धेमाजी

6. छत्तर, आब्दुश, वर्ष -1975, असमिया संस्कृति, असम साहित्य सभा, जोरहट

7. डेका, डॉ. उमेश और राय, डॉ. नीलमोहन, वर्ष -200, साहित्य समग्र, वनजीवन प्रकाशन, गुवाहाटी

8. डेका, डॉ. कृष्ण कुमार, वर्ष -1991, विरिंची कुमार बरुआ आरू प्रफुल्लदत्त गोस्वामीर उपन्यास, प्रभा प्रकाशिनी, टीयक

9. नेऊग, मेश्वर, वर्ष- 1962, असमिया साहित्यर रूपरेखा, ल्यारर्सबुक स्टॉल, गुवाहाटी

10. नाथ, प्रफुल्लकुमार, वर्ष -2010, उपन्यास आरू तुलनात्मक भारतीय उपन्यास, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी

11. नाथ, डॉ. प्रफुल्लकुमार, वर्ष -2011, तुलनात्मक भारतीय साहित्य विचार विश्लेषण, वनलता, गुवाहाटी

12. पाठक, रमेश, वर्ष -1985, असमिया भाषार इतिहास, जारर्नाल एमपोरियम, नलबारी

13. बरुआ, डॉ. प्रदीप कुमार, वर्ष -2005, आधुनिक असमिया उपन्यासर शिल्परीति, शब्द प्रकाश, जोरहाट

14. बरुआ, फनीन्द्र नारायण, वर्ष – 2006, आधुनिक भाषा विज्ञान परिचय, वनलता प्रकाशन, डिब्रुगड़

15. बरुआ, बिरिंचीकुमार,वर्ष -1972, असमिया लोक संस्कृति, विना लाईब्रेरी, गुवाहाटी

16. बरुआ, भीमकांत, वर्ष -1991, असमिया भाषा, वनलता प्रकाशन, डिब्रुगड़

17. बरा. महेंद्र, वर्ष -1998, साहित्य आरू साहित्य, वनलता प्रकाशन, डिब्रुगड़

18. बरदोलोई, निर्मलप्रभा, वर्ष -1972, असमर लोक संस्कृति, विना लाइब्रेरी, गुवाहाटी

19. बरदोलोई, रजनीकांत, वर्ष -1988, मिरि जियरी, साहित्य प्रकाशन, गुवाहाटी

20. भराली, शैलेन, वर्ष -1973,असमिया साहित्यर ऐतिहासिक उपन्यास, वानी प्रकाशन, गुवाहाटी

21. भराली, शैलेन, वर्ष -1989, उपन्यास विचार आरू विश्लेषण, वाणी प्रकाशन, गुवाहाटी

22. शर्मा, गोविंद प्रसाद, वर्ष -1994, उपन्या आरू असमिया उपन्यास, स्टूडेंट स्टोर्स, गुवाहाटी

23. शर्मा, सत्येन्द्रनाथ, वर्ष – 1976, असमिया उपन्यासर गतिधारा, असम बुक डिपो, गुवाहाटी

24. सईकिया, नगेन(संपा), वर्ष -1988, आधुनिक असमिया साहित्यर अभिलेख, असम साहित्य सभा, जोरहाट

25. सलिहा, श्रीपराग, वर्ष -1973, असमिया संस्कृति आरू साहित्य, वानी प्रकाशन, पाठशला, गुवाहटी

कोश

1. आप्टे वामन शिवराज, वर्ष -1993, संस्कृत हिंदी कोश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
2. दास, श्यामसुंदर(संपा), वर्ष -1968, हिंदी शब्द कोश, कशी प्रचारिणी सभा, कशी
3. प्रसाद, कलिका, वर्ष – 2000, बृहद हिंदी कोश, ज्ञान मंडल प्रकाशन, वाराणसी
4. बरुआ, हेमचन्द्र (संग्रहकर्ता), वर्ष – 2000, हेमकोश, अजंता प्रकाशन,दिल्ली
5. भट्टाचार्य, बुधेन्द्र नाथ, वर्ष -1962, एंग्लो असामिस डिक्शनरी, लॉयर बुक स्टाल, गुवाहाटी
6. महेश्वर, नेउग(संपा), वर्ष -1983, आधुनिक असमिया अभिधान, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी
7. वर्मा, रामचंद्र(संपा), वर्ष -1966, लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आलोचना
2. असमिया साहित्य सभा पत्रिका
3. प्रांतीय
4. पहल
5. सादिन
6. सफुरा
7. हंस
8. ज्ञानोदय

प्राक्कथन

साहित्य मनुष्य के भावों-विचारों एवं क्रियाकलापों को अभिव्यक्त करता है। यह मनुष्य का सर्वोत्तम सृजन है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को हम साहित्य के माध्यम से समझ सकते हैं। कथा साहित्य का महत्त्व इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । गद्य साहित्य में भी कई प्रकार की विधाएँ हैं, जैसे – कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी, निबंध आदि। इनमें से कहानी और उपन्यास एक प्रकार से नामांकित और रचना की दृष्टि से श्रेष्ठ गद्य विधा है। वर्तमान में उपन्यास एक सशक्त विधा के रूप में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना लाने के लिए कार्यरत है। उपन्यास में मानव जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। उपन्यास जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू को अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

भारत एक बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है। अनेकता में एकता की प्रवृत्ति के कारण ही हमारे देश का विश्व में एक अलग पहचान है। इसकी अनेकता ही इसकी शक्ति है। जिस प्रकार अनेक रंगों के कारण इन्द्रधनुष अधिक सुंदर लगता है वैसे ही हमारे देश की विभिन्न संस्कृति एवं विविध भाषाएँ ही उसे विश्व में सबसे अलग और अधिक सुंदर बनाती है । रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, पर्व-त्योहार इत्यादि से भिन्नता होते हुए भी इनमें सांस्कृतिक एकता विराजमान है। उपन्यास साहित्य में मेरी रुचि विद्यार्थी जीवन से ही रही है। मेरी आरंभिक शिक्षा असमिया भाषा में हुई है जिसके कारण मैं सबसे पहले असमिया भाषा के उपन्यास साहित्य से परिचित हुई । तत्पश्चात जब हिंदी भाषा के साहित्य के अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ तो हिंदी में लिखे गए उपन्यासों को जानने का मौका मिला।

हिंदी उपन्यासों से परचित होने के बाद मुझे उत्तर भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को जानने का मौका मिला। असम की संस्कृति से मैं पहले से परिचित थी जिससे मुझे उत्तर भारत और पूर्वोत्तर की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति में कई समानताएँ और असमानताएँ दिखाई पड़ी । जिस कारण मैंने हिंदी और असमिया के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन करने के बारे में सोचा। स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण होने के फलस्वरूप मैंने शोध कार्य में प्रवेश किया तो मैं ने अपने इस जिज्ञासा को अपने गुरुवर डॉ. दिनेश साहू के समक्ष अभिव्यक्त किया। वे स्वयं हिंदी और असमिया साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन कर चुके हैं । जिस कारण वे दोनों साहित्य से भलीभाँति परिचित है। उन्होंने मेरी जिज्ञासा को शांत करते हुए मेरा समर्थन किया और मुझे यह सुझाव दिया कि

एम.फिल में समय बहुत कम मिलता है। एक निश्चित समय में ही शोध कार्य को पूरा करना होता है। तुम हिंदी और असमिया के एक-एक उपन्यास में तुलनात्मक अध्ययन कर सकती हो। विस्तारित रूप से अध्ययन पी.एच.डी में करना। उस समय तक मैं असमिया के 'नोई बोई जाय' और हिंदी के 'मैला आँचल' को पढ़ चुकी थी। मैंने तुरंत गुरुवर को इस विषय के बारे में बताया और विषय के प्रति मेरी रुचि को देखते हुए उन्होंने इस विषय में तुलनात्मक कार्य करने के लिए मुझे प्रोत्साहित किया। दोनों ही उपन्यास अंचल से सबंधित है। दोनों उपन्यासों में दो अलग-अलग परिवेश, समाज और संस्कृति देखने को मिलता है। अतः इसको ध्यान में रखते हुए विचार विमर्श के उपरांत लघु शोध प्रबंध का विषय "हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यासों का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन" निर्धारित हुआ।

हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यासों की शुरुआत 'मैला आँचल' के प्रकाशन से ही माना जाता है। यद्यपि हिंदी उपन्यास की परंपरा में आंचलिकता के तत्त्व बहुत पहले से ही मिल जाते हैं, परंतु यह उपन्यास एक नए रंग-रूप और परिवेश में उपस्थित हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास के रचियता फणीश्वरनाथ रेणु है। रेणु बहुआयामी प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे एक विचारक, समाज सुधारक और राजनैतिक सरोकार वाले साहित्यकार थे। उनका कथा-साहित्य का वर्ण विषय ग्रामीण जीवन ही है। उन्होंने अपने साहित्य में ठेठ ग्रामीण जीवन, ग्राम्य भाषा, वातावरण और लोकगीतों का समावेश किया है। इन आंचलिक तत्त्वों के सम्मिश्रण का भंडार रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' है। जो हिंदी का श्रेष्ठ और सशक्त आंचलिक उपन्यास है। एक अंचल विशेष की सभी पहलुओं को ईमानदारी के साथ रेणु ने 'मैला आँचल' में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक मेरीगंज अंचल है। जो पूरे उत्तर भारत के अंचल परिवेश का प्रतिनिधित्व करता है। जिसमें मेरीगंज के राजनीतिक परिवेश, लोक संस्कृति, सामाजिक जीवन इत्यादि का चित्रण मिलता है।

असमिया साहित्य में डॉ. लीला गोगोई कृत 'नोई बोई जाय' उपन्यास में आंचलिकता के तत्व मौजूद है। प्रस्तुत उपन्यास में असमिया संस्कृति के विविध पहलुओं- सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन का विस्तृत विवेचन एवं विश्लेषण मिलता है। यह उपन्यास दिखोऊ नदी के किनारे अवस्थित सेंदुरीपाम गाँव को केंद्र में रखकर लिखा गया है। लेखक ने भगीरथ फुकन के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि समाज में न तो पहली जैसी आत्मीयता शेष है न ही मानवीयता। उपन्यास में लेखक ने असमिया

ग्रामीण समाज की सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं का विस्तार से विश्लेषण किया है। उपन्यास के कथानक का केंद्र भगीरथ फुकन के जीवन के विविध पहलुओं से संबंधित है, साथ ही लेखक बहुत सी उपकथाएँ बुनकर पूरे गाँव के आंचलिक वातावरण को चित्रित करता है, जिसकी टूटती-बनती संस्कृति है, अपने विश्वास और मान्यताएँ हैं, अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित इंसान है, अपने संघर्ष हैं, जिसकी अपनी भाषा, अपनी परंपरा, रीति-व्यवहार एवं ढंग हैं। लोक साहित्य के विभिन्न उपादानों लोक-गीत, लोक-कथाएँ, लोक-कहावतें आदि का वर्णन उपन्यास में हुआ है। प्रस्तुत विषय में शोध कर दो अंचलों की समानताओं तथा असमानताओं का तुलनात्मक अध्ययन कर उसका विश्लेषण करने का प्रत्यन किया गया है।

मेरे शोध का विषय "हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के 'नोई बोई जाय' आँचलिक उपन्यास का समाज-सांस्कृतिक अध्ययन" है, जिसे चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। इन चारों अध्यायों से संबंधित विवरण इस प्रकार है –

शोध का प्रथम अध्याय है – शोध परिचय। इसके उपशीर्षक हैं 'शोध शीर्षक', 'शोध का परिचय', 'शोध की समस्या', 'शोध कार्य का उद्देश्य', 'संबधित विषय में हुए कार्यों का विवरण', 'शोध प्रविधि', 'शोध कार्य का औचित्य', 'शोध की सीमा', 'शोध कार्य का प्रयोजन', 'शोध कार्य का ढाँचा'। प्रथम उपशीर्षक के अंतर्गत शोध के शीर्षक को दर्शाया गया है। द्वितीय उपशीर्षक में शोध का परिचय है। इसके अंतर्गत अंचल और आँचलिक साहित्य को स्पष्ट किया गया है। साथ ही जिस विषय में शोध किया जा रहा है उसका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। शोध परिचय उपशीर्षक में हिंदी और असमिया साहित्य के प्रमुख आंचलिक उपन्यास का उल्लेख किया गया। तद्पश्चात हिंदी के 'मैला आँचल' और असमिया के नोई बोई जाय' उपन्यास का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। तीसरा उपशीर्षक शोध की समस्या है। इसके अंतगर्त शोध की प्रमुख समस्याओं पर विचार किया गया है। इसमें आँचलिकता का आधार क्या है ? दो विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक समानताएँ और असमानताएँ क्या है ? भिन्न भाषी क्षेत्र होते हुए भी दोनों साहित्य में किस प्रकार का अलगाव और जुड़ाव है ? तथा दोनों रचनाकारों के साहित्य में शिल्पगत समानताएँ व असमानताएँ क्या है ? आदि समस्याओं का उल्लेख किया गया है।

चौथा उपशीर्षक है 'शोध कार्य का उद्देश्य' । प्रस्तुत उपशीर्षक में शोध के उद्देश्य को स्पष्ट किया गया और दो भिन्न भाषाओं के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन करने से दो अलग-अलग परिवेश, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थिति को समझ सकेगें इस पर विचार किया गया है । पाँचवा उपशीर्षक संबंधित विषय में हुए शोध कार्यों का विवरण है । इस उपशीर्षक में हिंदी और असमिया साहित्य में किन-किन विषयों पर कार्य हुए हैं उसे विवेचित किया गया है । 'शोध प्रविधि' उपशीर्षक में शोध में किए गए प्रविधियों का उल्लेख किया गया है । जिनमें विशेष रूप से तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक प्रविधि के साथ आवश्यकता अनुसार अन्य प्रविधियों का प्रयोग भी किया गया है । शोध के औचित्य उपशीर्षक में शोध के औचित्य को स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार दो अन्य भाषाओं की रचनाओं का अध्ययन कर हम दो अलग-अलग संस्कृति को समझ सकेंगे । आठवें उपशीर्षक में शोध की सीमा को बताया गया है । इसमें स्पष्ट रूप से उल्लेखित कर दिया गया है कि शोध कार्य की सीमा फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' और डॉ. लीला गोगोई का 'नोई बोई जाय' उपन्यास होगा । शोध का प्रयोजन उपशीर्षक में यह स्वीकार किया गया है कि शोध कार्य का प्रयोजन सिक्किम विश्वविद्यालय के भाषा और साहित्य संकाय के अंतर्गत हिंदी विषय में एम.फिल शैक्षिक उपाधि पाना है । प्रथम अध्याय का अंतिम उपशीर्षक 'शोध कार्य का ढाँचा' है । इसमें शोध कार्य के रूप रेखा का निर्धारण किया गया है । जिसमें शोध के अध्ययन की सुविधा के लिए विषय को अध्यायों और उपशीर्षकों में बाँटा गया है ।

शोध का द्वितीय अध्याय है – "फणीश्वरनाथ रेणु और डॉ. लीला गोगोई : एक परिचय एवं आँचलिक उपन्यास का स्वरूप एवं विवेचन " । इसके तीन उपशीर्षक हैं – 'फणीश्वरनाथ रेणु का जीवन और रचना कर्म', 'डॉ. लीला गोगोई का जीवन और रचना कर्म', 'आँचलिक उपन्यास का स्वरूप एवं विवेचन' । फणीश्वरनाथ रेणु का जीवन और रचनाकर्म में रेणु के जीवनवृत्त पर चर्चा की गई है साथ ही उनकी रचनाओं का भी उल्लेख किया गया है । किसी भी साहित्यकार का जिस परिवेश में जन्म होता है, उसी परिवेश के वातावरण से उसका व्यक्तित्व बनता है और वह परिवेश उसकी साहित्यिक रचना के लिए प्रेरक बनता है । प्रस्तुत उपशीर्षक उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी रचनाओं में किस प्रकार पड़ा इस पर चर्चा की गई है । सबसे पहले रेणु के जन्म, शिक्षा, परिवार एवं विवाह का वर्णन किया गया है । इसके बाद इनके साहित्य के प्रति अभिरुचि, तत्कालीन परिवेश के साथ राजनीतिक सक्रियता को दर्शाया गया है । प्रथम उपशीर्षक के अंतर्गत ही रेणु के कृतित्व को भी प्रस्तुत किया गया है । इसमें रेणु की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और प्राप्त पुरस्कारों का उल्लेख है । सबसे पहले उपन्यासकार के रूप में रेणु कैसे

थे इस पर चर्चा की गई है और उनके प्रमुख उपन्यास – मैला आँचल, परती परिकथा, दीर्घतपा, जुलूस, कितने चौराहे, पल्टू बाबू रोड आदि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। तद्पश्चात एक कहानीकार के रूप में रेणु कैसे थे इस पर विचार किया गया है और इनके कहानी संग्रह – ठुमरी, आदिम रात्रि की महक, अग्निखोर, एक श्रावणी दोपहरी, मेरी प्रिय कहानियाँ आदि पर संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके साथ ही रेणु के कथेतर साहित्य संस्मरण और रेखाचित्र, रिपोतार्ज तथा कवि के रूप में रेणु का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय उपशीर्षक है- डॉ.लीला गोगोई का जीवन और रचनाकर्म। इसमें डॉ. लीला गोगोई के जीवन वृत्त और कृतित्व पर चर्चा की गई है। गोगोई की रचनाओं में उनके परिवेश और परिवार का प्रभाव देखने को मिलता है। इसी संदर्भ हेतु उनके परिवेश और जीवन पर चर्चा की गई है। सबसे पहले उनके जन्म, शिक्षा, जीवन कर्म, सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन को प्रस्तुत किया है। बचपन के दिनों से ही उन्हें किताबों के प्रति गहरा लगाव था। उनका मानना था कि संस्कृत भाषा को समझे बिना असमिया को नहीं समझा जा सकता है।

रचना कर्म के अंतर्गत उनके कृतित्व को प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने इतिहास, लोक-साहित्य प्रबंध के अतरिक्त उपन्यास, गीत तथा गीति कविता, हास्य व्यंग्य, बाल साहित्य पर कलम चलाई थी। प्रस्तुत उपशीर्षक में सबसे पहले डॉ. लीला गोगोई एक उपन्यासकार के रूप में चित्रित है। उनके प्रमुख उपन्यास- 'सागर मूकूता', डकाईट कून', नीला खामर सिठि', 'नोई बोई जाय' आदि पर संक्षिप्त चर्चा की गई है। आगे एक हास्य व्यंग्यकार के रूप में वे कैसे थे इस पर विचार किया गया है। उनके प्रमुख हास्य व्यंग्य पुस्तक 'कपलिंग सिगा बेल', 'बियोगी सिठि', बृहकोदर बरुवार बिया, बिखेख कि लिखिम आरू मूकलि सिठि', 'घेरघरीवास', हाँहि आरु बाँही पर चर्चा की गई है। इसके अलावा शोधपरक साहित्य, संस्कृति से संबंधित साहित्य, संकलित और संपादित ग्रंथ, गीत और गीति कविता पर भी संक्षिप्त चर्चा की गई है।

तृतीय उपशीर्षक आँचलिक उपन्यास : स्वरूप एवं विवेचन है। इसके अंतर्गत सबसे पहले आंचलिकता के अर्थ, परिभाषा को स्पष्ट किया गया है। आंचलिकता में पहले अंचल शब्द के अर्थ को बताते हुए आंचलिक शब्द पर चर्चा की गई है। उसके बाद आंचलिक शब्द पर विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए परिभाषाओं को प्रस्तुत किया गया है। तद्पश्चात हिंदी आंचलिक उपन्यासों की लेखन परंपरा पर विचार किया गया है साथ ही सामान्य उपन्यास और आंचलिक उपन्यास के मूल अंतरों को भी स्पष्ट किया गया है। इस उपशीर्षक के अंतिम में हिंदी के प्रमुख आंचलिक

उपन्यास – मैला आँचल, सागर लहरें और मनुष्य, आधा गाँव, कब तक पुकारूँ, अलग-अलग वैतरणी तथा असमिया के प्रमुख आँचलिक उपन्यास – कपिली परिया साधु, रंगमिलीर हाँही, नोई बोई जाय, कईनार मूल्य, मिरि जियरी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबंध का तृतीय अध्याय "'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यास में सामाजिक आर्थिक जीवन" है। इसके अंतर्गत दो उपशीर्षक है 'सामाजिक जीवन', 'आर्थिक जीवन'। प्रथम उपशीर्षक सामाजिक जीवन को छः भागों में बाँटा गया है – 'ग्रामीण जीवन', 'परिवार', 'शिक्षा', 'जातिगत स्वरूप', 'नारी पुरुष संबंध', 'नैतिक मूल्यों का बदलता स्वरूप'। प्रस्तुत बिंदुओं को केंद्र में रखकर दोनों उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। दोनों ही उपन्यास अलग-अलग परिवेश में लिखे जाने के बावजूद दोनों में काफी समानताएँ दिखाई पड़ती है। दोनों उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के सजीव चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। उनमें कुछ अच्छाईयां हैं तो कुछ बुराइयाँ भी है। 'नोई बोई जाय' उपन्यास में भगीरथ फूकन के माध्यम से शिक्षा के महत्त्व को दर्शाया गया है। वहीं दूसरी ओर 'मैला आँचल' में शिक्षा के प्रति लापरवाही दिखाई पड़ती है। दोनों अलग क्षेत्र के उपन्यासों में स्त्रियों की स्थिति कैसी है इस पर चर्चा की गई है। वर्तमान समय में नैतिक मूल्य नष्ट हो रहे हैं, दोनों ही उपन्यासों में टूटते नैतिक मूल्य को दर्शाया गया है एवं भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत समस्या पर भी विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय के दूसरे उपशीर्षक में आर्थिक जीवन को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत उपशीर्षक को भी तीन भागों में बाँटा गया है। 'व्यवसाय', 'जमींदार और सामान्य जन मानस', 'नगरोन्मुखता'। इस उपशीर्षक में दोनों उपन्यासों के आर्थिक दशा को दिखाया गया है। दोनों ही परिवेश की अर्थ व्यवस्था की बुनियाद खेती है। कृषि ही भारतीय अर्थ व्यवस्था में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। परंतु आधुनिक तकनीक के प्रयोग के कारण गाँवों में अब पहले जैसी मजदूरी नहीं मिलती जिस कारण लोगों को शहर की ओर जाना पड़ रहा है। साथ ही यह आधुनिक तकनीक की सुविधा महाजन और तहसीलदार ही उठा रहे हैं। 'मैला आँचल' में गरीब किसान महाजन और तहसीलदार के शोषण का शिकार होते हैं। इस कारण किसानों की आर्थिक दशा बद से बदतर होती जा रही है। किसानों की गिरती आर्थिक दशा दोनों ही उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। अतः इन दशाओं का सूक्ष्म विश्लेषण भी प्रस्तुत उपशीर्षक में किया गया है। मैला आँचल की तुलना में नोई बोई जाय उपन्यास में महाजनी व्यवस्था न के बराबर है। अंतिम भाग गाँवों से नगर की ओर आकर्षित होते लोगों को दर्शाया गया है।

शोध प्रबंध का चौथा अध्याय "'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' उपन्यासों में सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन" है। जिसे पांच उपशीर्षकों में बाँटा गया है। 'मेला-उत्सव', 'लोकगीत एवं नृत्य', 'लोक उपकरण और खान-पान', 'रीति-रिवाज', 'धार्मिक जीवन'। समाज के सदस्य होने के नाते संस्कृति हमें उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त है। मनुष्य की सभी उपलब्धियाँ उसे संस्कृति से ही मिलती है। कला, संगीत, साहित्य, व्यवहार, चिंतन, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म विज्ञान सभी संस्कृति के अंग हैं। जिन आदर्शों, व्यवहारों, आचरणों, शिल्पकलाओं को मानव उन्नति के क्रम में निर्मित करता है, उसे वह निरंतर आगेवाली पीढ़ी अपने ढंग से इसका विकास एवं एक नये सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण करती है। प्रस्तुत उपशीर्षक में 'मैला आँचल' और 'नोई बोई जाय' दो भिन्न भाषी उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन में दोनों क्षेत्रों के सांस्कृतिक समानता और असमानता को दर्शया गया है। 'मैला आँचल और नोई बोई जाय' दोनों उपन्यासों में ग्रामीण जनों के जीवन में मेला, पर्व-त्यौहार का विशिष्ट स्थान है। दोनों ही परिवेश में पर्व –त्यौहार ग्रामीण लोगों के जीवन में संजीवनी का काम करता है।

लोकगीत एवं नृत्य उपशीर्षक में दोनों ही परिवेश में प्रचलित लोकगीत एवं लोक नृत्य पर चर्चा की गई है। दोनों ही क्षेत्रों के लोकगीत एवं नृत्य में समानताएँ एवं असमानताएँ देखने को मिलता है। 'मैला आँचल' उपन्यास में ग्रामीण जन होली के अवसर पर आपसी भेद-भाव को त्याग कर आनंद के साथ नाच-गान करते हैं। दूसरी ओर नोई बोई जाय' उपन्यास में असमिया समाज में मनाने वाले बिहू का विस्तृत उल्लेख है। बिहू में गाने वाले लोक गीत एवं लोक नृत्य के माध्यम से अपनी संस्कृति की झलक वहाँ के लोग प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ ही विवाह में गाने वाले पारंपरिक गीतों के साथ लोरी गीतों का भी उल्लेख मिलता है। बिहू में जिस प्रकार लोक नृत्य का उल्लेख 'नोई बोई जाय' में किया गया है उसी प्रकार 'मैला आँचल' उपन्यास में विदापत नाच का उल्लेख किया गया है। इन्हीं बिंदुओं के आधार पर लोक संस्कृति, लोक जीवन दर्शन, रीतिरिवाजों की चर्चा की गई है।

धार्मिक जीवन के अंतर्गत हिंदी और असमिया दोनों क्षेत्रों में व्याप्त धार्मिक स्थिति का वर्णन किया गया है। 'मैला आँचल' में धर्म के नाम पर साधु लोग मठ में स्त्रियों का शोषण और अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। इसके साथ ही धर्म के नाम पर तरह-तरह के अंधविश्वास और आडंबर देखने को मिलता है। 'नोई बोई जाय' में धार्मिक अंधविश्वास और आडंबर के कई रूप देखने को मिलते हैं। इन परिप्रेक्ष्य के आधार पर दोनों उपन्यासों का

तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अंत में उपसंहार शीर्षक से शोध के निष्कर्षों को शब्दबद्ध करने की कोशिश की गई है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को पूर्ण रूप देने में मुझे अनेक लोगों का सहयोग मिला जिनका मैं सदा आभारी रहूँगी। सर्वप्रथम मैं हिन्दी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस शोध विषय पर शोध करने की अनुमति और अवसर दिया। मैं अपने परम् आदरणीय गुरुवर तथा शोध निर्देशक डॉ. दिनेश साहू के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने शोध-कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया। साथ ही मैं विभाग के गुरुजन डॉ. चुकी भूटिया, प्रदीप त्रिपाठी, डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री एवं पूर्व गुरुजन डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय, डॉ. आदित्य विक्रम सिंह और डॉ. श्रीकांत द्विवेदी का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत शोध कार्य में अपने सुझावों द्वारा मेरी सहायता की। मैं नार्थ लखिमपुर कॉलेज के प्राध्यापक डॉ. अरविंद राजखोवा सर को भी धन्यवाद देना चाहती हूँ जिन्होंने असमिया साहित्य से संबंधित विषयों पर महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया|

साथ ही, मैं मेरे अग्रज कृष्ण कुमार साह को भी आभार ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने सुधार कार्य में मेरी सहायता की और साथ ही मुझे प्रोत्साहित किया। इसके अतरिक्त मैं मेरे साथी बी आकश राव, सुमिरन देवान और मेरे अनुजों का भी धन्यवाद करना चाहती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की। साथ ही पुस्तकालय एवं रिसर्च फ्लोर के समस्त पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने शोध-कार्य में यथासंभव सहायता की। मैं अपने पूरे परिवार का सहृदय से धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने इस दौरान हर कमजोर और कठिन दौर में मेरी सहायता की और समय- समय पर जिनका महत्वपूर्ण सहयोग मुझे मिला।

स्थान : गंगटोक, सिक्किम **अनुसंधित्सु**

दिनांक : **टिंकू छेत्री**